1998 से निरंतर प्रकाशित

RNI No. MPHIN/2017/73838

ISSN 2581-446X

वर्ष-3, अंक-5-6, अप्रैल-मई-जून-जुलाई 2020 (संयुक्तांक) ₹ 25/-

कला समय

कला, संस्कृति और विचार की त्रैमासिक पत्रिका

सांस्कृतिक यात्रा
रजत वर्ष की
ओर अग्रसर...

डॉ. अरविंद विष्णु जोशी की
यादों पर एकाग्र विशेषांक

संपादक
भँवरलाल श्रीवास

छायाकार–जगदीश कौशल

समय की धरोहर

पद्म विभूषण उस्ताद अलाउद्दीन खाँ

जन्म : 6 अक्टूबर, 1881 **निधन : 6 सितम्बर, 1972**

मैहर के सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ, गुरु उस्ताद अलाउद्दीन खाँ विश्वविख्यात सरोद वादक के अलावा अन्य वाद्य यंत्रों को बजाने में उन्हें सिद्धता प्राप्त थी। साधारण दिखने वाले इस असाधारण महान कलाकार का जीवन सादगीपूर्ण था तथा गुरु रूप में उतने ही कठोर भी थे। पुत्र अली अकबर खां, पुत्री अन्नपूर्णा देवी, जेहपारा खान, शरिजा खान। पं. रविशंकर, निखिल बनर्जी, बसंत राय, पन्नालाल घोष बहादुर खान, शरन रानी, ज्योति भट्टाचार्य प्रसिद्ध संगीतज्ञों के ये गुरु भी थे।

जगदीश कौशल ने 1958 मैहर जाकर उनके निवास पर इस चित्र के साथ साक्षात्कार भी लिया जो आज तथा संगीत पत्रिका में प्रकाशित हुआ तथा उनके साथ अपना फोटो भी खिंचवाया।

1998 से निरंतर प्रकाशित
RNI NO. MPHIN/2017/73838

कला समय पत्रिका अब वेबसाइट पर उपलब्ध
www.kalasamaymagazine.com

ISSN 2581-446X
(पंजीयन पूर्व प्रकाशित अंक, वर्ष सम्मिलित)
(वर्ष : 22+3) पूर्णांक-104-105,
वर्ष-3, अंक-5-6, अप्रैल-मई-जून-जुलाई 2020
(संयुक्तांक)

माधवराव सप्रे समाचार पत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान, भोपाल म.प्र. द्वारा 'रामेश्वर गुरू सम्मान' से पुरस्कृत
श्री भारतेन्दु समिति कोटा (राज.) द्वारा 'साहित्यश्री' सम्मान एवं
साहित्य मण्डल श्री नाथद्वारा (राज.) द्वारा 'सम्पादक रत्न' सम्मान से सम्मानित
म.प्र. हिन्दी साहित्य सम्मेलन भोपाल (म.प्र.) द्वारा उर्मिला तिवारी स्मृति 'सप्तपर्णी सम्मान' से पुरस्कृत

कला समय

कला, संस्कृति और विचार की द्वैमासिक पत्रिका

संरक्षक
नर्मदा प्रसाद उपाध्याय
डॉ. महेन्द्र भानावत
पं. विजय शंकर मिश्र
श्यामसुंदर दुबे
पं. सुरेश तातेड़
कैलाशचन्द्र घनश्याम पाण्डेय

परामर्श
लक्ष्मीनारायण पयोधि
ललित शर्मा
राग तेलंग
प्रो. सज्जनलाल ब्रह्मभट्ट 'रसरंग'
प्रो. सुधा अग्रवाल
डॉ. कुंजन आचार्य
डॉ. देवेन्द्र शर्मा

सांस्कृतिक प्रतिनिधि
चेतना श्रीवास
डॉ. वर्षा नालमे
उमेश कुमार पाठक
बंशीधर 'बंधु'
पं. देवेन्द्र वर्मा

वेबसाइट प्रबंधन
मयंक अग्रवाल

कोलाज : नंदिनी सोहोनी पुणे (महाराष्ट्र)

संपादक
भँवरलाल श्रीवास
bhanwarlalshrivas@gmail.com
94256 78058

सह संपादक
डॉ. मधु भट्ट तैलंग

उप संपादक
राहुल श्रीवास

संपादक मंडल
रामेश्वर शर्मा 'रामूभैया'
साहित्य
हरीश श्रीवास
कला
डॉ. मुक्ति पाराशर
संस्कृति
नरिन्दर कौर
प्रबंध

कानूनी सलाहकार
जयंत कुमार मेढ़े (एडवोकेट)

सदस्यता सहयोग राशि:

वार्षिक	: 150 /-	(व्यक्तिगत)
	: 175 /-	(संस्थागत)
द्वैवार्षिक	: 300 /-	(व्यक्तिगत)
	: 350 /-	(संस्थागत)
चार वर्ष	: 500 /-	(व्यक्तिगत)
	: 600 /-	(संस्थागत)
आजीवन	: 5,000/-	(व्यक्तिगत)
	: 6,000/-	(संस्थागत)

(कृपया सदस्यता शुल्क- ऑनलाइन/ड्राफ्ट/मनीआर्डर द्वारा कला समय के नाम से उक्त पते पर भेंजे)

कार्यालय सम्पर्क :
संपादकीय एवं सदस्यता सहयोग
जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर,
अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)- 462016
फोन : 0755-2562294, मो.-94256 78058
ई-मेल : kalasamaymagazine@gmail.com
वेबसाइट : **www.kalasamaymagazine.com**

ऑनलाइन सदस्यता सहयोग सुविधा :
'कला समय' का बैंक खाता विवरण
ओरियण्टल बैंक ऑफ कॉमर्स की शाखा **(IFSC : ORBC0100932)** में **KALA SAMAY** के नाम देय, खाता संख्या **A/No. 09321011000775** में ऑनलाइन राशि जमा कराने के बाद रसीद की फोटोकॉपी अपने पूर्ण पते के साथ हमें भेज दें।

कला समय पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं, यह जरूरी नहीं कि संपादक, प्रकाशक, मुद्रक उनसे सहमत हों। पत्रिका से सम्बन्धित समस्त विवाद, भोपाल न्यायालय के अधीन ही रहेंगे।
सम्पादन, संचालन, प्रबंधन एवं प्रकाशन- अवैतनिक/अव्यवसायिक

विशेष नोट : © सर्वाधिकार सुरक्षित 'कला समय' प्रबंधन यह स्पष्ट करना आवश्यक समझता है कि 'कला समय' में प्रवेशांक फरवरी-मार्च 1998 से लेकर अब तक प्रकाशित होने वाली समस्त सामग्री या सामग्री के अंश के पुनर्प्रकाशन तथा पुनरुत्पादन के सर्वाधिकार कॉपीराइट अधिनियम के अंतर्गत 'कला समय' के पास सुरक्षित हैं। अत: कोई भी व्यक्ति या संस्था 'कला समय' की इस सामग्री या इस सामग्री के अंश का उपयोग प्रबंधन की पूर्वानुमति के बिना न करें।

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वत्वाधिकारी भँवरलाल श्रीवास द्वारा दृष्टि ऑफसेट, 36-37, प्रेस काम्पलेक्स, जोन नं-1, एम.पी. नगर, भोपाल से मुद्रित एवं जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.) से प्रकाशित। संपादक- भँवरलाल श्रीवास

पद्मश्री डॉ. अरुण दाबके

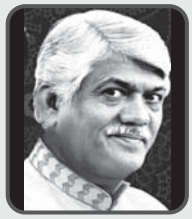

पद्मश्री उमाकान्त गुन्देचा

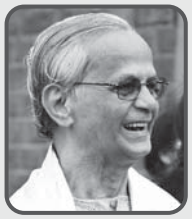

पं. किरण देशपांडे

लता मुंशी

प्रो. गुणवन्त माधवलाल व्यास

पं. विजय शंकर मिश्र

विनय उपाध्याय

कृष्ण कुमार यादव

जगदीश कौशल

स्तंभ छायाकार

नरेश श्याम

आवरण चित्रकार

इस अंक में विशेष सहयोग

राग तेलंग

वरिष्ठ कवि, लेखक

भोपाल

इस बार

- संपादकीय / 5
  साधना के रास्ते अलग-अलग पर मंजिल एक है
- आलेख
  रागमाला केन्द्रित महत्वपूर्ण ग्रन्थ... / नर्मदा प्रसाद उपाध्याय / 6
- साक्षात्कार / 8
  उस्ताद विलायत खाँ से प्रभावित होकर सितार चुना / **भँवरलाल श्रीवास**
- आलेख
  मेरे पिता : मेरे गुरु! / डॉ. अरविंद जोशी / 11
  अभिव्यक्ति के आयाम और रवीन्द्रनाथ ठाकुर / प्रो. गुणवन्त माधवलाल व्यास/ 13
  बस्तर के आदिवासी संगीत वाद्य/ डॉ. अरविंद जोशी / 15
- साक्षात्कार आलेख / 18
  भारत को जागृत किया गुरु नानक देव जी ने/ पं. विजय शंकर मिश्र
- आलेख / 20
  महाराष्ट्र के कीर्तन / डॉ. अरविंद जोशी
- शोध आलेख / 22
  'गायनाचार्य पं. गंगाप्रसाद पाठक का सिने पक्ष' / शोधार्थी इच्छा भट्ट
- आलेख
  कवीन्द्र-रवींद्र और उनके विमर्श / कृष्ण कुमार यादवी / 25
  लोकगीतों का संगीत पक्ष / डॉ. अरविंद जोशी / 28
- मध्यांतर / 34
  खलील जिब्रान की चार लघु कथाएं, अनुवाद : मणि मोहन
  कृष्ण बक्षी के गीत / 35
  डॉ. शुभ्रता मिश्रा की कविताएँ / 36
  दौलतराम प्रजापति की ग़ज़लें / 37
- आलेख
  कोरोना कहर में कला : छवियों का छंद / विनय उपाध्याय / 38
  काव्य और संगीत का पारस्परिक संबंध / डॉ. अरविंद जोशी / 40
- यादें / 41-57
  यादें डॉ. अरविन्द विष्णु जोशी और उनका संगीत संसार :-
  पद्मश्री डॉ. अरुण दाबके / पद्मश्री उमाकान्त गुन्देचा / पं. किरण देशपांडे / लता मुंशी / विश्वास केलकर / अवंतिका जोशी / अनिरूद्ध जोशी / स्वप्निल जोशी / डॉ. सुनील भट्ट / विवेक जोशी / राजेश गनोदवाले / सुप्रीत देशपाण्डे / अर्चना अरविंद जोशी / प्रो. राधेश्याम जायसवाल / मकरन्द हलावे / प्रवीण शेवलीकर / दीपक गुणवंत व्यास / श्री मनोहर भिडे / गिरिधर कुमार दुबे / पं. कीर्ति माधव व्यास / डॉ. सुषमा मिश्रा
- समीक्षा
  कविताएँ जो जीना सिखा दें .... / डॉ. प्रवीणकुमार न. चौगुले / 58
  जीवन की बगिया में कविताओं की 'महक आती रहे' / विनोद नागर /64
  नाहरगढ़ किला इतिहास की जीवन्त धरोहर है / ललित शर्मा /65
  बघेरा कृति एक क्षेत्रीय इतिहास का महत्वपूर्ण दस्तावेज है / डॉ. उर्मिला शर्मा /66
- संस्था समाचार / 67
  गोस्वामी तुलसीदास के जीवन पर दो दिवसीय अंतरराष्ट्रीय वेबिनार आयोजित
- नया स्तंभ / 68
  समय की धरोहर
- समवेत / 69
  ''कविता देश'' के अंतर्गत नवल शुक्ल और नीलेश रघुवंशी का कविता पाठ
- नवांकुर / 70
  अंकुरित संस्कार उम्र से बड़े है इनके ...- माहिरा व्यास
- कला समय उत्तराधिकारी- सृष्टि पानवलकर / 71
- पत्रिका के बहाने / 72
- गुलदस्ता / 73

शब्द संयोजन एवं आकल्पन - गणेश ग्राफिक्स, भोपाल, 9981984888 | **आवरण चित्र** - नरेश श्याम | **अंतिम आवरण चित्र** - अर्चना जोशी के सौजन्य से | **छायाचित्र** - मनीष सराठे, सुनील सेन | **कोलाज** - नंदिनी सोहोनी | **सहयोग** - धन सिंह, लता श्रीवास | **आवरण सज्जा** - मनोज माकोड़े, गणेश ग्राफिक्स

साधना के रास्ते अलग-अलग पर मंजिल एक है

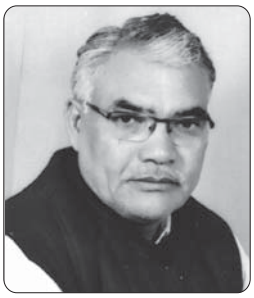

हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत में ग्वालियर घराना सबसे आरंभिक और प्राचीन तथा सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना जाता है ग्वालियर घराना अनेक घरानों का स्त्रोत रहा है। ग्वालियर से ही आगरा; आगरा से सहारनपुर तथा खुर्जा घराने निकले। किराना घराने की गायकी पर भी ग्वालियर घराने का कुछ असर रहा। कोई भी संगीत-परंपरा उस समय तक 'घराना' नहीं कहलाती, जब तक वह परम्परा लगातार कम-से-कम तीन पीढ़ियों से न चली आ रही हो। ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर थे उनके राज्य-काल में ध्रुपद संगीत शैली का अविष्कार हुआ वे स्वयं अच्छे ध्रुपद गायक थे। बाद में ध्रुपद का स्थान ख्याल ने ले लिया गायन में सादगी और बोधगम्यता इस घराने की विशेषता रही इसके अलावा, गंभीरता और अनुशासन की सात्विकता के लिए भी यह घराना प्रसिद्ध रहा है। समृद्धि और विविधता की दृष्टि से ग्वालियर घराने की गायकी बेमिसाल है। इस गायकी को उचित ही अष्टांग कहा जाता है, क्योंकि इसमें गमक, मींड, मुरकी, लयकारी, तान, बोलतान, आलाप और बोल-आलाप शामिल हैं। ग्वालियर घराने के आदि पुरुषों में नत्थन पीरबख्श, हद्दू-हस्सू खां, रहमत खां पंडित विष्णु दिगंबर पलुस्कर, पं. राजाभैय्या पूंछवाले, पं. बसंतराज राजगुरु, पं. शंकरराव पंडित, पं. ओंकारनाथ ठाकुर, पं. कृष्णराव शंकर पंडित, पं. नारायणराव व्यास, पं. डी.वी. पलुस्कर, पं. गंगाप्रसाद पाठक जैसे कला साधकों गुरुओं ने ग्वालियर की घराना-परम्परा को एक अलग पहचान दी। ग्वालियर घराने की आज की पीढ़ी में लक्ष्मण कृष्णराव पंडित, मीता पंडित, विधाधर व्यास जैसे अनेक नाम है जिन्होंने इस ख्याल गायकी को निरन्तर आगे बढ़ा रहे है। पं. विष्णु कृष्ण जोशी की शिक्षा राजा भैया पूछवाले के मार्गदर्शन में ग्वालियर माधव-म्यूजिक कॉलेज में सम्पन्न हुई। प्राकृतिक स्वर-माधुर्य के धनी जोशी को अपने गुरु के आदेश पर छत्तीसगढ़ अंचल में शास्त्रीय संगीत के लिए युग-प्रर्वतक पं. भातखण्डे से संगीत शिक्षक की योग्यता हासिल कर श्रीराम संगीत महाविद्यालय रायपुर की स्थापना 1936 में की यह पं. विष्णु कृष्ण जोशी जी की संगीत जगत में प्रतिष्ठित, सफल महाविद्यालय के रूप में संगीत की अमूल्य धरोहर के रूप में स्थापित है। श्री जोशी जी ने उसी को अपनी कर्म स्थली मानकर जीवन पर्यन्त अपनी संगीत साधना में रत रहकर उन्होंने प्रतिभावान शिष्यों को संगीत की तालीम देकर कलाकार के साथ गुरु धर्म भी निभाया उनके शिष्यों में प्रमुख डॉ. अरुण सेन , डॉ. अनिता सेन, पं. दिगम्बर केलकर श्री राममूर्ति जनस्वामी, ध्रुवनारायण अग्रवाल, मनोहर केलकर, सुलेखा पेंडसे, गुणवन्त माधव व्यास, शैला पिंपलापुरे, मालती केलकर, डॉ. जगमोहन अग्रवाल, डॉ. विजय जोशी सहित सुयोग्य पुत्र डॉ. अरविन्द जोशी ने भी संगीत की शिक्षा अपने पिता पं. विष्णु कृष्ण जोशी से प्राप्त कर इस परम्परा को श्री अरविन्द जोशी ने अपने होनहार पुत्र अनिरुद्ध जोशी को संगीत की शिक्षा दी पुत्र अनिरूद्ध आज सितार वादक के रूप में प्रतिष्ठित नाम सिर्फ इसलिये है कि उन्हें यह शिक्षा परम्परागत उनके परिवार से मिली। वे बाखूबी संगीत विरासत को आगे बढ़ाकर अपने परिवार का नाम रोशन कर रहे हैं। डॉ. अरविंद जोशी अपने आत्मकथ्य में एक जगह कहते हैं कि मेरे पिता चाहते थे मैं महाविद्यालय में रहकर कार्य करूँ परन्तु अरविंद जी की जिद के आगे पिता बाधक नहीं बने इस तरह वे शासकीय सेवा में चयनित हुए विभागाध्यक्ष संगीत रहे। जोशी जी ने संगीत के साथ-साथ अपनी पी.एच.डी 'बस्तर के आदिवासी संगीत वाद्य एक अनुशीलन' पर पूर्ण की वे अपनी संगीत साधना, लेखन में भी समान रूप से दखल रखते थे। आपकी हिन्दी-अंग्रेजी लिपि मोतियों की तरह सुन्दर सुस्पष्ट जैसे टाईप किये हुए शब्द हो। आज जब हम उनकी डायरी के पन्नों को देखते है जिसे खुद उन्होंने सारे रागों को लिपिबद्ध किया है तो मुद्रित पुस्तिका का आभास होता है। वे म.प्र. के प्रसिद्ध सितार वादक। अपने पिता पं. विष्णु कृष्ण जोशी के साथ पं. बिमलेन्दु मुखर्जी के भी शिष्य रहे। संगीत परम्परा की यह तीसरी पीढ़ी के अनिरूद्ध से काफी खुश थे। पिता पुत्र की प्रगति पर गर्व करता है। इस संबंध में जोशी जी पूर्ण आश्वस्त थे। डॉ. अरविंद जोशी अंतर्मुखी कलाकार थे यह कहना है पं. किरण देशपांडे जी का मुझे इस अवसर पर रवीन्द्रनाथ टैगोर का कथन याद आता है। भगवान तुम बहुत बड़े हो, बहुत बड़े हो तुमने इतना बड़ा संसार बनाया, सूरज बनाया चाँद बनाया, नक्षत्र बनाए, तुमने इतनी बड़ी काली रात बनायी जो दिगंत-पर्यन्त परिव्याप्त है होराईजन तक छाई हुई है और हम तुम्हारे ही बनाए हुए छोटे से मिट्टी के इंसान है, तो क्या हुआ ? हमने भी एक दिया बनाया, उसमें स्नेह ढाला, तेल डाला और चेतना की बत्ती जलाई और तुम्हारी इतनी बड़ी काली रात में हम छोटे से मिट्टी के इंसान, छोटा सा मिट्टी का दिया लेकर इतने बड़े अंधकार से लड़ते हैं बड़े-बड़े तूफान, बड़े-बड़े बवंडर बड़ी-बड़ी आँधियां आती है। हमारा दिया बार-बार बुझता है उसको हम बार-बार जलाते हैं और हम उस रात से हार नहीं मानते है। लड़ते चले जाते हैं लड़ते चले जाते हैं जब तक सूरज की पहली सुनहली किरण आकर के उसकी लौ को चूम नहीं लेती है तब तक हम लड़ते चले जाते हैं चले जाते है'। डॉ. अरविन्द जोशी की लगन साधना ईमानदारी मौनव्रत धारी दुनिया में इंसान जब जन्म लेता है तब उसके साथ कर्म भी पीछे लग जाते हैं। यह सब व्यक्तियों के कर्म पर निर्भर करता है। उन्होंने अपने जीवन में कभी आराम नहीं किया। कुछ न कुछ नए विचार उनके दिमाग में कौंधते रहते उनकी कल्पना शक्ति अद्भुत है। शरीर से कमजोर होने के बाद भी उनकी सोच विचार शक्ति प्रबल थी वे पुरानी परंपरा वर्तमान परम्परा में बदलाव तथा आने वाले काल में क्या माँग हो सकती है, वे भूत वर्तमान, भविष्य काल के अन्तर को ध्यान में रखते हुए चलते रहे। मनुष्य की मृत्यु तो निश्चित है किन्तु ईश्वर से जीने का हौंसला मांगना चाहिए सच्चे साधकों ने भला कब अपनी साधना के दिन गिने हैं। लेकिन समय और समाज की आँखों ने उनके सद्कर्मों का लेखा-जोखा जरूर रखा है। डॉ. जोशी के सद्कर्म के सहयोगी रहे पं. बिमलेन्दु मुखर्जी, निरंजन महावर, डॉ. ए. सरकार, डॉ. ए.टी. दाबके, डॉ. एल.एन. गुप्ता, कमलाकर डोनगांवकर, राग तेलंग, अभय फगरे, डॉ. आर. एस. जायसवाल, प्रो. मुकुंद भाले प्रमुख हैं। डॉ. जोशी की यादों को चिरस्थाई बनाने में हमें ढेरों यादें, संस्मरण, आलेख प्राप्त हुए हैं परन्तु पत्रिका की सीमा के चलते हमने 'गागर में सागर' भरने का दुस्साहस किया है इनमें प्रमुख पदम्श्री उमाकान्त गुन्देचा विख्यात ध्रुपद गायक, पं. किरण देशपांडे वरिष्ठ तबला वादक गुरू शिखर सम्मान प्राप्त डॉ. लता मुंशी भरतनाट्यम नृत्यांगना, प्रो. गुणवन्त माधवलाल व्यास, प्रो. राधेश्याम जायसवाल, दीपक गुणवंत व्यास, गिरधर कुमार दुबे, अर्चना जोशी, डॉ. सुनील भट्ट, अनिरूद्ध जोशी, स्वप्निल जोशी, सुप्रीत देशपांडे, राजेश गनोदवाले, अवंतिका जोशी, डॉ. विजय जोशी, विवेक जोशी, पद्मश्री डॉ. अरुण दाबके, सुषमा मिश्रा, पं. कीर्ति माधव व्यास, मनोहर भिड़े, प्रवीण शेवलीकर, मकरन्द हलवे सहित कला समय के नियमित स्तम्भ सम्मिलित किये गये हैं। डॉ. जोशी प्रेम, सहृदयता, कृतज्ञता उनके व्यक्तित्व की विशेषता थी। वे सदा याद किए जायेगे। इस अंक से हमने वरिष्ठ फोटो ग्राफर जगदीश कौशल द्वारा दुर्लभ फोटो खीचें गये है इन छायाचित्रों की श्रृंखला कला समय की धरोहर के अंतर्गत शुरू की है। आपकी प्रतिक्रियाओं का स्वागत है।

> 'जब हम वापस आएँगे
> तो पहचाने न जाएँगे
> हो सकता है हम लौंटे
> तुम्हारे घर के सामने
> छा गई हरियाली की तरह
> वापस आएँ हम
> पर तुम
> जान नहीं पाओगे कि
> उस हरियाली में हम
> छिटके हुए हैं'
>
> - अशोक वाजपेयी

-भँवरलाल श्रीवास

आलेख

रागमाला केन्द्रित महत्वपूर्ण ग्रन्थः हमारी अप्रतिम सांगीतिक धरोहर

नर्मदा प्रसाद उपाध्याय

भारत की समृद्ध सांस्कृतिक परम्परा की यह विशेषता है कि इसमें स्वर भी देखे जा सकते हैं और रंगों तथा रेखाओं को भी सुना जा सकता है। इसके सशक्त उदाहरण वे रागमाला पर आधारित लघुचित्रों के अंकन हैं जो मध्यकाल में भारत में विभिन्न अंचलों की लघुचित्र शैलियों में बनाये गए। इन रागमाला चित्रों पर कला इतिहासकारों ने बहुत कार्य किया है। विभिन्न लघुचित्र शैलियों में बनाए गये लघुचित्रों पर अनेक ग्रन्थ हैं तथा उनके कैटलॉग प्रकाशित हुए हैं। लेकिन इन राग रागिनीयों की मूल अस्मिता पर केन्द्रित ग्रन्थों की जानकारी प्रायः नहीं है। इन ग्रन्थों में इन रागों के मर्म को आख्यायित किया गया है। यहां संक्षेप में कुछ महत्वपूर्ण ग्रन्थों का उल्लेख किया जा रहा है।

वेदों में रागों के आरम्भिक स्वरूप का अस्तित्व है। वैदिक युग में मन्त्रोच्चार के विशेष स्वर थे जो धीरे-धीरे निश्चित लय में बंधे। बाद में पाणिनी ने अपनी अष्टाध्यायी में तीन वैदिक स्वरों की तुलना अपने समय के सात वैदिक स्वरों से की। भरत के नाट्य शास्त्र में भी संगीत विषयक विवेचन है।

नारद की शिक्षा रागमाला को अनेक विद्वान संगीत का प्राचीनतम ग्रन्थ मानते हैं। प्राचीन ग्रन्थों में 'राग सागर' का नाम है जिसे नारद और दत्तिल ने आठवीं सदी में रचा था। नारद के ही संगीत मकरंद में सबसे पहले रागों का वर्गीकरण मिलता है। मतंग के 'वृहद्देषी' में जो चौथी पांचवीं सदी की रचना है में राग का उल्लेख है। राग शब्द का उल्लेख न केवल भगवत गीता, मैत्री उपनिषद, और मुण्डकोपनिषद् में है बल्कि इसका उल्लेख बौद्ध धर्म के ग्रन्थों में भी है। मम्मट ने नौवीं सदी में संगीत रत्नमाला की तथा सोमेश्वर भूपति ने 1131 ईस्वी में 'मानसोल्लास' की रचना की थी। तेरहवीं सदी में शारंगदेव ने 'संगीत रत्नाकर' रचा। यद्यपि अमीर खुसरो ने अनेक राग रचे तथा सितार और तबला जैसे वाद्य बनाये किन्तु स्वतन्त्र रूप से राग रागिनी के सम्बन्ध में उन्होंने कोई ग्रन्थ लिखा हो इसकी जानकारी नहीं है। पद्रहवीं सदी में जौनपुर के शासक इब्राहिम शाह शर्की ने संगीत को बहुत प्रोत्साहन दिया। उनके समय में ईस्वी सन् 1428 में संस्कृत में लिखी गई कृति 'संगीत शिरोमणि' जिसमें राग वर्णन था उन्हें समर्पित की गई। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि लगभग 13 वीं सदी के आते आते महत्वपूर्ण रागों का स्वरूप निर्धारित हो गया था तथा सन् 1440 ईस्वी में नारद की 'पंचम सार संहिता' में 6 राग और उनकी 30 रागनियों के स्वरूप को स्पष्ट किया गया था ईस्वी सन् 1486 से 1516 के बीच ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर ने संगीत पर अपनी महत्वपूर्ण कृति 'मानकुतूहल' की रचना की। वे ध्रुपद के आविष्कारक थे।

सन् 1440 ईस्वी में नारद की पंचम सार संहिता में 6 राग और उनकी 30 रागनियों के स्वरूप को स्पष्ट किया गया था ईस्वी सन् 1486 से 1516 के बाच ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर ने संगीत पर अपनी महत्वपूर्ण कृति मानकुतूहल की रचना की। वे ध्रुपद के आविष्कार थे।

इसमें राग वर्णित थे। रागमाला पर आधारित मेषकर्ण की कृति 'रागमाला' रीवा में सृजित हुई। इसके आधार पर पहाड़ी कलमों में लघुचित्र बने। इस कृति में पांच मुख्य राग पांच रागिनियां और रागपुत्र निर्धारित किये गये। भारतीय संगीत पर सिकन्दर लोधी के समय ईस्वी सन् 1489 से 1517 के बीच फारसी में भारतीय संगीत पर पुस्तक लिखी गई। पूर्व मध्यकाल में पारसदेव ने 'संगीत समयसार' सौराष्ट्र के राजा हरिपाल देव ने 'संगीत सुधाकर' तथा जैन मुनि सुधाकलश ने 'सन्गीतोपनिषद' जैसे ग्रंथ लिखे। मेवाड़ के महाराणा कुम्भा ने 'संगीतराज', 'संगीत मीमांसा' तथा 'संगीतक्रम दीपिका' जैसी कृतियां रचीं । उन्हीं के समकालीन कल्लिनाथ ने 'रत्नाकर्तिका' की रचना की जो संगीत का प्रसिद्ध ग्रंथ था ।

अकबर के दरबार के प्रसिद्ध गायक तानसेन जिनका समय ईस्वी सन् 1549 से 1590 के बीच का था के द्वारा 'बुधप्रकाश' नामक सुप्रसिद्ध ग्रंथ रचा गया जिसमें रागों के सम्बन्ध में विशद जानकारी थी। इस ग्रंथ का 17 वीं सदी में फारसी में 'तशरीह उल मौसिकी' के नाम से अनुवाद हुआ तथा हाल ही में वर्ष 2012 में डॉक्टर नज़मा परवीन अहमद ने इसका अंग्रेजी में अनुवाद किया है।

ईस्वी सन् 1610 में माधव भट्ट की 'संगीत चन्द्रिका', इसी काल के दामोदर मिश्र की 'संगीत दर्पण' तथा ईस्वी सन् 1620 में उन्हीं के द्वारा रचित 'व्यंकटमुखी' तथा 'चतुर्दन्ड प्रकाशिका' अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं क्योंकि इनमें उत्तर भारत और दक्षिण भारत के संगीत को वर्गीकृत किया गया।

दक्षिण में विजयनगर के राजा रामराजा के मन्त्री रामामात्य की कृति 'स्वरमेष कलानिधि' भी रोगों की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। यह भी ईस्वी 1610 के आसपास लिखी गई थी। खानदेश के शासक बुरहामखां जिनका काल 16 वीं सदी का है के दरबार में पुण्डरीक विठ्ठल नामक संगीतकार थे। उन्होंने भारतीय संगीत को आधार बनाकर ईस्वी सन् 1562 से ईस्वी सन् 1599 के बीच 'सदराग चन्द्रोदय' नामक ग्रंथ की रचना की जिसमें उत्तर तथा दक्षिण के रागों को 19 थाटों के अन्तर्गत प्रस्तुत किया गया था। सन् 1599 ईस्वी में जब असीरगढ़ का पतन हुआ तब विठ्ठल के आश्रयदाता राजकुमार माधोसिंह हो गये जिनके संरक्षण में विठ्ठल ने 'रागमाला', 'राग मंजरी' और 'नर्तन' नामक तीन ग्रंथ रचे। इनमें रागमाला के राग के स्वरूप का वर्णन किया गया है।

सत्रहवीं सदी में फकीर खान ने 'राग दर्पण' की रचना की तथा मानकुतूहल का इस प्रकार अनुवाद कर उसका संक्षिप्तीकरण किया। महाराजा शिवाजी के पुत्र सम्भाजी के शिक्षक वेद ने 'संगीत मकरंद' तथा 'पुष्पान्जलि'

नामक ग्रन्थ लिखे जिनमें विभिन्न रागों का उल्लेख किया गया। सोमनाथ नामक संगीतज्ञ ने 'रागविबोध' और 'जातिमाला' नामक ग्रन्थ लिखे जिनमें नायिकाओं का वर्णन रागिनियों के रूप में किया उन्होंने ईरानी रागों से भी परिचय कराया।

जयपुर के राजा प्रतापसिंह ने 18 वीं सदी में 'संगीतसार' शीर्षक ग्रन्थ में अनेक नये रागों का उल्लेख किया। यहां यह तथ्य विशेष उल्लेखनीय है कि 'संगीत दर्पण' में राग की उत्पत्ति शिव तथा शक्ति से मानी गई। यह कहा गया कि शिव ने जब नाट्य आरम्भ किया तो उनके विभिन्न मुखों से श्री वसंत, भैरव, पंचम तथा मेघ रागों की उत्पत्ति हुई तथा नृत्य के प्रसंग में पार्वती अथवा शक्ति के मुख से नट-नारायण राग की उत्पत्ति हुई। इसी प्रकार 15 वीं सदी में शुभंकर द्वारा रचित संगीत दामोदर में रागों को कृष्ण तथा गोपियों से सम्बद्ध माना गया। कहा जाता है कि 16 हजार रागों की रचना कृष्ण और गोपियों ने की थी जिनमें से बाद में केवल 36 राग शेष रह गये। राग दर्पण में कहा गया कि शंकराभरण राग सबसे पहले महादेव ने, लंकध्वनि राग हनुमान ने तथा खम्बावती भरत ने गाया था।

आधुनिक समय में अनेक ग्रन्थ राग रागिनी के सम्बन्ध में उपलब्ध हैं। गुरुमुखी में हिन्दू संगीत पर सन् 1823 में दीवान लच्छीराम द्वारा लिखा गया एक ग्रंथ ब्रिटिश लाइब्रेरी में है जिसके अध्यायों में राग रागिनी का विवरण है। इसी तरह इसी समय में 'संगीत सुदर्शन' नामक ग्रन्थ पंजाब के एक विद्वान सुदर्शन आचार्य द्वारा लिखा गया है।

19 वीं सदी के आरम्भ से लेकर 20 वीं सदी के आरम्भ के कुछ महत्वपूर्ण ग्रंथों में महमूद रेजा़ कृत 'नगमात ए अशर्फी' राधामोहन सेन कृत 'संगीत तरंग' दीवान लच्छीराम कृत 'बुद्धिप्रकाश दर्पण' कृष्णानन्द व्यासदेव कृत राग 'कल्पद्रुम' छत्र नृपति कृत 'पद रत्नावली', सर सुरेन्द्रमोहन टैगोर कृत, 'संगीत सार संग्रह', गुसाई चुन्नीलालजी कृत, 'नाद विनोद', भानु कवि (जगन्नाथ प्रसाद) कृत 'काव्य प्रभाकर' तथा विष्णु शर्मा भातखंडे कृत 'श्री माल लक्ष संगीतम' तथा 'अभिनव राग मंजरी' 19 वी सदी में पटना के राजकुमार राजा ने ईरानी में जो 'नगमात ए अशर्फी' लिखी उसमें राग वर्गीकृत किये गये।

यहां यह भी दृष्टव्य है कि राग रागिनियों के चित्रांकन पर कला इतिहासकारों ने काफी कार्य किया है। इनमें डॉ. ओ. सी. गांगुली तथा कैलस एब्लिंग के ग्रंथ अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

इन ग्रंथों में हमारे संगीत की महान विरासत विद्यमान है। यह विरासत न केवल हमारे अतीत की उजली इबारत है बल्कि आने वाले समय का वह उज्ज्वल पृष्ठ भी जिसे हमारी पीढियाँ अपने इस अतीत के आलोक में रचकर आने वाले भविष्य के लिये सुरक्षित कर देंगी।

-85, इंदिरा गांधी नगर, आर.टी.ओ. कार्यालय के पास,
केसरबाग रोड इंदौर-9 (म.प्र.), मोबाइल : 9425092893

संगीत निबन्ध सागर

लेखक : डॉ.लक्ष्मीनारायण गर्ग

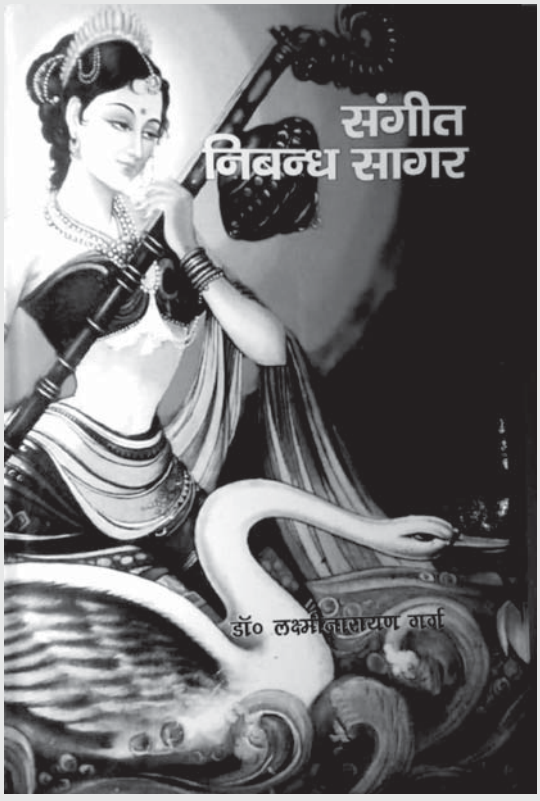

संगीत की विभिन्न विधाओं से सम्बन्धित शोधार्थियों के लिए इसमें निम्नांकित महत्वपूर्ण निबन्ध दिए गए हैं जिनके शीर्षक इस प्रकार हैं -

संगीत की संकल्प शक्ति; सत्य; सौन्दर्य और संगीत; नाद-ब्रह्म और उसका स्वरूप संगीत-निर्देशन ओर उसकी कला; रसेश्वर कृष्ण और संगीत; संगीत का मनोविज्ञान; संगीतकला की सच्ची उपासक ये वेश्यायें; एशियाई नाट्य की उत्पत्ति ओर उसका ऐतिहासिक विकास; साकार संगीत; भक्ति संगीत; संगीत में शोध; तराना; भारतीय संगीत; संगीत-शिक्षा; संगीत कथा; गजल का विकास; भैरव, ध्रुपद-गायकी; भारतीय फिल्मसंगीत; काव्य और संगीत; लोक-संगीत; जयदेव कृत 'गीतगोविन्द'; नन्दिकेश्वर कृत 'अभिनय दर्पण' थाट : एक अध्ययन; उत्तर भारतीय संगीत का संक्षिप्त इतिहास; उत्तर और दक्षिण भारत का संगीत; रवीन्द्र-संगीत; नजरुल-संगीत; पंजाब का गुरमति-संगीत; ताल-तरंग; मधुर वाद्य जलतरंग; तबले का सफर और उसकी उत्पत्ति; वाद्यवृन्द (ऑरकेस्ट्रा); ताल और रस; डमरु वाद्य और उसका परिवार; भारतीय संगीत में नृत्य का स्थान; भारतीय नृत्य-नाटिका; नाट्य और नृत्य; लोकनृत्य; अभिनय-कला; भारत के शास्त्रीय नृत्य; पाश्चात्य नृत्यकला आधुनिक नृत्य; रास नृत्य; नाट्यमण्डप या नाट्यशाला; ताण्डव और लास्य; नृत्य के चरणशीर्ष घुँघरू।

आकार 18''X 22'' अठपेजी पृष्ठ संख्या 290, मूल्य रू. 350/-, डाकव्यय पृथक
संगीत कार्यालय, हाथरस-204101 (उ.प्र.)
टेलीफोन तथा फैक्स : (05722) 231111, 230123, 270270, मो. 9927063111
e-mail : sangeetkaryalaya101@gmail.com

साक्षात्कार डॉ. अरविंद विष्णु जोशी के बारे में श्रीमती अर्चना जोशी जी से भँवरलाल श्रीवास की बातचीत

उस्ताद विलायत खाँ से प्रभावित होकर सितार चुना

● **डॉ. जोशी के बारे में आवश्यक जानकारी जन्म स्थान, जन्म दिनांक, निधन दिनांक, शिक्षा, परिवार परिचय देना चाहेंगी ?**

– माता – श्रीमती विजया विष्णु जोशी
पिता – पं. विष्णु कृष्ण जोशी, संस्थापक श्रीराम संगीत महाविद्यालय, रायपुर (म.प्र.)
जन्म – 13 मई 1948 गुरुवार वैशाख शुक्लपक्ष पचंमी, रायपुर (म.प्र.)
शिक्षा – एम.कॉम रविशंकर विश्वविद्यालय, रायपुर (म.प्र.)
संगीत शिक्षा – मध्यमा गायन इ.क. संगीत वि.वि. खैरागढ़ म.प्र., बी. म्यूज सितार इ.का.सं. वि.वि. खैरागढ़, म.प्र., एम.ए. सितार, स्वर्ण पदक इ.क. वि.वि. खैरागढ़ म.प्र.।
शोध प्रबंध – बरकतउल्लाह वि.वि. भोपाल।
परिवार – बड़ी बहन : श्रीमती वसुंधरा बसंत कान्हे, सितार व्याख्याता श्रीराम संगीत महाविद्यालय, रायपुर। 1. डॉ. अरविन्द जोशी भाईयों में ज्येष्ठ, 2. श्री रामाकांत जोशी बैंक अधिकारी (व्हायोलिन) 3. श्री विजय जोशी प्राध्यापक शास. महाविद्यालय, रायपुर (संगीत विभागाध्यक्ष) 4. श्री विवेक जोशी भारतीय जीवन बीमा निगम कोरबा विकास अधिकारी (तबला)।

श्रीमती अर्चना अरविंद जोशी

सभी भाईयों को संगीत विषय में रूचि, किंतु अरविंद जी ने अपना ध्येय संगीत सेवा ही निश्चय किया था भविष्य में रोजगार कहां प्राप्त होगा इसलिये वाणिज्य में ही अध्ययन किया साथ-साथ संगीत में भी। भविष्य में रोजगार की संभावनाओं को ध्यान में रखते हुये कहाँ स्थापित होना इसकी चिंता तो मन में थी। अंतत: सबसे पहले श्रीराम संगीत महाविद्यालय में अवैतनिक कार्य किया उसके पश्चात इंदिराकला विश्व विद्यालय खैरागढ़ में व्याख्याता सितार का पदभार ग्रहण किया। संघ लोक सेवा आयोज की परीक्षा में सफलता प्राप्त कर 1980 में भोपाल में महारानी लक्ष्मीबाई कन्या महाविद्यालय भोपाल में व्याख्याता (सितार) पद पर नियुक्ति।

स्वयं के परिवार में – श्रीमती अर्चना (शशि पेण्डसे) अरविंद जोशी ज्येष्ठ पुत्री कु. अवंतिका अरविंद जोशी (अधिवक्ता)। पुत्र चि. अनिरूद्ध जोशी स्वतंत्र कलाकार सितार वादक। परिचय – डॉ. अरविंद विष्णु जोशी : सितार वादक। सेवानिवृत्त विभागाध्यक्ष संगीत विभाग, महारानी लक्ष्मी कन्या महाविद्यालय भोपाल म.प्र.। निधन : 7 सितम्बर 2018।

● **डॉ. जोशी जी के माता-पिता भाई-बहन और उनका संगीत घराना के बारे में जानना चाहेंगी ?**

– माता – श्रीमती विजया विष्णु जोशी, पिता – पं. विष्णु कृष्ण जोशी जी स्वयं गायक, संस्थापक संगीत के सेवक थे। शास्त्रीय संगीत को छत्तसीगढ़ में सुबद्ध वैज्ञानिक शिक्षा का श्री गणेश पं. विष्णु कृष्ण जोशी द्वारा किया गया। ग्वालियर घराने के प्रसिद्ध गुरु पं. राजाभैया पूछवाले जी के प्रमुख शिष्यों में उनका नाम है। रायपुर में रहकर उन्होंने सुयोग्य शिष्यों की वृहद श्रृंखला तैयार की। उनके प्रमुख शिष्यों में डॉ. अरुण कुमार सेन, स्व. डॉ. श्रीमती अनिता सेन, डॉ. हेमलता जनास्वामी, श्री रामबाबू जनास्वामी, पं. गुणवंत माधव व्यास (चक्रधर सम्मान) श्री बसंत शेवलीकर, पं. दिगंबर केलकर, श्री मनोहर केलकर, श्रीमती सुलेखा पेण्डसे, श्रीमती उषा चांदोरकर, डॉ. अरविंद विष्णु जोशी, श्रीमती अर्चना अरविंद जोशी, श्री विनोद शेष, डॉ. विजय विष्णु जोशी, श्री रमेश पालकर, श्रीमती यश दीक्षित आदि।

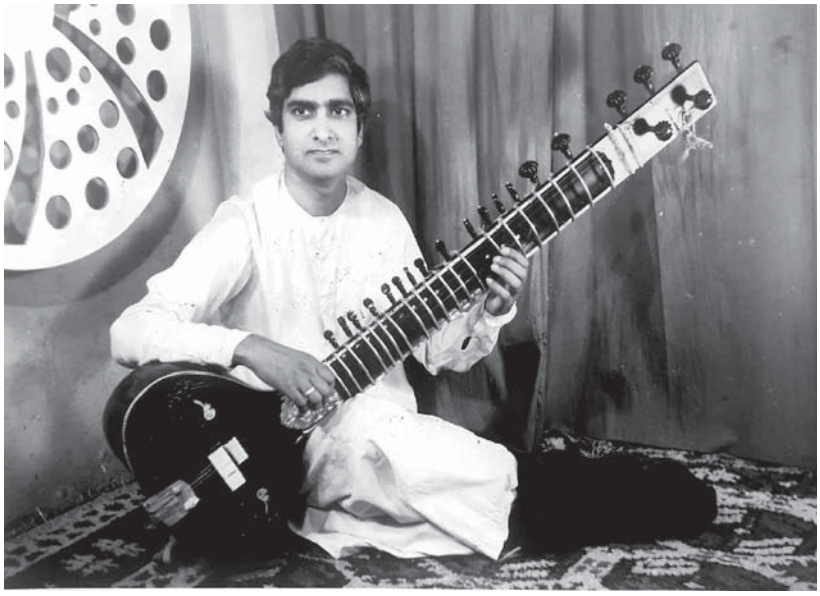
डॉ. जोशी की एकांत संगीत साधना

● **डॉ. जोशी की संगीत शिक्षा, महत्वपूर्ण**

डॉ. अरविंद जोशी पुत्र अनिरूद्ध जोशी रियाज मुद्रा में

आयोजन उनके गुरु तथा शिष्यों के बारे में बताना चाहेंगी ?

– संगीत शिक्षा को महत्व देने के कारण ही संगीत के सफल सेवक बनने का पद प्राप्त हुआ। जिसका श्रेय परम पूज्यनीय पिता पं. विष्णु कृष्ण जोशी जी को जाता है। अभ्यास करने का उत्साह जीवन का अंग था। ग्रंथों को पढ़ना अच्छा संग्रह एकत्रित करना आदत में था। शांत स्वभाव, संगीत के बारे में ही सोचते रहना, रागों की शुद्धता सिलसिलेवार संगीत साधना करना यही दिनचर्या रही। भिलाई में संगीत का बड़ा आयोजन जिसमें उस्ताद विलायत खाँ साहब का आना और सितार विषय को स्वीकार कर जीवन का अंग बना लेना ही अरविंद जी का ध्येय बन गया। उस्ताद खां विलायत साहब के सितार वादन से प्रभावित होकर पिताजी से विचार विमर्श करके सितार शिक्षा का अध्ययन प्रारंभ हुआ। प्रथम गुरू के रूप में पिताजी से ही शिक्षा प्रारंभ की। श्रीराम संगीत महाविद्यालय रायपुर के सितार शिक्षक श्री राजेन्द्र तिवारी जी से भी शिक्षा ग्रहण की। उसके पश्चात सितार का गहन प्रशिक्षण पं. बिमलेंदु मुखर्जी से प्राप्त किया। मुखर्जी परिवार एवं जोशी परिवार के पारिवारिक रिश्ते थे। प्रतिवर्ष पं. भातखंडे पुण्य तिथि के कार्यक्रम में वे श्रीराम संगीत महाविद्यालय रायपुर में सितार वादन प्रस्तुति हेतु उपस्थित रहते थे।

● **उनकी जीवन शैली, दिनचर्या, नियम संयम ?**

– संगीत के महत्वपूर्ण आयोजन – आकाशवाणी के बी–ग्रेड कलाकार भारत भवन, मध्यप्रदेश कला परिषद के आयोजन में शिरकत एवं मुख्य आयोजन तो स्तांत: सुखाय जिसका नियमित प्रात: एवं सायंकालीन अभ्यास घर पर निरंतर होता था। विभिन्न क्षेत्रों में जिन्होंने मार्गदर्शन दिया है उनमें प्रमुख रूप से पिता पं. विष्णु कृष्ण जोशी, पं. बिमलेंदु मुखर्जी, पं. गुणवंत माधवलाल व्यास जी है। जीवनशैली के बारे में सभी कार्य व्यवस्थितता के प्रमाण है। प्रात: 4 बजे उठना योग साधना, सबेरे घुमने जाना, संध्या स्नान पूजा पाठ, रियाज महाविद्यालय जाना, आने के पश्चात शाम को भी रियाज करना आदत में था। विशेष परिस्थितियों में ही घर से बाहर निकलना होता था। संगीत के कार्यक्रमों में सम्मिलित होना या अपने विषय से संबंधित जहां चर्चा होती थी वहां उपस्थित रहना।

● **डॉ. जोशी का पारिवारिक, संगीत, सरकारी यात्राएं, उनके अनुभव ?**

– पारिवारिक आयोजनों में भी विशेष रूप से रायपुर में उपस्थित रहना। घर में सबसे बड़े होने के कारण रायपुर में वर्ष में दो या तीन बार यात्रा होती ही थी। शासकीय यात्राओं में विषय निरीक्षण एवं परीक्षा (प्रायोगिक) सम्पन्न करने जाना होता था।

● **बस्तर आदिवासियों पर उनकी पी–एच.डी. इसकी प्रेरणा जबकि जोशी जी संगीत से रिश्ता रखते थे ?**

– शोध प्रबंध का विषय इसके लिये बहुत दिनों तक विचार किया गया। अंतत: पिताजी के शिष्य पं. गुणवंत माधवलाल व्यास जी की प्रेरणा से विषय तय करके विषय पर गहन अध्ययन प्रारंभ किया गया। जिस काम को प्रारंभ कर, अनके व्यक्तियों से साक्षात्कार, दूरभाष पर चर्चा विभिन्न शहरों, गाँवों में जाना ऐसा कार्य किया गया। निदेशक के रूप में डॉ. हीरालाल शुक्ल भाषा विज्ञान अध्यक्ष बरकतउल्लाह विश्वविद्यालय भोपाल (म.प्र.) द्वारा स्वीकृति प्राप्त कर शोध प्रबंध को 1996 से 1998 में पूर्ण किया गया। जैसा कि विदित है कि संगीत विषय से रिश्ता होने के कारण विषय भी बस्तर के विभिन्न वाद्य एक अनुशीलन था। शोध प्रबंध भी उत्साह से पूर्ण हुआ। परिवार के सभी सदस्य इस कार्य में लीन थे कि बहुत अच्छे स्तर का शोध प्रबंध तैयार हो जिसका लाभ भविष्य में विद्यार्थियों को हो। जिसने भी शोध प्रबंध का अध्ययन किया

डॉ. जोशी का संगीत साधना कक्ष और वाद्य यंत्र

प्रशंसा की। शोध प्रबंधन में बस्तर के गीतों का उनके वाद्यों पर बजाया संगीत है। ध्वनि मुद्रण भी किया गया छायाचित्र भी उपलब्ध हैं।

अनुक्रमणिका

१. राग शुद्धकल्याण .... ९.
२. राग कामोद .... १३.
३. राग छायानट .... १७.
४. राग गौड़सारंग .... २१.
५. राग हिन्डोल .... २५.
६. राग शंकरा .... २९.
७. राग देशकार .... ३३.
८. राग जैजयवंती .... ३७.
९. राग रामकली .... ४१.
१०. राग पूरियाधनाश्री .... ४५.
११. राग वसंत .... ४९.
१२. १३. राग परज .... ५३.
१४. राग पूरिया .... ५७.
१५. राग ललित .... ६१.
१६. राग बहार .... ६५.
१७. राग मियांमल्हार .... ७१.
१८. राग गौड़मल्हार .... ७५.
१९. राग दरबारी कान्हड़ा .... ७९.
२०. राग अड़ाना .... ८३.
२१. राग मुलतानी .... ८७.
२२. राग श्री .... ९१.
२३. राग पीलू .... ९५.

सुन्दर हस्तलिपि डॉ. अरविंद जोशी की संगीत डायरी से

● **डॉ. जोशी जी के बारे में कोई प्रसंग, संस्मरण जो यादगार है ?**

– मेरा इस परिवार में विवाहोपरांत प्रवेश हुआ 1979 जून में तब मुझे मेरे श्वसुर जी द्वारा एक आदेश प्राप्त हुआ कि यदि तुम अपने पति को कलाकार के रूप में देखना चाहती हो तो उसे 'कभी घूमने जाने के लिये मत कहना' इस वाक्य का मैंने जीवन पर्यंत ध्यान रखा जिसका मेरे परिवार को अत्यधिक लाभ प्राप्त हुआ। प्रारंभ में इंदिरा कला वि.वि. में कार्यरत थे उसके पश्चात संघ लोक सेवा आयोजन की परीक्षा में सफल भोपाल से महारानी लक्ष्मीबाई कन्या महाविद्यालय में नियुक्ति (भोपाल में हुई)।

संस्मरण के रूप में पढ़ाई के साथ संगीत अभ्यास हमारे परिवार के सभी सदस्यों का अंग बन गया। शाम को बेटी अवंतिका एवं अनिरूद्ध को संगीत अभ्यास नियमित रूप से करवाना नियम था एवं अच्छे दर्जे के कार्यक्रमों में सम्मिलित होना। पिताजी के कहे अनुसार मैंने उस बात का पालन किया जिसके कारण मैं अरविंद जी को पति के रूप में अच्छे शिक्षक, अच्छा कलाकार, अच्छा व्यक्ति, अच्छा पिता एवं समाज में सभी स्थानों पर प्रशंसित्त व्यक्ति के रूप में देखा है।

महारानी लक्ष्मीबाई कन्या महाविद्यालय भोपाल में विद्यार्थियों को प्रशिक्षण दिया। शोध प्रबंध के निदेशक जिनको मार्गदर्शन दिया – 1. डॉ. श्री सुनील भट्ट, प्राचार्य मैहर संगीत महाविद्यालय में पदस्थ हैं। 2. डॉ. श्रुति कीर्ति निदेशिका लिटिल बैले टुप, भोपाल, 3. डॉ. प्रज्ञा (साईखंडकर) वाघमारे निजी विद्यालय में पदस्थ।

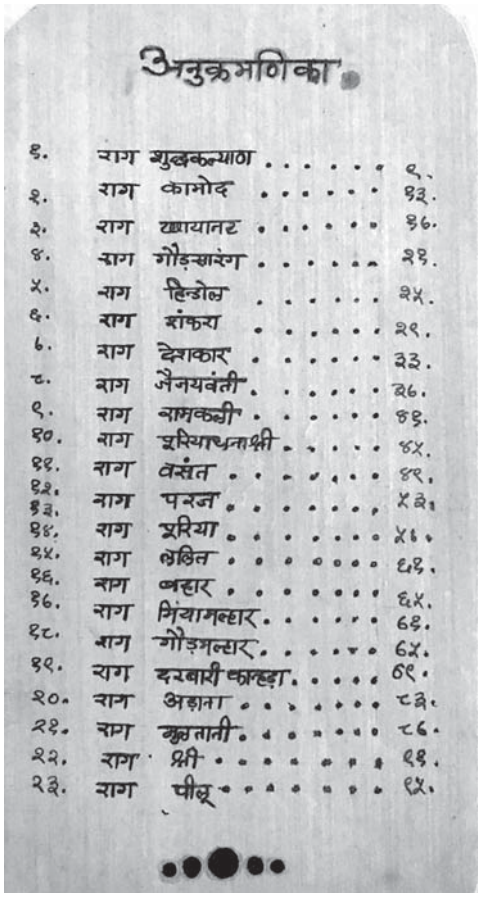

● **उनकी अनुपस्थिति में आपकी जवाबदारियां ?**

– आपका आठवां प्रश्न है कि उनकी अनुपस्थिति में जिम्मेदारियां अरविंदजी की जीवन शैली के अनुसार मैंने अपने को बना लिया है वे शारीरिक रूप से अब नहीं है कि जीवन पर्यंत वे मेरे साथ हैं ऐसा मुझे प्रतीत होता है। उनका शांत स्वभाव, संयमित रहना, मृदुल वाणी एवं सभी से अच्छा व्यवहार करना मैंने एवं मेरे बच्चों ने अनुसरण करना है। यह निशचित किया है।

पारिवारिक जिम्मेदारियों का उत्तरदायित्व तो उन्होंने बहुत पहले ही सौंप दिया था क्योंकि कलाकार को अभ्यासरत रहना पड़ता है। मैंने भी इस कार्य को करके उनका विश्वास प्राप्त किया है। संगीत के क्षेत्र में मैं भी कार्य करती हूँ जिसके लिये निश्चिंतता होना आवश्यक है। जीवन के अंतिम क्षणों तक बेटी अवंतिका एवं मैंने उनके पसंद के रागों में बंदिशे सुनाने का कार्य किया है एवं बेटा अनिरूद्ध सजीव सितार वादन सुनाता था उसके वादन से प्रसन्न रहते थे यदि भोपाल में उसकी अनुपस्थिति उसके कार्यक्रम के कारण तो पूणे से रियाज सुनाना यह दिनचर्या थी।

एक विशेष गुण के बारे में मैं ना कहुँ तो अच्छा नहीं होगा जीवन के 40 वर्ष मेरे साथ रहे लेकिन कभी भी नाराज नहीं होना किसी के बारे में गलत कहना या विवादित स्थिति से दूर रहना प्रसंद था। अंतर्मुखी होने के कारण सहज मित्रता नहीं होती थी। चर्चा का स्तर था उनके विचारों से सहमत हो ऐसे व्यक्तियों से ही अपने निश्चित विषयों पर चर्चा करना पसंद था। उन्होंने मुझे जिन्दगी के सभी आयामों में सफलता किस तरह प्राप्त करना सिखा दिया है। जीवन शाश्वत है।

● **आपका संगीत और संगीत घराने का अनुभव और जोशी जी की विरासत को आगे ले जाने जाने का आपने क्या सोचा है? उनकी स्मृति और सिद्धांतों को लेकर कुछ कहना चाहेंगी ?**

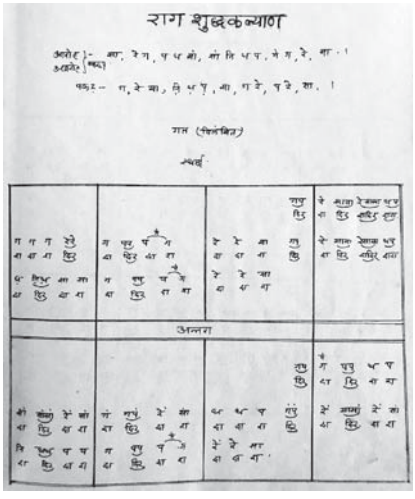

डॉ. जोशी की संगीत डायरी के रियाज पृष्ठ

– मेरा संगीत मेरे साथ है बाल्यकाल से ही मैंने संगीत सीखा है मेरी माँ श्रीमती वसुंधरा पेण्डसे (गणित शिक्षिका) एवं पिता स्व. धनंजय पेण्डसे दोनों के अथक परिश्रम का परिणाम है कि संगीत शिक्षा प्रदान कर संगीत परिवार में मुझे सौंपना उनकी जिम्मेदारी थी वो उन्होंने पूर्ण की। विवाहोपरांत भी मेरी संगीत सेवा जारी रखी।

मेरा परिवार बड़ा था तब भोपाल में राजधानी होने के कारण हमारे यहां शासकीय कार्य से आने वो हमारे परिचित मेहमान घर में आते थे जिनसे हमारे पारिवारिक एवं सांगीतिक रिश्ते थे। मेहमानों का मेरे घर ठहरना हमारी आदत बन चुका था। मध्यप्रदेश, छत्तसीगढ़ एक ही था। संगीत शिक्षा देना मुझे पसंद है बच्चों को हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत सैद्धांतिक एवं प्रायोगिक तैयारी करवाना मेरा उद्देश्य है।

डॉ. अरविंद जी का संगीत एवं उनके घराने का संगीत हमारा पुत्र श्री अनिरूद्ध जोशी संभालेगा। अनिरूद्ध की जिम्मेदारी है इस धरोहर को वह चरम सीमा तक पहुंचायेगा ऐसा मेरा विश्वास है। डॉ. अरविंद जी की स्मृति एवं सिद्धांतों को लेकर मैं सतर्क हूँ जिसमें मेरा जोशी परिवार उनके द्वारा अपेक्षित व्यवहार का पालन करेगा। ऐसा मैं विश्वास देती हूँ। ■

संस्मरण आलेख

मेरे पिता : मेरे गुरु!

(स्व. पं. विष्णु कृष्ण जोशी को एक विनम्र श्रद्धांजलि)

डॉ. अरविंद जोशी

मेरे पूज्य पिताजी को इस संसार से विदा हुए 18 वर्षों से भी ज्यादा समय हो चुका है। उनके साथ बिताए अमूल्य क्षणों को मैं कभी भी विस्मृत नहीं कर पाऊंगा। आज मैं जिस मुकाम पर पहुंचा हूं उन्हीं की प्रेरणा और आशीर्वाद का फल है। अपने जीवन में मुझे किस राह पर आगे बढ़ना है, यह निर्णय उन्होंने मुझ पर छोड़ दिया था। संगीत से अत्यधिक लगाव होने के कारण मैंने संगीत के क्षेत्र में ही आगे बढ़ने का निर्णय लिया था। उनका मत था कि व्यक्ति का रूझान या रूचि जिस भी क्षेत्र में हो उसे उसी क्षेत्र में ही मेहनत – परिश्रम कर आगे बढ़ना चाहिए। आज यदि वे जीवित होते तो अपने परिवार की प्रगति और सुख-सम्पन्नता देख अत्यंत आनंदित होते। आज उनकी तीसरी पीढ़ी के रूप में चि. अनिरूद्ध परंपरा को आगे बढ़ाते हुए संगीत के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति कर रहे हैं।

पू. पिताजी ने आजन्म संगीत की बड़ी सेवा की है। छत्तीसगढ़ अंचल में संगीत की सुबद्ध वैज्ञानिक शिक्षा का श्री गणेश पू. पिताजी के भागीरथ प्रयासों से हुआ। सुयोग्य शिष्यों जिनमें कलाकार, शिक्षक व रसज्ञ श्रोताओं के निर्माण का महत्वपूर्ण कार्य उन्होंने किया। आज कला के क्षेत्र में इस अंचल का जो स्थान और ख्याति है उसका प्रमुखतया श्रेय उन्हें ही जाता है। प्रदेश की जनता उनके प्रति अनन्य स्नेह और श्रद्धा रखती थी। उनकी विशाल एवं समृद्ध शिष्य परंपरा थी, जो आज भी उनके बताए हुए मार्ग पर अग्रसर है। शिष्यों की श्रद्धा तो उनके सास्वर-व्यक्तित्व के कारण स्वाभाविक ही थी।

वे सच्चे अर्थों में नाद पुत्र थे। स्मृति-पटल पर उनके द्वारा गायी गई कई अविस्मरणीय महफिलों का स्मरण उनकी यादों को ताजा कर देती है। चौथी सफेद में मिले तानपुरे, वातावरण में एक अजीब सा खिंचाव भरा सुरीला पन घोल देता था। मीठी आवाज की रेंज तो उनमें बड़ी अद्‌भुत थी। तीनों सप्तकों में खरज से लेकर अतितार (षड्‌ज) सप्तकों में सहज विचरण साथ ही पिन-पाईंट सुरीला पन उनके गायन में था। राग की अवतारणा वे ऐसी करते थे मानो राग स्वयं प्रत्यक्ष आकर खड़ा हो ऐसी प्रस्तुति मैंने विरले ही संगीतकारों में देखी है। उनका गायन सुनने के बाद जो तृप्ति, शांति, ईश्वरीय तथा आध्यात्मिक आनंद की जो अनुभूति होती थी उसे शब्दों में व्यक्त कर पाना कठिन है।

पू. पिताजी का जीवन अत्यंत संघर्षमय रहा है। संगीत की सेवा के लिये उन्होंने अपना संपूर्ण जीवन लगा दिया। जीवन में कई ऐसे क्षण भी आये जहां पर अच्छे-अच्छे व्यक्ति भी टूटकर बिखर जाते हैं परंतु उनमें गजब की इच्छा शक्ति थी, जो बिना विचलित हुए कठिन समय में चट्‌टान की तरह खड़े होकर मुसीबतों का सामना करते थे और सफल होते थे। वे एक सच्चे कर्मयोगी थे। अपने शिष्यों और साथियों को ऐसे कठिन परिस्थिति और समय का सामना

कैसे दृढ़ता से करना चाहिए, समझाते थे। वे विराट व्यक्तित्व के धनी थे। संगीत साधना का तेज उनमें विद्यमान था जो उनसे मिलने वाले हर व्यक्ति को प्रभावित करता था। सर्वत्र उनका आदर और सम्मान था। सभी उनसे जुड़े लोगों में वे 'बड़े मास्साब' के नाम से विख्यात थे।

पू. पिताजी संगीत की सेवा में आजीवन व्यस्त रहे। घर में मुझे सिखाने में बहुम कम समय दे पाते थे परन्तु जब भी वे मुझे सिखाते उनकी तालीम इतनी पक्की होती थी कि उनकी बताई बातें आज भी वैसी ही ताजगी भरी है। रागों की अवतारणा, बढ़त, विस्तार, स्वरों की बुनावट के तरीके, मींड, गमक, खटका, मुर्की स्वरों - श्रुतियों का प्रयोग, राग के मर्म स्थानों को कैसे उभारना, तानों का प्रयोग तानों की रागानुकूल रचना, बुनावट, बंदिशों की प्रस्तुति, लय-ताल में उनका बंधान कुल मिलाकर वे सभी महत्वपूर्ण बातें जो उनकी बताई हुई हैं रियाज करते समय ऐसा महसूस करता हूं, मानो वे सामने बैठकर समझा रहे हैं कि अमुक राग में ऐसी क्या बाते होती है, जो दिल को छू जाती हैं और साक्षात राग-दर्शन होते हैं। वे कहते थे कि राग-प्रस्तुति में विचारों की ऊँचाई तथा भावनात्मक गहराई होना अत्यंत आवश्यक है। राग-प्रस्तुति कैसी होनी चाहिए इसका सतत चिंतन-मनन होना आवश्यक है।

सन् 1936 में पू. पिताजी ने श्रीराम संगीत महाविद्यालय तथा महाकौशल संगीत समिति की स्थापना की। संगीत शिक्षा के साथ ही वे बच्चों में व्यावहारिक एवं नैतिक शिक्षा के प्रति भी गंभीर रहे। इसी कारण उन्होंने स्व. श्री रामचंद्र केशव पेंडसे जी के सहयोग से संस्कार भारती उच्चतर माध्यमिक विद्यालय की स्थापना की थी। तीनों संस्थाएं छत्तीसगढ़ प्रदेश की एक प्रतिष्ठित और ख्याति प्राप्त संस्थाएं हैं। पू. पिताजी को जिन-जिन लोगों ने आजन्म साथ दिया उनमें स्व. पूज्यश्री ध्रुवनारायण जी अग्रवाल व स्व. श्री रामानंद कन्नौजे भू.पू. प्राचार्य उ.मा. विद्यालय, रायपुर के नाम उल्लेखनीय है। पिता के इस पुण्य कार्य में उनकी जीवन संगिनी (मेरी माताजी) श्रीमती विजया जोशी का योगदान भी अत्यंत महत्वपूर्ण है जो अंत समय तक हर परिस्थिति में उनके साथ खड़ी रही।

पू. पिता के सुयोग्य शिष्यों की एक वृहद श्रृंखला है। उनके प्रमुख शिष्यों जिनमें कलाकार और शिक्षक तैयार हुए जिन्होंने देश विदेश में यश अर्जित किया है वे उल्लेखनीय है - स्व. डॉ. अरूण कुमार सेन, स्व. डॉ. श्रीमती अनिता सेन, स्व. श्रीमती हेमलता जनास्वामी, श्री मनोहर केलकर, स्व. पं. दिगम्बर केलकर, श्रीमती सुलेखा पेडंसे, पं. गुणवंत व्यास (चक्रधर सम्मान प्राप्त)श्री बसंत शेवलीकर, श्री सुधाकर शेवलीकर, श्रीमती वत्सला पालकर, श्रीमती ऊषा चांदोरकर, श्रीमती शैलजा पिपलापुरे, श्रीमती वसुंधरा कान्हें, श्री कीर्तिकुमार व्यास, डॉ. अरविन्द जोशी, श्री मदन मोहन अग्रवाल, डॉ. जगमोहन अग्रवाल, श्रीमती अर्चना जोशी, डॉ. बीजूरानी चौधरी, श्री विनोद शेष, श्री रमेश पालकर, डॉ. विजय जोशी, डॉ. चंद्रमोहन वर्मा आदि।

पू. गुरुवर्य - पिताश्री एक उत्कृष्ट कलाकार, गुरु और कर्मयोगी थे। जिन्होंने अपने जीवन का मिशन विपरीत परिस्थितियों से जूझते हुए सफलता के मुकाम पर पहुंचाया उनके साथ सुख स्मृतियों में कितनी ही बातें है जो विचार पटल पर आती हैं। ऐसी महान हस्ती का अभ्युदय बार-बार हो और बार-बार समय के सांस्कृतिक उत्थान का नया पाथेय नया दृष्टिकोण मिलता रहे, स्व. पू. गुरुवर्य-पिताश्री को शत-शत प्रमाण एवं विनम्र श्रद्धांजलि।

शासकीय सेवा में कैसे आया ?

स्व. पू. पिताजी की इच्छा थी कि मैं उन्हीं के महाविद्यालय में रह कर कार्य करूँ। बात सन् 1974 की है उस समय तक मैं अपना अध्ययन एम.कॉम और एम.ए. (म्यूजिक) पूर्ण का चुका था। पी.एस.सी. में व्याख्याता संगीत के पद हेतु विज्ञापन निकला था। मेरे जीजाजी स्व. डॉ. बसंत कृष्ण कान्हे शासकीय संस्कृत महाविद्यालय में प्राध्यापक थे उन्होंने ही मुझे आवेदन करने हेतु प्रेरित किया और फार्म भी मंगवा दिया तथा उसे पूर्ण भरकर भिजवाने का कार्य भी उन्हीं के मार्गदर्शन में पूर्ण हुआ। आज मैं इस पद पर हूँ यह उन्हीं का प्रयास और आशीर्वाद है। आवेदन करने के पूर्व मैंने उन्हें पिताजी की इच्छा के बारे में बताया था उस समय उन्होंने कहा था अच्छा मौका है आवेदन तो करना ही चाहिये जाना न जाना चयन होने पर सोचना होगा। यह पी.एस.सी. में आवेदन वाली बात मैंने डर के मारे पिताजी को नहीं बताई थी। चुपचाप आवेदन कर दिया था। पिताजी का आभा मंडल इतना तेज था कि अपनी बात कहने की हिम्मत नहीं जुटा पाता था।

फार्म भरकर 2-3 वर्ष हो गये लेकिन साक्षात्कार आदि का कुछ पता नहीं था। मैं पूर्ण रूप से पिताजी के महाविद्यालय में कार्य करने का मन बना चुका था परंतु सबसे जुनियर होने और सर्विस में जूनियर रहने की पीड़ा सतत मन में कचौट रही थी तभी 1977 में इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़ में व्याख्याता सितार के पद हेतु विज्ञापन निकला था। इस बार मैंने हिम्मत कर पू. पिताजी को अपनी इच्छा और अपने मन की सारी बातों की खुलकर चर्चा की तो उन्होंने कहा था बेटा मैं तुम्हारी प्रगति में बाधक नहीं बनूंगा। मैं चाहता हूं कि तुम खूब उन्नति करो। मैंने उत्साहित होकर आवेदन किया। पूरे देश में साक्षात्कार हेतु 40 अभ्यार्थी बुलाए गये थे। इस कठिन परीक्षा में मैं सफल हुआ और इस प्रकार मैं विश्वविद्यालयीन तथा उसके 2 वर्ष बाद शासकीय सेवा के लिए चयनित हुआ।

■

आलेख

स्मृति शेष

अभिव्यक्ति के आयाम और रवीन्द्रनाथ ठाकुर

प्रो. गुणवन्त माधवलाल व्यास

आधुनिक युग में भारतीय सृजनात्मक मनीषा की कीर्तिपताका राष्ट्र में ही नहीं, अपितु संपूर्ण विश्व में जिन महापुरूषों ने फहरायी है, उनमें गुरूदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर शीर्ष पंक्ति में स्थापित किये जाते हैं। बहु-आयामी व्यक्तित्व एवं प्रतिभा से सम्पन्न रवीन्द्रनाथजी ने अभिव्यक्ति की जिस भी विधा को स्पर्श किया, उसे एक विलक्षण युगान्तरकारी दिशा और नव्य ऊर्जा प्रदान की। साहित्य, संगीत, नाट्य, चित्रकला इत्यादि में अपने महत्वपूर्ण तथा कालजयी अवदान के लिए तो वे अविस्मरणीय हैं ही; साथ ही सामाजिक राष्ट्रीय, राजनैतिक, धार्मिक दार्शनिक, शैक्षिक इत्यादि क्षेत्रों में भी उनकी सूक्ष्म संवेदनशीलता से प्रसूत उनके चिन्तन और उनके प्रयासों का भी महत्व कम नहीं है। समस्त विश्व में लोकप्रिय और सम्मानित होने के कारण वे 'विश्व कवि' कहलाये, और लोक-सामान्य ने उनके प्रेरक और अनुकरणीय व्यक्तित्व को 'गुरुदेव' की उपाधि देकर प्रतिष्ठित किया!

1913 में साहित्य के नोबल पुरस्कार से सम्मानित ठाकुर रवीन्द्रनाथ मूलत: कवि थे। अपने आप में एक मोहल्ले जैसे विस्तृत ठाकुर परिवार में नौकरों के भरोसे, जिसे उन्होंने 'भृत्य-राजक-तन्त्र' कहा है, घुट-घुट कर पलते शिशु रवीन्द्र ने, बेतरतीब ढंग से फैले ठाकुर भवन की रहस्यमयता, तथा अपने कमरे की खिड़की से दिखते मनोहारी प्राकृतिक दृश्यों में मूर्तिमन्त सौन्दर्य दोनों को गहराई से अनुभव किया था। रहस्य और सौन्दर्य के प्रति उनका यह रूझान उनके साहित्यिक सृजन का मूलाधार बना। विश्व-प्रकृति के विभिन्न रूपों की अगाध तथा गहन रहस्यमयता के प्रति तीव्र आकर्षण के साथ ही यथार्थ जीवन के कठोर संघर्ष, वैषम्य, अशान्ति, निराशा और भ्रमणा को भी रवीन्द्र के कवि ने तीव्रता से अनुभव किया है। 'कोवि-काहिनी', जो उनकी किशोरावस्था की रचना है, में प्रकृति के सुन्दर, शान्त और मनमोहक रूप के साथ ही उसके भीषण और दारूण निर्मम रूप को उन्होंने वर्णित किया है। वे यह भी विश्वास करते हैं कि प्रकृति का भयावह रूप नव-विकास और नव-सृजन की प्रक्रिया का ही अंग है :

'शौर्वोव्यापी निशीथेर ओन्धोकार गोर्भे
एँखनो पृथिवी जेन होते छे शिजितो।

(कोवि काहिनी)

रहस्य, सौन्दर्य और प्रेम का कवि, अपने साहित्यिक विकास में न केवल कविता, अपितु खण्ड-काव्य, गीति-नाट्य, नाटक, गल्प, कहानी, उपन्यास, हास्य-व्यंग्य, पत्रकारिता, समालोचना, दार्शनिक चिन्तन इत्यादि विधाओं में भी उत्तरोत्तर परिपक्वता, सिद्धहस्तता और सफलता के साथ अपना योगदान देता गया। बारह वर्ष की अल्पायु में 'पृथ्वीराज-पराजय', और फिर 'कुमार सम्भव' और 'Macbeth' के बंगला-पद्यानुवाद से आरंभ हुई उनकी साहित्यिक यात्रा की सफल परिणति 'गीतांजलि' काव्य-संग्रह की विश्व-व्यापी मान्यता में हुई। यह बिन्दु उनकी सफलता की परिणति का है, न कि उनकी सृजनात्मक प्रतिभा के संवरण का। 'प्रोकृतिर खेद', 'हिन्दू मेलार उपहोर', 'भोग्नोतोरी', 'दूदिन', 'छोबि ओ गान', 'प्रोकृतिर प्रोतिशोध', 'कोरि ओ कोमूल', 'मानसी', 'चित्रा', 'ऊर्वशी', 'चैताली', 'गीताली', 'खेया', 'संध्या संगीत', 'परिशेष', 'पुनश्च', 'शेष सप्तक' जैसी प्रचुर मात्रा में श्रेष्ठ काव्य कृतियों से रवीन्द्रनाथ ने बंगला साहित्य को समृद्ध किया है। 'चित्रांगदा', 'चाण्डालिका', 'प्रायश्चित', 'भग्न हृदय', 'रुद्रचण्ड', 'फाल्गुनी', 'गृह-प्रवेश', 'बॉशरी', 'मालंच' इत्यादि विविध विषयों पर नाट्य और 'गीतिनाट्य' प्रस्तुत कर ठाकुर ने साहित्य को नव दिशा दी है। नाट्य तत्वों के निकष पर ही नहीं, बल्कि तकनीक की नवीनता के स्तर पर भी, ये कृतियां अपना अलग स्थान रखती है। गद्य लेखन के क्षेत्र में 'क्षुधित पाषाण', 'भिखारिणी' जैसी प्रसिद्ध कहानियाँ, 'घरे-बाहिरे', 'गोरा', 'चोखेरवाली', 'करूणा', 'चतुरंग', 'योगायोग' जैसी औपन्यासिक कृतियां लिखने के साथ ही हास्य-व्यंग्य विधा में भी उन्होंने 'अकारण कष्ट', 'चर्व्य-चोष्य लेह्य पेय', 'गुलामचोर', 'चिरकुमार सभा', 'गोड़ाय गलद' (सिर मुंडाते ही ओले) - जैसी अनेक गुदगुदाने और कुरेदने वाली रचनाएं कीं। उनकी व्यंग्य विनोद प्रियता न केवल गद्य बल्कि अनेक पद्य रचनाओं, यथा 'हिन्दू मेलार उपहार', 'शोनारतरी' इत्यादि में भी, परिलक्षित होती है। बंकिमचन्द्र से वे बहुत प्रभावित थे, और उन्हें मानते भी बहुत थे, लेकिन ब्राह्म समाज जैसे सुधारवादी आन्दोलन के विरोध में बंकिम जो बातें कहते थे, उकना तीव्र खण्डन अत्यन्त साहस के साथ रवीन्द्र ने अपनी पैनी भाषा में 'शोनार तरी' में किया, जो कि उनकी कोमलकान्त, लालित्यपूर्ण, काव्य-शैली से नितान्त भिन्न लगता है। पत्रकारिता के क्षेत्र में पदार्पण उन्होंने ठाकुर-भवन से निकलने वाली पत्रिका 'भारती' के सहयोगी सम्पादक के रूप में किया, और बाद में 'आदिब्राह्म समाज' और 'बालक' इत्यादि कुछ पत्रिकाओं के वे सम्पादक भी रहे। साहित्यिक आलोचना के क्षेत्र में रवीन्द्रनाथ ने माइकल मधुसूदन दत्त जैसे महान साहित्यिक की भी अत्यन्त तथ्यनिष्ठ और तर्कमूलक आलोचना की है। दार्शनिक विषयों पर उनके लेख और भाषण अत्यन्त सारगर्भित हैं। विज्ञान के प्रति उकनी उत्कट आसक्ति सदैव रही, और विज्ञान को प्रकृति के रहस्यों के उद्घाटन का साधन मानते थे। उनके चिन्तन में वैज्ञानिकता के दर्शन हमें होते हैं, और उनकी कई रचनाओं, विशेषत: युवा-काल की रचनाओं में जीवन के प्रति उनके वैज्ञानिक दृष्टिकोण का परिचय हमें मिलता है। उनकी सामाजिक और राष्ट्रीय चेतना भी अत्यन्त तीव्र थी, जिसकी झलक 'स्वप्नमयी', 'मुक्तधारा' और 'ताशेर देश' जैसे नाटकों, अनेक कविताओं और गद्यकृतियों में मिलती है। 'जनगणमन ...' राष्ट्र-गीत का रचयिता ऐसा राष्ट्रभक्ति से परिपूर्ण हृदयवाला कवि ही हो सकता है, जिसने जलियावाला बाग काण्ड के बाद अपनी 'गोरा' की उपाधि त्यागने की पहल की।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर शब्द-शिल्पांकन के साथ-साथ संगीत-सृजन में भी समानरूपेण दक्ष तथा अप्रतिम सिद्ध होते हैं। पाश्चात्य-जगत में शूबर्ट को सबसे महान Composer माना जाता है, क्योंकि उन्होंने 600 से कुछ अधिक सांगीतिक रचनाएँ बनायीं। किन्तु, रवीन्द्र ने तो 2000 से भी अधिक गीतों का संगीत शिल्प रचा है। इस दृष्टि से उन्हें विश्व के सबसे महान संगीत रचनाकार का स्थान प्राप्त होता है। केवल संख्या की दृष्टि से ही नहीं, अपितु गुणवत्ता, भावस्पर्शिता तथा वैविध्य के निकषों पर भी वे श्रेष्ठतम वाग्गेयकार सिद्ध हुए हैं। संगीत की शिक्षा उन्हें बाल्यकाल में विष्णुपुर घराना के खण्डार बानी के ध्रुवपद गायकों से प्राप्त हुई थी, तथा शास्त्रीय संगीत में वे काफी दखल रखते थे। शास्त्रीय संगीत की महत्ता और शुद्धता के प्रति उन्हें आस्था थी, किन्तु काव्य को संगीत-सज्जित करने में संगीत की शास्त्रीयता को अनिवार्य तत्व बनाने के पक्षधर वे नहीं थे। शब्दों में निहित अर्थ-भाव-रस की सूक्ष्मता को व्यक्त करना संगीत रचनाकार का अभीष्ट होना चाहिए, ऐसी उनकी धारणा थी। वे कहते थे। ''भारतीय शास्त्रीय संगीत में स्वर स्वच्छन्द पुरुष की भांति अपनी महिमा प्रकाशित करते हैं। शब्दों को साथ लेने के लिए वे प्रस्तुत नहीं! मेरे स्वर शब्दों को खोजते हैं वे आजन्म ब्रह्मचारी नहीं, बल्कि युगल मिलन के पक्षपाती है।'' उनकी सांगीतिक रचनाओं में लगभग 80 रागों का उपयोग हुआ है, जिनमें रागों के स्वरूप शुद्ध भी मिलते हैं, और मिश्र भी। गीत की स्वर-रचना में जहां जैसा उन्हें भावानुकूल लगा, वैसा स्वर-प्रयोग उन्होंने किया। एक स्थान पर वे बड़े विनोदी ढंग से कहते हैं - ''जयजयवन्ती जिये या मरे, मैं पंचम क्यों न लगाऊँ?'' भाव धारा से स्वरों का सामंजस्य स्थापित करते हुए वे एक राग की स्वरावलि से अन्य रागों की स्वरावलियों को बड़े लुभावने ढंग और अत्यन्त कलात्मकता से जोड़ देते हैं। उनकी रचनाओं के ध्रुवपद धमार, खयाल, ठुमरी और टप्पा शैलियों को ग्रहण किया गया है, तथा शब्दावलियों के अनुकूल ही गायन शैली प्रतीत होती है। इसका अर्थ यह है कि रवीन्द्र संगीत में शास्त्रीय गीत शैलियों का प्रयोग जहां-जहां हुआ है, वहां वह पद की प्रकृति और भाव-प्रवाह के समुचित निर्वाह के लिए ही हुआ है। कविवर रवीन्द्र ने बंगाल की माटी की भींगी सौंधी सुरभि वाले पारम्परिक लोक-संगीत को भी आत्मसात कर तदनुकूल गीत-संगीत-सृष्टि की है। इसके अतिरिक्त, पाश्चात्य संगीत के कतिपय सौंदर्यपूर्ण तत्वों को भी उन्होंने अपनाया, और अपनी रचनाओं में यथा स्थान प्रयुक्त किया है, जिसके कारण संगीत की भावाभिव्यंजकता में अद्‌भुत वृद्धि हुई है। भगवती काली की स्तुति ''काली काली रे बोलो आज'' पौर्वात्य और पाश्चात्य संगीतों के समन्वित प्रयोग के उदाहरणों में से एक है। ऐसे प्रयोग रवीन्द्रनाथ ने गीति नाटकों तथा नाट्य-संगीत में काफी किये हैं। इस प्रयोगधर्मी 'Composer' ने लाल अंग में भी पारम्परिक तालों के साथ ही, अपने गीतों के लय-प्रवाह और छन्द की आवश्यकता को देखते हुए नव ताल, अर्द्धझप ताल, षष्ठी ताल, नवपंचताल, एकादशी ताल जैसे तालों की रचना भी की है।

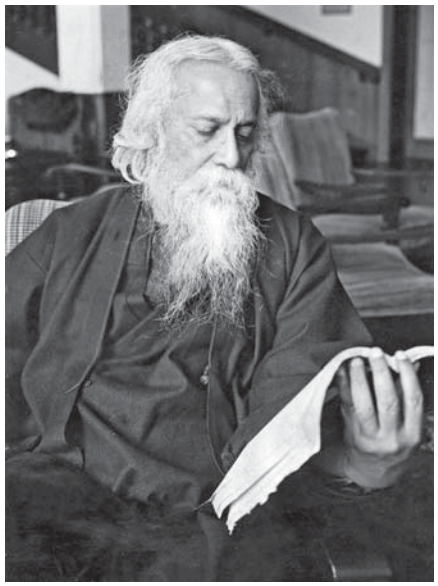

संगीत को लिपिबद्ध करने के लिए उन्होंने अपनी स्वरलिपि भी निर्मित की। रवीन्द्रनाथ द्वारा रचित गीत-संगीत बंगाल में एक विशिष्ट तथा अत्यन्त लोकप्रिय संगीत-शैली 'रवीन्द्र संगीत' बन गया है। ....रवीन्द्रनाथ का काव्य सृजन और संगीत-सृष्टि, जैसा कि गीताजंलि' संग्रह के प्रसिद्ध गीत तुमि जखन गान गाहिते बल में कवि कहते हैं, जीवन के समस्त कटु, विषम और अस्त-व्यस्त पक्षों को पिघलाकर अमृत मय गान में रूपान्तरित करने का माध्यम है -

'कठिन कटु जा आछे मोर प्राणे/गलिते चाय अमृत-मय गाने
सब साधना आराधना मम/उड़िते चाय पाखिर मतो सुखे।'

तथा वही उनके लिए प्रभु के सम्मुख पहुंचने, प्रभु चरणों को स्पर्श करने और प्रभु से आत्मीयता स्थापित करने का साधन है -

''तृप्त तुमि आभार गीत रागे/भालो लागे तोमार भालो लागे,
जानि आमि एइ गानेरइ बले/बसि गिये तोमारि सम्मुखे,
मन दिये जार नागाल नाहि पाइ/गान दिये से चरण छुंये जाई,
सुरेर घोरे आपनाके जाइ भुले बन्धु ब 'ले डाकि मोर प्रभु के ...।''

ठाकुर रवीन्द्रनाथ यद्यपि बाल्य काल से ही चित्रकला में रूचि रखते थे, तथापि चित्रकार के रूप में वे अपने जीवन के उत्तर-खण्ड में ही विशेष सक्रिए हुए। शब्द-जगत में सुदीर्घ साधना के उपरान्त उन्होंने अनुभव किया कि शब्द और ध्वनि की अभिव्यक्ति की एक सीमा होती है, तथा अवचेतन की अतल गहराई में निहित गूढ भावों की पूर्ण अभिव्यक्ति केवल शब्द-काव्यों या ध्वनि चित्रों के द्वारा नहीं हो सकती और उसके लिए रेखाओं और रंगों की सहायता लिये बिना काम नहीं चल सकता। उनके अधिकांश चित्र उनकी अगाध रहस्य भरी ऐसी अनुभूतियों को व्यक्त करते हैं, जिनके लिए शब्द खोजना या गढ़ना उन्हें संभव न लगा।

1930 में पेरिस जैसी कला पारखियों की नगरी की सुप्रसिद्ध कला दीर्घा 'गालेरी-पिगाल' में जब उनकी चित्र कृतियां प्रदर्शित हुई, तब विश्व ने जाना कि अभिव्यक्ति की इस विधा में भी वे अपने साहित्यकार और संगीतकार से कहीं उन्नीस नहीं हैं।

न केवल साहित्य और कलाओं के क्षेत्र में ही, बल्कि संस्कृति और शिक्षा के क्षेत्र में भी विश्वभारती विश्वविद्यालय, शान्ति निकेतन उनके विलक्षण रचनात्मक प्रयास का प्रांजल उदाहरण है।

अगाध प्रतिभा और अदम्य सृजनशीलता के धनी ठाकुर रवीन्द्रनाथ अपने विपुल कृतित्व से चिरस्मरणीय तथा अमर रहेंगे। ऐसे ही तो होते हैं, वे लोग, जो स्वयं को मृत्यु से बड़ा घोषित और सिद्ध कर पाते हैं, जैसा रवीन्द्र ने स्वयं अपनी मृत्युंजय कविता में कहा है :

''जतो बड़ो हओ, तुमि तो मृत्युर चेमे बड़ो नओ!
आमि मृत्यु चेये बोड़ो, एइ शेष कथा बले
जाबो आपि चले!!''

रायपुर (छत्तीसगढ़)

■

आलेख

बस्तर के आदिवासी संगीत वाद्य

डॉ. अरविंद जोशी

डॉ. अरविंद जोशी

आदिवासी संस्कृति पुरातात्विक विशेषताओं वन एवं खनिज सम्पदा इत्यादि अनेकानेक वैशिष्ट्यों से संपन्न बस्तर, छत्तीसगढ़ प्रदेश में स्थित है। यह छत्तीसगढ़ का दक्षिणवर्ती अंतिम भाग है। बस्तर एक जिला भी है तथा संभाग भी है। 21 मार्च 1981 को बस्तर जिले को संभाग की मान्यता प्रदान की गई। बस्तर 'गोंडवाना' नामक क्षेत्र के अंतर्गत माना जाता है।

'बस्तर' नाम 'बासतरी' अर्थात 'वंश' अथवा बांस के वनों की तराई अथवा बांस के झुरमुटों की छाया से पड़ा है, ऐसा कहा जाता है। एक मान्यता यह भी है कि इस क्षेत्र के आदि शासक की भक्ति से प्रसन्न होकर कुलदेवी ने उसे प्रसाद अथवा वरदान के रूप में एक वस्त्र दिया था तब से उस शासक ने अपने राज्य को देवी के वरदान मानकर 'बस्तर' कहना आरंभ किया। अन्य मतानुसार कलिंग राज के 'वत्सर' नामक भाई ने इस क्षेत्र में इन्द्रावती नदी के उत्तर में राजधानी स्थापित कर जितने भू-भाग पर अपना साम्राज्य विस्तृत किया वह 'वत्सर-जनपद' कहलाता था जो बाद में बस्तर कहलाने लगा। वत्सर ही लोक प्रयोग में बस्तर बन गया।

बस्तर संभाग 17.46° से 20.34° उत्तर अक्षशों तथा 80.15° से 82.01° पूर्वी देशांशों के बीच स्थित है। मध्यप्रदेश के दक्षिण पूर्व में स्थित इस संभाग के पूर्व की ओर उड़ीसा प्रदेश दक्षिण की ओर आंध्रप्रदेश तथा पश्चिम की ओर महाराष्ट्र प्रदेश है। इसके उत्तर में छत्तीसगढ़ प्रदेश के राजनांदगांव तथा रायपुर जिले हैं। बस्तर संभाग समुद्र सतह से 150 मी. से 1200 मी. तक भिन्न-भिन्न ऊंचाइयों वाला क्षेत्र है। भू-वैज्ञानिकों के मतानुसार बस्तर की रचना पृथ्वी की सर्वाधिक प्राचीन पुरा-कैम्ब्रियन (Pre-Cambrian) तथा कैम्ब्रियन प्रस्तरों से हुई है ये धारवाड़ आर्कियन ग्रेनाइट, नेसिस, कड़प्पा इत्यादि श्रेणियों की चट्टाने हैं। यहां की जलवायु मानसूनी है। जलवायु की स्थितियां वानस्पतिक दृष्टि से अत्यंत अनुकूल होने के कारण यहां अत्यंत सघन और अत्यंत विस्तृत वन है।

बस्तर की जनजातियां -

बस्तर की जनसंख्या का लगभग 80 प्रतिशत या उससे अधिक भाग जनजातियों का है। नृतत्वशास्त्री इन जनजातियों का प्रोटाआस्ट्रेलाइड प्रजाति से संबद्ध करते हैं। बस्तर की प्रमुख उप जातियों में मुरिया, माड़िया, भतरा, हल्वा, धुर्वा, दोरला, परजा तथा राजगौड़ है। इनमें सबसे प्रमुख मुरिया और माड़िया है। मारिया में घोटुल मारिया तथा राज मारिया प्रमुख वर्ग है। माड़िया आदिवासी के अन्तर्गत दो वर्ग अबूझाड़ के पहाड़ी माड़िया तथा दण्डामी मारिया या बाइसन हार्न मीड़िया। बस्तर की आदिवासी जनजातियों में नाचना-गाना जीवन का प्रमुख अंग होता है। कोई भी पर्व इससे रहित नहीं होता आदिवासी जन अत्यंत धर्मभीरू तथा अंधविश्वास ग्रस्त पाये जाते हैं और उनकी आस्थाएं प्रकृति के तत्वों से जुड़ी होती हैं। इनके 'देव' प्राय: ऐसे होते हैं जिनके प्रति उनकी श्रद्धा भयजन्य होती है। बस्तर के मुरिया जनों का सबसे बड़ा देवता लिंगों है। लिंगों उनके लिये शिव के समान प्रत्येक अवसर पर पूज्य है। किसी भी धार्मिक या सामाजिक सांस्कृतिक पर्व का आरंभ लिंगों के पूजन-अर्चन से ही होता है। लिंगों को वे संगीत नृत्य और अपने अठारह बाजों के आद्य आविष्कारक भी मानते हैं।

अठरा बाजांग लिंगोन लयोर, बारा बाजांग राजाओ।
लिंगो तिन्वाल पूजा लयोर, राजा, तिन्वाल बोजाओ।।

इनकी सांस्कृतिक संस्था 'घोटुल' भी 'लिंगों' की ही देन मानी जाती है। मुरिया जन जो श्रृंगार करते हैं उसे वे लिंगों श्रृंगार कहते हैं। वाद्यों की निर्माण प्रक्रिया आरंभ करने के पूर्व वे 'लिंगों' की पूजा करते हैं। संगीत एवं नृत्य की प्रस्तुति के पूर्व लिंगों को नमन करते हैं। देवी-देवताओं की पूजा-अर्चना संगीत के साथ ही की जाती है। इसमें वे मोहरी और निसान का प्रयोग विशेष रूप से करते हैं।

आदिवासी मुख्यत: ताल-वाद्यों और कुछ एक स्वर-वाद्यों का प्रयोग अपने संगीत में करते हैं। ये वाद्य आसपास सुलभ सामग्री से बनाये जाते हैं। झाड़ से लकड़ी काटने के पहले बड़ी श्रद्धा से पेड़ की पूजा होती है। वाद्य निर्माण की प्रक्रिया भी आनुष्ठानिक होती है और वाद्य का प्रयोग भी उसी तरह श्रद्धा पूर्ण ढंग से किया जाता है। 'बाजा' उनके लिये देवता से कम नहीं होता। आदिवासी नृत्य स्फूर्ति, आवेग और वेग से परिपूर्ण होते हैं। नृत्य में श्रृंगार अनोखे ढंग का होता है। आदिवासी जीवन में क्षण-क्षण पग-पग संगीतमय होता है इसलिये संगीत को आदिवासी संस्कृति का प्राण कहा जाता है।

लिंगों के पूरे अठारह वाद्यों के नाम झोरिया जनजाति की संगीत परम्परा में मिलते हैं। ये अठारह वाद्य हैं :-

1. निसान, 2. गोगा, 3. ढोल, 4. मांदरी, 5. पर्राग, 6. तुड़बुड़ी, 7. सारंगी, 8. ढुसिर, 9. तोहेली, 10. डुमरी, 11. पिटोर्का, 12. केकरेंग, 13. कचटेहण्डोर, 14. मुयाग, 15. कटवाकिंग, 16. झांझ, 17. हकुम, 18. सुलुड़।

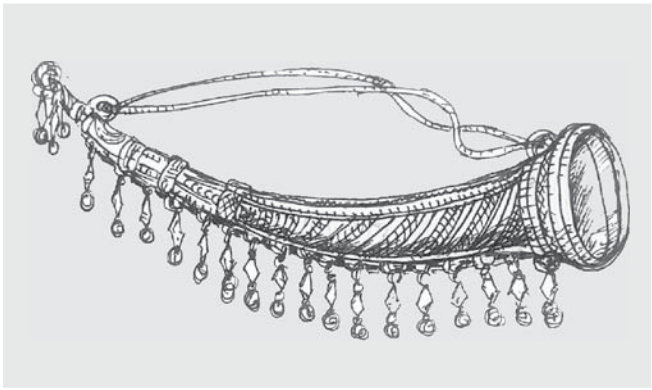

आदिवासी वाद्यों का संक्षिप्त वर्णन

आज के बस्तरीय संगीत में अधिकांश वाद्य दुर्लभ और अप्रचलित हो चुके हैं जो व्यवहार में हैं तथा संग्रहालयों में सुरक्षित और ग्रंथों में वर्णित है शारमोक्त वर्गीकरण शास्त्र भेदों के अनुसार किया गया है। संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है –

तत वाद्य

1. सरंगी या सारंगी – यह वाद्य अपने स्वरूप और बनावट की दृष्टि से अन्य वाद्यों की तुलना में काफी विकसित और कलात्मक दिखता है। अब बस्तर के आदिवासियों में क्रमश: लुप्त प्राय है। तांत के 2 या तीन तार इसमें होते हैं। तूंबा

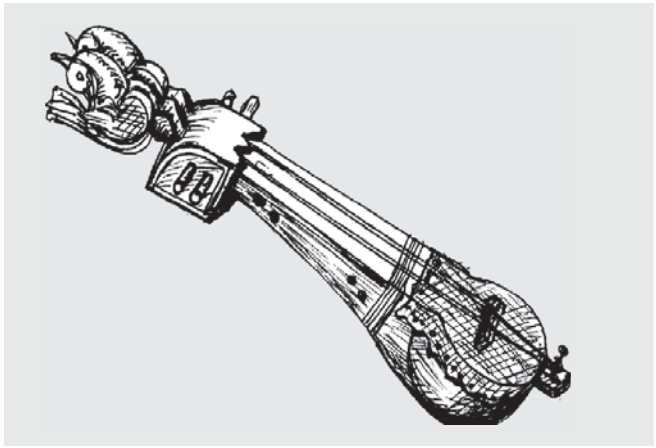

चमड़े से मढ़ा होता है। ढांचा लकड़ी का होता है। धनुषाकार गज (Bow) से बजाते हैं।

2. ढुसिर – इस वाद्य के निर्माण में बांस, नारियल के ऊपर का खोल, गोह का चमड़ा प्रयुक्त होता है। लोहे के तार धातु की पट्टी (Bridge) बांस या लकड़ी की दो खूटियां प्रयुक्त होती है। घोड़े के बाल से बने गज से (धनुषाकार) बजाया जाता है।

3. कीकिड़ – कीकिड़ के निर्माण में बांस की नली, पीपल या मेलवा पेड़ की लकड़ी, बकरे या गोह का चमड़ा, धातु की पत्ती, लकड़ी की तीन खूंटिया प्रयुक्त होती है। बांस का डांड दांतेदार बनाया जाता है। तूंबा चौकोर होता है।

4. रामबाजा – यह बाजा एकतारी जैसा होता है।

5. धनकुल – बस्तर के आदिवासी वाद्यों में यह बड़ा ही विशेष वाद्य है। जनजातियों में जगार गीत या धनकूल गाथा गायन के साथ यह वाद्य प्रयुक्त होता है। इन आदिवासीजनों ने मिट्टी की हंडी, सूपा जैसी रोजमर्रा उपयोग की अतिसाधारण चीजों को जोड़कर इस अद्‌भुत वाद्य का अविष्कार किया है। नारियल की रस्सी की डोरी की प्रत्यंचा वाला धनुष तथा बांस की बनी छीरनी काड़ी का उपयोग होता है। हंडिया को टिका कर रखने के लिये घास व रस्सी की बनी गुडरी या चोमल की जरूरत पड़ती है।

इस वाद्य को बजाने के लिये जमीन पर गुड़री रखकर हंडिया को थोड़ा सा झुका कर रखते हैं। उसके ऊपर सूपे को उल्टा करके रखते हैं। धनुष का एक सिरा सूपे पर रखकर दूसरे सिरे को बाएं पैर से ऐसी दक्षता के साथ दबाकर रखते हैं कि पहला सिरा सूपे से अलग नहीं हो पाता। दाहिने हाथ में छीरती काड़ी पकड़ते है तथा धनुष को लयाघात के साथ ठोकते हैं। इस बाजे को महिलाएं ही बजाती है।

6. बांस की तंत्री वाद्य – यह बांस की पोली नली होती है। नली की दो गठानों के बीच बांस की ऊपरी सतह या छाल को लम्बवत दो या तीन तारों के समान चीरा जाता है। तार निकल आने के बाद इसके दोनों सिरों पर गठानों के पास बांस के छोटे–छोटे दो टुकड़े

दण्ड और तार के बीच लगाया जाता है जिसमें एक टुकड़ा ब्रिज और दूसरा अटी का कार्य करता है।

इसके अतिरिक्त तंत्र वाद्यों में तोहेली, डुमिड़, किरगिच, ढुंगरू वाद्य भी मिलते हैं जो दुर्लभ है।

अवनद्ध वाद्य :–

1. निसान – मिट्‌टी के बड़े कटोरेनुमा वाद्य निसान को दुग्गल, लोहटी या दमऊ भी कहते हैं। पहले इसका ढांचा लोहे का बनाया जाता था, परन्तु जब मिट्‌टी के ढांचे वाला निसान ही प्राय: मिलता है। उसके मुख पर बैल का चमड़ा लगाया जाता है। इसको बजाने के लिये लकड़ी के दो डण्डों का उपयोग करते हैं।

2. तुड़बुड़ी – मिट्‌टी के कटोरे से बना यह वाद्य आकार में छोटा होता है। इसमें बकरे के चर्म से बनी पल्ली लगाई जाती है।

3. तुरम – आकार में तुड़बुड़ी के समान ही किन्तु थोड़ा बड़ा होता है।

4. मुण्डा बाजा – प्याले के आकार का यह वाद्य मिट्‌टी या लकड़ी का बनाया जाता है। इसके मुख पर गोचर्म या बकरे का चमड़ा लगाते हैं। दशहरा पर्व से पहले मुण्डा बाजा बजाते हैं। इसके बाद ही दशहरा पर्व प्रारंभ होता है।

5. गोगा ढोल – निसान से मिलता–जुलता यह वाद्य आकार में थोड़ा बड़ा होता है।

6. नगाड़ा – बीहड़ क्षेत्रों में आदिवासियों को खतरे से अगाह करने, धार्मिक उत्सवों की सूचना देने तथा संदेश प्रेषण के लिये इस वाद्य का उपयोग होता है। इसकी आकृति विशाल कटोरे के समान होती है। ढांचा लोहे का होता है। भैंस के चर्म की पल्ली होती है।

7. डाकी – डाकी या ढपरा का ढांचा वृत्ताकार चौड़ी रिंग के समान होता है।

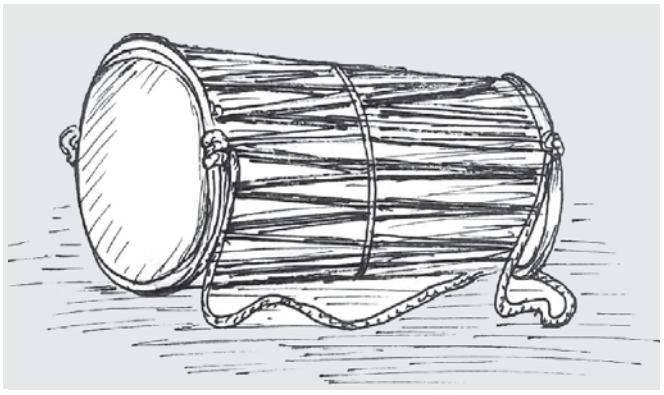

रिंग का एक भाग खुला रहता है, दूसरा भाग बकरे के चर्म से मढ़ा जाता है।

8. माटी मांदर – अपने नामारूप मिट्‌टी के ढांचे से बना हुआ वाद्य है। इसका ढांचा बीच में संकरा और मुखों की ओर क्रमश: चौड़ा होता है। मुख पर बैल का चमड़ा लगाते हैं। गढ़ बंगाल क्षेत्र में मुरियाओं का यह विशेष वाद्य है।

9. हुल्की मांदरी – डमरू के आकार वाला यह वाद्य माटी मांदर से आकार में छोटा होता है। अपनी यात्राओं के दौरान मुरिया जन इसे बजाते हुए चलते हैं।

10. खूंट मांदर या मांदरी – यह वाद्य बस्तर में सर्वत्र पाया जाता है। बीजा सिऊना की लकड़ी से वाद्य का खोल तैयार किया जाता है। उस पर बैल का चमड़ा मढ़ते है। पखावज के समान आकृति वाले इस वाद्य का आकार पखावज से काफी बड़ा होता है।

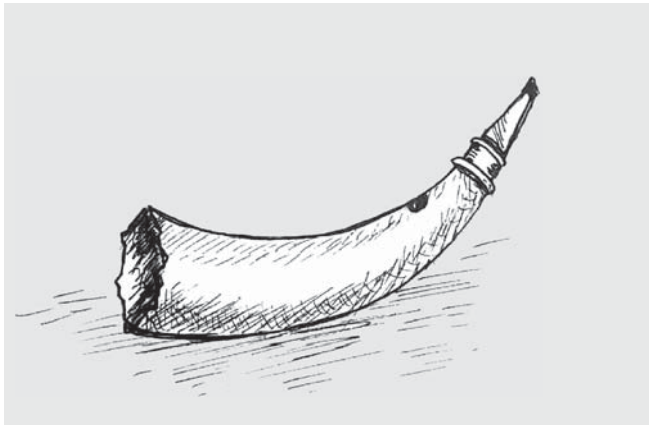

11. मांदर ढोल – विशाल आकृति वाला यह ढोल माड़िया जनों में विशेष प्रिय है। बाइसन हार्न माड़िया इसे अपने गौर-नृत्य में प्रयोग करते हैं। इनकी ध्वनि नृत्य में अद्‌भुत उत्साह का संचार करती है। यह ढोल आम, बीजा या सिऊना की लकड़ी से बनाया जाता है। बांये मुख पर बैल का चमड़ा तथा दाएं मुख पर बकरे का चमड़ा लगाया जाता है।

12. ढोल – बस्तर के बहु प्रचलित वाद्यों में से एक है। दण्डामी माड़िया इसे पेक्डोल भी कहते हैं। ढोल का खोल काफी बड़ी परिधि का होता है। दो मुखी अवनद्ध वाद्य है। इसकी पल्ली गाय के चमड़े से बनाई जाती है। लकड़ी के दण्ड से इसे बजाते है। बीजा या सिवना की लकड़ी का खोल बनाया जाता है।

इसके अलावा अवनद्ध वाद्यों में नवात बाजा, घुड़की बाजा, रायगिड़ी बाजा आदि वाद्य दुर्लभ है।

सुषिर वाद्य :-

1. सुलुड़ – बांस से निर्मित होने के कारण इसका नाम सुलुड़ या बांसुरी है। लिंगो देवता के 18 प्रमुख वाद्यों में इसका स्थान है। किसी भी गीत नृत्य के साथ बांसुरी या सुलुड का वादन होता है।

2. मोहरी – शहनाई के आकार वाला यह वाद्य सारे बस्तर में मंगल वाद्य के रूप में प्रचलित है। लिंगों की पूजा, विवाह व अन्य धार्मिक या मांगलिक अवसरों पर यह वाद्य बजाया जाता है। बांस की नली में एक सिरा, पीतल की घण्टीनुमा आकार का होता है।

3. सींगी बाजा – भैंस के सींग से बना यह सुषिर वाद्य है।

4. तोड़ी – तोड़ी बाजा पीतल, तांबे या कांसे की बनी हुई एक सिरे पर पतली और दूसरे सिरे की ओर क्रमश: चौड़ी पोंगली से बनता है। इस बाजे को घसिया लोग बनाते है। इस बाजे के नीचे के मांग में घुंघरू लगे रहते हैं। इसके अलावा शंख या जीका भी प्रचार में है।

धन वाद्य :

1. कचटेहण्डोर – लोहे का बना यह वाद्य मोरचंग के समान होता है।

2. बांस का टेहण्डोर – यह बांस का बना होता है। मोरचंग जैसे ही इसे बजाते हैं।

3. दास काड़ी – लकड़ी के दो ठोस टुकड़ों को लेकर बनाया जाता है। दोनों टुकड़ों को आपस में टकराकर बजाते है।

4. कोटोड़का – लकड़ी के सूपे के आकार का यह वाद्य है। प्राय: सेमूर या सिऊना की लकड़ी से यह वाद्य बनाया जाता है। इसे दो दण्डों के आघात से बनाते हैं।

5. मुयांग तथा इरना – पीतल या अन्य धातु की घंटियां होती हैं।

6. गुजिड़ – बांस के दण्ड या लोहे की छड़ के सिरे पर एक कड़े में लगभग 10-15 मिर्ची के आकार के घुंघरू लगे होते हैं। दण्डामी गाडियां स्त्रियां और नृत्य में इसे वाद्य का प्रयोग करती है।

7. चेरहे – मुरिया आदिवासी विवाह के अवसर पर प्रस्तुत नृत्य गीत में इस वाद्य का प्रयोग करते हैं। बांस के दण्ड के ऊपरी सिरे पर लकड़ी के चपटे आकर के चार पंखे लगे होते हैं। इन पंखों का संबंध रस्सियों से बंधे हुए फराटी (बांस) से होता है। बांस के दण्ड का मध्य भाग दांतेदार बनाया जाता है। फराटी को दण्ड की दांतेदार सतह पर रगड़ने से चट-चट की ध्वनि उत्पन्न होती है।

8. झांझर या पायल – बस्तर की बंजारा जनजाति में यह प्रचलित है मुरिया में इसे कटवाकिंग कहते हैं। मुरिया नृत्य करते समय हाथों और पैरों में झांझर या पायल पहनते हैं।

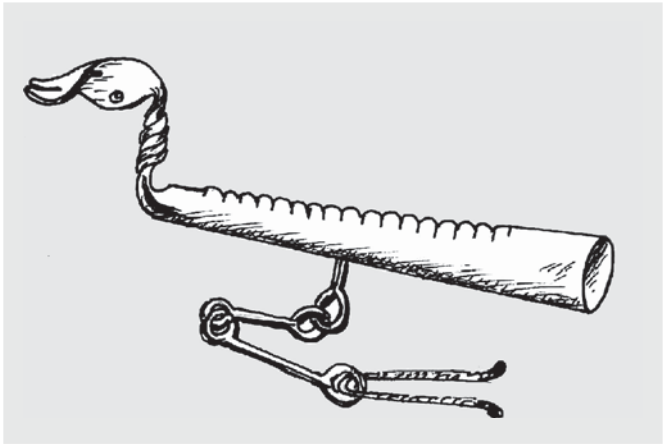

9. चिटकुल – डिश के आकार का यह वाद्य पीतल या कांसे से बनाया जाता है। वाद्य का मध्य भाग स्तनाकार होता है। मध्य भाग में रस्सी पिरोयी रहती है। इस रस्सी को अंगुली में लपेटकर इनका वादन करते हैं।

10. केकरेंग – यह लोहे की बनी एक सिरे पर चौड़ी दूसरे सिरे पर क्रमश: पतली, लम्बी, पोंगली होती है जो अंत में सर्पाकृति में बदल जाती है। पोगली की ऊपरी सतह दांतेदार होती है।

इसके अतिरिक्त सरकण्डे का धनवाद्य तथा मेंदरी बाजा अब दुर्लभ है। आधुनिक सभ्यता के प्रभाव स्वरूप आदिवासी संस्कृति की पहचान यह वाद्य अब दुर्लभ होते जा रहे हैं। चूंकि कोई भी वाद्य यदि बचा रहता है , तो उसका कारण उसका प्रयोग होना है और उसका नाद सौंदर्य। आज पाश्चात्य वाद्य यंत्रों के शोर में यह आदिवासी वाद्य दम तोड़ते हुए दिखाई देते हैं। इसके बावजूद भारतीय संस्कृति की धरोहर लोक कलाएं जीवंत है जो भारतीय संस्कृति की शाश्वत्ता का प्रमाण है। ■

साक्षात्कार आलेख

पं. अरूप लाल घोष से पं. विजय शंकर मिश्र की बातचीत

संगीत को समर्पित : सरस्वती पुत्र पं. अरूप लाल घोष

पं. विजय शंकर मिश्र

पंडित अरूप लाल घोष का नाम संगीत के क्षेत्र में किसी परिचय या विशेषण का मोहताज नहीं है। उड़ीसा के अत्यंत प्रतिष्ठित स्वतंत्रता सेनानी परिवार में जन्में अरूप लाल की अभिरुचि बचपन से ही संगीत के प्रति थी और थोड़ी बहुत नहीं थी बल्कि दीवानगी के हद तक थी। पिछले दिनों हुई एक संक्षिप्त बातचीत में उन्होने बताया कि उड़ीसा की धरती ही इतनी कला उर्वरा है कि उसमें जन्म लेने वाला व्यक्ति अगर थोड़ा भी भावुक सम्वेदनशील और कला अनुरागी हुआ तो फिर उसे कलाकार तो स्वयं जगन्नाथ स्वामी ही बना देते हैं। मेरा घर परिवार स्वतंत्रता सेनानियों का अवश्य था, लेकिन सुबह शाम भगवान की पूजा अर्चना भी होती थी और भक्ति संगीत का नियमित सुमधुर गायन भी। उसी भक्तिमय, संगीतमय वातावरण ने मेरे हृदय में सुप्त पडे कला बीज के अभिसिंचित करने का कार्य किया । मैं ने संगीत को जब निकट से देखने का प्रयास किया तो हतप्रभ और आवाक रह गया । उस समय मेरी वही दशा हो गई थी जो कुरूक्षेत्र के मैदान में अर्जुन की हो कई थी भगवान श्री कृष्ण के विराट रूप को देखकर । क्योंकि यह कला तो अनादि और अनंत है। इसका कोई ओर छोर ही नहीं है। इसलिये मैं ने कलाकार बनने का तो विचार ही त्याग दिया और तय किया कि इसे थोड़ा बहुत जानने समझने की, सीखने की कोशिश करते हैं। और आज यह स्वीकार करने में मुझे कोई भी संकोच नहीं है कि 80 वर्ष की उम्र में पहुंच कर भी, लगभग पूरी ज़िन्दगी इस काम में लगा देने के बाद भी सीख पाने का काम पूरा नहीं हो पाया है। 80 वर्षों के बाद भी ऐसा ही लगता है कि मैं ने यात्रा यहाँ से आरम्भ की थी आज भी वहीं खड़े हैं। और इसे पूरी तरह से देख भी नहीं पा रहें हैं, पूरी तरह से सीख पाना और समझ पाना तो दूर की बात है।

मेरे यह पूछने पर कि आपने संगीत की विधिवत शिक्षा किन गुरूओं से प्राप्त की ? पंडित घोष कहते हैं मैं तो एक यायावर की तरह भटकता रहा संगीत की एक अतृप्त प्यास लिये। लेकिन बात वही रही जो बुजुगों ने कही है मर्ज़ बढता गया ज्यों-ज्यों दवा की पंडित घोष एक क्षण के लिए रूकते हैं, फिर वार्ता की दिशा बदलते हुए कहते हैं कि चूंकि मैं संगीत को पूरी तरह से समझाना चाहता था इसलिए शुरुआत ध्रुवपद और धमार जैसी प्राचीन गायन शैली से की। इसकी विधिवत शिक्षा मैंने ध्रुवपद के महान आचार्यों पंडित प्रबोध दत्त और संगीत आचार्य पंडित श्याम सुंदर धीर जैसे गुरुओं से प्राप्त की। इसके बाद उत्ताद गुलाम रसूल खान से मैने ख्याल गायन शैली को सीखा तो विदुषी जद्दन बाई और पंडित लक्ष्मण महाराज से ठुमरी, दादरा और टप्पा जैसी गायन शैलियों की बारीक जानकारियां प्राप्त की। और विभिन्न तरह की इन सभी गायन शैलियों को उनकी निजि और प्रकृति गत विशेषताओं के साथ प्रस्तुत करने के लिए जिस VOICE CULTURE की जरूरत होती है उसका ज्ञान मैंने पंडित ज्ञान प्रकाश घोष जी से प्राप्त किया । मैं आकाशवाणी और दूरदर्शन से ध्रुवपद, धमार, ख्याल, ठुमरी, दादरा और टप्पा जैसी सभी गायन शैलियों की अलग-अलग प्रस्तुति करता हूं। और आकाशवाणी तथा दूरदर्शन ने मुझे इन सभी गान विधाओं मे प्रथम श्रेणी की अलग-अलग मान्यता प्रदान की है। ऐसा बहुत कम होता है। क्योंकि कोई ध्रुवपद गाता है, कोई ख्याल गाता है तो कोई ठुमरी गाता है। इनके अलावा रवींद्र संगीत की प्रस्तुति के लिए जाता हूँ वहाँ उसी सगीत की प्रस्तुति करता हूँ ऐसा नहीं करता हूं कि एक ध्रुवपद गा दिया फिर एक ठुमरी भी सुना दिया। आकाशवाणी और दूरदर्शन में भी इस बात का मैं ध्यान रखता हूँ अपने अलग - अलग शिष्यों को भी उनकी रुचि के अनुसार अलग-अलग गान शैलियों की शिक्षा देता हूँ मेरे कई शिष्य संगीत के क्षेत्र में सक्रिय हैं मेरे सुपुत्र दामोदर लाल घोष दिल्ली और हरियाणा में काफी अच्छा काम कर रहे हैं संगीत के क्षेत्र में।

पंडित अरूप लाल घोष अपनी बात का विस्तार करते हैं जैसे स्थायी से अंतरा पर जा रहे हैं जब मैं थोड़ा बहुत गाने लगा तो मन में एक प्रश्न उठा कि कंठ स्वर की बात तो ठीक है लेकिन इन रागों की, गायन शैलियों की वाद्ययों पर कैसे अवतारणा होगी ? मन में प्रश्न उठते ही मैंने कंठ के सबसे निकट के साज बांसुरी को सीखने का निश्चय किया. स्वर राग, लय ताल, आदि तो मालूम ही थे बस तकनीक की जानकारी लेनी, अत: आरम्भिक शिक्षा पंडित गौर गोस्वामी जी से प्राप्त करने के बाद बांसुरी के भगवान पंडित पन्ना लाल

घोष जी से मैंने इसका यथेष्ट मार्ग प्राप्त किया। इतना सब कुछ करने के बाद भी मन में एक प्यास थी कि लय और ताल की काम चलाने योग्य ही जानकारी है मेरे पास। इसलिये इसका भी विधिवत ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। स्पष्ट है कि इसके लिए तबला सीखना ज़रूरी था । अत: मैने नृपेंद्र नाथ चटर्जी और पंडित अनोखे लाल मिश्र के चरणों में बैठकर तबला वादन सीखा। लेकिन यहाँ पर यह बताना मैं न केवल उचित बल्कि आवश्यक समझाता हूं कि इतना सब कुछ मैंने सिर्फ इसलिये सीखा कि संगीत को अच्छी तरह से ... अधिक से अधिक रूप में समझ सकूँ। इसलिये मंचीय प्रस्तुतियों के लिए मैने सिर्फ और सिर्फ कंठ संगीत अर्थात गायन को ही चुना।

उड़ीसा के मुख्यमंत्री श्री नवीन पटनायक से उड़ीसा संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार प्राप्त करते हुए पं. अरुप लाल घोष

देश के विभिन्न प्रतिष्ठित मंचों पर अपनी प्रभावशाली प्रस्तुतियां दे चुके और उड़ीसा के सुप्रसिद्ध कला विकास केंद्र में अनेक वर्षों तक प्राचार्य पद को सुशोभित कर चुके पंडित घोष ओडिसी संगीत के विषय में पूछे गए एक प्रश्न के उत्तर में कहते हैं चूंकि इस संगीत का अपना एक शास्त्र है, यहा राग और ताल पर आधारित होता है इसलिए इसकी शास्त्रीयता में किसी को भी किसी भी प्रकार का संदेह नहीं होना चाहिए। लेकिन यहां यह बात विशेष रूप से ध्यान देने वाली है कि यह अपने देश के हिन्दुस्तानी संगीत अर्थात उत्तर भारतीय संगीत और कर्नाटकीय संगीत अर्थात दक्षिण भारतीय संगीत दोनों से ही अलग है और अपनी विशेष पहचान रखता है। इसकी अपनी कुछ निजि विशेषताएं हैं। जो इन दोनों ही प्रमुख संगीत शैलियों से भिन्न हैं। उदाहरण के लिए उत्तर भारतीय संगीत में राग को प्रस्तुत करने के लिए पद अर्थात् साहित्य का गायन किया जाता है। वहाँ साहित्य के माध्यम से राग की प्रस्तुति होती है। इसलिए उनके लिए राग अधिक महत्वपूर्ण हैं साहित्य कम। वहाँ कई बार बिना शब्दों के भी गायन होता है सिर्फ स्वरों के सहारे। लेकिन हमारा ओडिसी

संगीत भाषा प्रधान, साहित्य प्रधान और शब्द प्रधान है। इसमें साहित्य का वर्चस्व है स्वर और राग उन्हें सिर्फ सजाने के, अलंकृत करने के उपकरण मात्र अर्थात अलंकरण मात्र हैं ओडिसी संगीत में पहले सम पर जोर देने का प्रचलन नहीं था। इससे इसके लय का अपना एक अलग प्रवाह दिखता था लेकिन अब उत्तर भारतीय संगीत का अनुकरण करते हुए आज के युवा संगीतकार इसमें भी सम पर जोर देने लगे हैं इससे हिन्दुस्तानी संगीत के साथ इसकी निकटता तो जरूर बढ़ी किन्तु ओडिसी संगीत की निजि, प्रकृतिगत विशेषता भी तो बाधित हुई है न। वस्तुत: ओडिसी संगीत रागदारी संगीत नहीं है, यह राग आधारित संगीत है। यह बंगाल की पदावली कीर्तन से भी प्रेरित और प्रभावित है। इसलिये मैं ओडिसी संगीत के विकास और विस्तार का तो पक्षधर हूँ किन्तु इसकी प्रकृतिगत, नैसर्गिक स्वाभाविकता को नष्ट करने का खतरा उठाकर नहीं।

82 वर्षीय पंडित अरूप घोष इस विषम कोरोना काल में भी पूरी तरह से सक्रिय और व्यस्त हैं। इस समय भी वे विद्या दान करने में लगे हुए हैं। लेकिन कुरेदने पर दबी जुबान में अपनी पीड़ा भी व्यक्त कर देते हैं। कहते हैं कि आज सरकार किसानों, मजदूरों उद्योग कर्मियों, दुकानदारों, आदि सब के लिए चिंतित है, सबके लिए कुछ न कुछ कर भी रही है। किन्तु मध्यम श्रेणी के वे संगीतकार जो ट्यूशन और छोटे-मोटे कार्यक्रम देकर किसी तरह से अपना गुजारा करते हैं और जिनकी कोई नौकरी आदि नहीं हैं, उनकी ओर किसी का भी ध्यान नहीं गया ।

बड़ी शिक्षा संस्थानों और विश्वविद्यालय आदि में काम करने वाले और लाख दो लाख रूपये महीने का वेतन पाने वाले बड़े संगीतकार तो इस कोरोना काल का आनंद उठा रहे हैं और अपने परिवार के सदस्यों के साथ समय व्यतीत कर रहे हैं। लेकिन छोटे और मध्यम वर्ग के संगीतकार क्या करें ? कहाँ जाये ? और इसकी और किसी ने भी नहीं सोचा। अपने स्वाभिमान के कारण न तो वह हर किसी के आगे हाथ फैला पा रहा है, और न ही लूट खसोट में ही शामिल हो पा रहा है। मुझे लगता है कि इस ओर भी सरकारी और गैर सरकारी कला संस्थानों को जरूर ध्यान देना चाहिए।

देश भर के प्रमुख शिक्षा संस्थानों से शिक्षक, परीक्षक, परामर्श दाता, प्रश्न पत्र और पाठ्यक्रम निर्माता आदि के रूप में जुड़े पड़ित अरूप लाल घोष को उड़ीसा संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार सहित गौरी शंकर राय स्वर्ण पदक, सरस्वती पुत्र, मर्यादा सम्मान, उषा प्रतिभा सम्मान, कटक प्रतिभा सम्मान, स्वागति सम्मान, संगीत प्रियदर्शी, और संगीत कलानिधि जैसे कई मान सम्मान मिल चुके हैं। सम अर्थात् सोसायटी फॉर एक्शन थ्रू म्यूजिक जैसी प्रतिष्ठित संस्था के द्वारा इन्हें संगीत शिरोमणि का सम्मान भी मिल चुका है। लेकिन पंडित अरूप लाल घोष कहते हैं मेरे लिए सबसे बड़ा सम्मान है आपने श्रोताओं के दिलों में अपने लिए एक विशेष स्थान ।

705 D / 21C, Ward no.3, Mehrauli, New Delhi 110030
Phone : 9810517945
लेखक कलागुरू, समीक्षक, स्तंभकार, संगीतकार हैं।

■

आलेख

महाराष्ट्र के कीर्तन

-डॉ. अरविंद जोशी

'कीर्तन' का अर्थ है – ईश्वर की लीलाओं का गुणगान। नवध भक्ति का ही यह एक प्रकार माना जाता है। ईश्वर की मंगलमय लीलाओं का वर्णन, भगवत चरित्र का पठन, भगवान का नाम संकीर्तन करना इन्हीं सभी बातों का अंतर्भाव कीर्तन भक्ति में होता है। कलियुग में भागवत पुराण में केवल नाम संकीर्तन को ही प्राधान्य मिला है।

कलेर्दोष निधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्गः परं व्रजेत।।

अर्थात हे ! राजा कलियुग दोषों का भंडार है। परंतु इसका एक महत्वपूर्ण गुण यह है कि इस युग में केवल श्री कृष्ण की कीर्तन-भक्ति से ही मनुष्य दोष मुक्त होकर परम पद को प्राप्त करता है। यद्यपि भगवान के चरित्र कथन व गुणगान कीर्तन का मुख्य अंग है। परंतु उसका उद्देश्य इस सारे जगत को सन्मार्ग की राह दिखाना है। उसे साधने के लिये कीर्तन में भगवान की व उसके भक्तों की कथा सुनाकर भिन्न-भिन्न क्षेत्रों के उच्च आदर्श समाज के सामने प्रस्तुत करने की प्रथा कीर्तन संस्था द्वारा अंगीकार की गई है।

महाराष्ट्र में 'कीर्तन' एक सांस्कृतिक प्रकार माना जाता है। कीर्तन बहुधा मंदिरों में ही किया जाता है। कीर्तनकार को 'हरिदास' अथवा 'कथेकरी

बुवा' कहा जाता है। कीर्तनकार पैरों तक लंबा सफेद शुभ्र अंगरखा पहन कर गले में उपरणें तथा सिर पर पगड़ी या पागोटे (एक विशेष प्रकार की पगड़ी) पहनते हैं। हाथ में चिपळ्या (करताल) रखकर कीर्तन के लिये तैयार होते हैं।

कीर्तनकार को ताल व सुरों का ज्ञान अति आवश्यक होता है। कीर्तन में हार्मोनियम तथा तबला की संगत होती है। कीर्तनकार (हरिदास) के साथ में संगत हेतु एक साथीदार भी होता है। हरिदास द्वारा आरंभ किए गए पद को यह साथीदार पूरा करता है तथा बीच-बीच में यह गायन की संगत भी करता है।

कीर्तन के दो अंग होते हैं। एक पूर्वरंग व दूसरा उत्तररंग। पूर्वरंग में पारमार्थिक विषयों का निरूपण होता है तथा उत्तररंग में इसी विषय का उदाहरण स्वरूप रामायण, महाभारत या पुराणों में से कोई प्रसंग या आख्यान प्रस्तुत किया जाता है।

सर्वप्रथम कीर्तनकार कीर्तन आरंभ करने के पूर्व अपने इष्ट देव तथा गणपति का नमन कर मंगलाचरण का गायन करता है। इसके बाद एकाध ध्रुपद गाकर भजन करता है। इसके बाद संतों के अभंग गाकर इसी आधार पर भक्ति, नाम वैराग्य का जीवन में महत्व समझाता है। गीता, पंचदशी, ज्ञानेश्वरी, तुकाराम गाथा इत्यादि ग्रंथों के उदाहरण देकर वह अपनी पूर्वरंग की प्रभावी प्रस्तुत करता है। पूर्वरंग अत्यंत प्रभावी रसयुक्त करना यह एक अच्छे कीर्तनकार के लक्षण है। पूर्वरंग के बाद मूल पद गाकर वह पुनः भजन गाता है तथा आख्यान आरंभ करता है। साकी, दिंडी, कटाव व पदें रागदारी का आधार लेकर अपने आख्यानों को प्रभावी बनाता है। आख्यान की समाप्ति के बाद पुनः मूल पद पर आकर 'हेचि दान दे गा देवा' इस अभंग से अपना कीर्तन समाप्त करता है।

महाराष्ट्र में जो असंख्य देवस्थान है वहां भगवान श्रीराम, श्रीकृष्ण व अन्य अवतारों के जन्मोत्सव कीर्तन द्वारा सम्पन्न करने की प्रथा है। ऐसे प्रसंगों पर उन अवतारों की लीलाओं का जन्माख्यान किया जाता है। निरूपण यह कीर्तन का प्रमुख अंग है। परंतु केवल निरूपण होना ही पर्याप्त नहीं है। कीर्तन रसयुक्त और प्रभावी होने के लिये अनेक उपांगों की भी आवश्यकता होती है।

ताळ मृदंग हरिकीर्तन। संगीत नृत्य तानमान।
नाना कथानुसंधान। तुटोंची नेदावे।

कीर्तन में सभी रसों का परिपोष होना चाहिए। सभ्यता की मर्यादा में रहने वाला श्रृंगार भी कीर्तन में वर्ज्य नहीं है। ताल, सुरों का यदि ज्ञान न हो तो कीर्तन करने की पात्रता नहीं है। हरिदास को संस्कृत भाषा, न्याय, वेदांत, ईश-दर्शन, इतिहास, पुराण, मराठी काव्य का ज्ञान अवश्य होना चाहिए। इसके अतिरिक्त, प्रचलित सामाजिक, धार्मिक व राजकीय विषय तथा पौर्वात्य व पाश्चात्य तत्वज्ञान का भी ज्ञान होना चाहिए। कुल मिलाकर एक कीर्तनकार को 'बहुश्रुत' व व्युत्पन्न होना चाहिए। ऐसा समर्थ कहते हैं।

वक्तृत्वा चा अधिकार। अल्पास न घड़े सत्योत्तर।
वक्तापहिजे साचार। अनुभवा चा।।

हरिदास का जो वर्णन समर्थ ने किया है उसी से हरिदास की प्रतिष्ठा का अंदाज लगाया जा सकता है। भक्तिभाव, अल्पसंतोष, निःस्पृश्ता, सेवाभाव, ज्ञान, वकृत्व इत्यादि गुणों से युक्त कीर्तनकार ही समाज के उत्कर्ष के लिये उपयुक्त होता है तथा समाज में भी उसी का अत्यंत सम्मान, प्रतिष्ठा व आदर होता है। महाराष्ट्र में कीर्तन के चार प्रकार प्रचलित है। (1) नारदीय कीर्तन (2) वारकरी कीर्तन (3) रामदासी कीर्तन (4) राष्ट्रीय कीर्तन

(1) नारदीय कीर्तन – इन कीर्तन संप्रदाय में वेद, पुराण, शाहिरी काव्य पंत-तंत काव्यों का उपयोग किया जाता है। संस्कृत श्लोकों का मराठी अनुवाद भी प्रस्तुत किया जाता है। इस कीर्तन संप्रदाय में मूल अभंग का ही प्रतिपादन किया जाता है। अभंग के पदों (ओवी) का सरल अर्थ बताकर उसका विवेचन किया जाता है। सरल अर्थ बताने से सभी को अभंग का पूर्ण अर्थ समझ में आता है। रामदास के श्लोकों का भी आधार लिया जाता है। इस परंपरा में अनेक

कीर्तनकार घराने प्रसिद्ध हुए हैं। नारायण राव काणे बुवा विनायक बुवा भागवत, नानाबुवा बड़ोदेकर, निजामपुरकर बुवा, जैसे दिग्गज कीर्तनकार हुए हैं। आज भी यह परंपरा अनेक कीर्तनकार चला रहे हैं। इस परंपरा में संगीत कला का बहुत महत्व है। संगीत के माध्यम से ही यह कीर्तन श्रवणी होता है। निरूपण तत्व ज्ञान विवेचन को संगीत का आधार मिलने से नारदीय कीर्तनकार इसे रंजक बनाते हैं। श्री गोविन्द स्वामी आफळे, अब उनके सुपुत्र चारूदत आपळे विविध विषयों को लेकर इसे प्रस्तुत करते हैं।

(2) वारकरी कीर्तन – वारकरी कीर्तन, करताल, पखावज, हार्मोनियम आदि वाद्यों की संगत से गाये जाते हैं। कीर्तनकार (बुवा) अभंग गाते हैं तथा उनका साथ करने वाले ताली देकर गायन में साथ देते हैं। कुछ बोवा (कीर्तनकार) वीणा या एकतारी लेकर भी कीर्तन करते हैं। वारकरी कीर्तनकारों का बड़ा समूह होता है। ताली बजाने वाले तथा वीणा वादकों का बहुत सम्मान होता है। हरिनाम का जय जयकार भगवान विट्ठल का जय जयकार, आध्यात्मिक अभंग व गाथाओं की प्रस्तुति होती है। कीर्तन में भक्तिभाव का प्राधान्य होता है। संत ज्ञानदेव के काल से वारकरी कीर्तन प्रचार में आया। सुबोध शब्दों में गीता ज्ञानेश्वरी भागवत, तुकाराम गाथा इत्यादि का स्पष्टीकरण लोक जागरण की दृष्टि से वारकरी पंथ में किया जाता है। संत नामदेव के बाद संत एकनाथ ने वारकरी कीर्तन परंपरा को आगे बढ़ाया। पं. विष्णु बुवा जोग, पं. सोनोपंत दांडेकर आदि कीर्तनकारों ने वारकरी कीर्तन को प्रसिद्धि दिलाई। धुंडा महाराज वेलूणकर, सातारकर बुवा, सरीखे सुप्रसिद्ध कीर्तनकारों ने अपनी सुलभ और सहज शैली से, विट्ठल भक्ति नाम जय जयकार से परिपूर्ण यह परंपरा आज भी लोकप्रिय है। वारकरी संप्रदाय में वारकरी कीर्तन अमृत तुल्य भक्ति के रूप में देखा जाता है।

(3) रामदासी कीर्तन – इस संप्रदाय में नारदीय हरिकीर्तन के प्रकारों में यह एक तांत्रिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है। इसके पूर्व रंग में रामदास के अभंग का ही प्रस्तुतीकरण होता है। इसे आख्यान भी स्वामी रामदास के कार्य, भक्ति और उनके अनेक भक्तों तक ही सीमित रहते हैं। इस कीर्तन प्रस्तुति में कीर्तनकार भगवा वस्त्र, भगवा पगड़ी पहनते हैं तथा गले में उपरणें लपेटते हैं। आरंभ में राम या थी रामदास स्वामी की आरती होती है। पूर्वरंग आख्यान नारदीय पद्धति से ही होता है। इसमें छत्रपति शिवाजी संत रामदास व उनके गुरू प्रमुख हैं। शिवाजी राजे, स्वामी रामदास के शिष्य होने के कारण और उनके सहायक तत्कालीन मराठी वीर योद्धाओं के चरित्र की रोचक प्रस्तुति कीर्तनकार प्रस्तुत करता है। इसी प्रकार रामदास के उपास्य देव श्रीराम व श्री हनुमान के चरित्रों का रोचक आख्यान भी कीर्तनकार प्रस्तुत करते हैं एक विशिष्ट परंपरा का पालन होने के कारण इसमें परिवर्तन का कोई स्थान नहीं है। रामदासी कीर्तन में हिन्दू धर्म, रामभक्ति का प्रसार, समर्थ के महाराष्ट्र धर्म के प्रचार-प्रसार आज भी ये कीर्तनकार बड़े पैमाने पर करते आ रहे हैं। 'जय जय रघुवीर समर्थ' का जय जयकार आज भी महाराष्ट्र भूमि में खूब प्रचलित है और सत्त देव स्थानों में गूंजता रहता है।

(4) राष्ट्रीय कीर्तन – इस कीर्तन पद्धति को संप्रदाय न कहकर कीर्तन का एक प्रकार कहना उचित होगा। नारदीय कीर्तन के सभी नियम इसमें लागू होते हैं। इसमें फर्क इतना है कि संतों की या पौराणिक आख्यानों की जगह राष्ट्रपुरुष, राष्ट्रनेता अथवा सुप्रसिद्ध महापुरुषों के आख्यान प्रस्तुत किये जाते हैं। देश की स्वतंत्रता के लिए प्राण न्यौछावर करने वाले स्वातंत्र्य वीर रानी लक्ष्मीबाई राणी चेणम्मा सरीखे रणवीरांगानाओं की आख्यानें प्रस्तुत कर समाज में जोश एवं स्फूर्ति पैदा की जाती है। इसके साथ ही सामाजिक समस्याओं पर भी कीर्तन में प्रमुखता रहती है। इसमें अभंग की अपेक्षा पोवाडों का ज्यादा महत्व रहता है। इस शैली में दे.भ. पटवर्धन बुवा एक विद्वान राष्ट्रीय कीर्तनकार के रूप में जाने जाते हैं। कीर्तन में प्रचलित अन्य प्रकारों में नाथ पंथ, वैष्णव पंथ, गाणपत्य पंथ शाक्तपंथ, जैन पंथ, आदि अनेक पंथ है। आधुनिक काल में संत तुकड़ोजी महाराज, संत गाडगेबाबा ने धर्म, स्वच्छता, अज्ञान, एकता तथा अंध श्रद्धा विषयों पर कीर्तन कर प्रचंड जन जागृति पैदा की है।

कीर्तनकार के गुण – कीर्तनकारों के गुणावगुण कीर्तन सुनने की पात्रता का भी वर्णन साधु संतों द्वारा किया जाता है। कथा-कीर्तन करने वालों को इसे व्यवसाय के रूप में नहीं अपनाना चाहिये। अर्थात कीर्तन के माध्यम से अर्थार्जन नहीं करना चाहिए। संत तुकड़ोजी महाराज कहते हैं –

जैसे कीर्तन करावे।
तेथे अनन न सेवावे।।

काल व परिस्थिति का अचूक ज्ञान कीर्तनकार को होना आवश्यक है। उसके वकृत्व में समाज परिवर्तन की क्षमता होना आवश्यक है। कीर्तन के श्रवण से उसके मन में (श्रोता के) जीवन के प्रति उत्साह, सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा, जीवन के उच्च आदर्शों का पालन, ईश्वर के प्रति अनन्य भक्ति समाज सेवा की भावना आदि उच्च जीवन स्वस्थ विचारों के प्रति भावना जागृत होनी चाहिए। कीर्तनकार को अध्यात्म ज्ञान विज्ञान तथा अन्य सभी विषयों का सम्यक ज्ञान होना आवश्यक है। इसके लिए समय सूचकता औचित्य बुद्धि, आदि गुणों का उसमें समावेश होना आवश्यक है। उसमें सतत वाचन, मनन अवलोकन, पाठांतर हाजिर जवाबी, भाषा पर प्रभुत्व, प्रसंगावधान, विनोद बुद्धि, नम्रता, सतत सीखने की प्रवृति, संगीत का ज्ञान व गायन की उत्तम तालीम होनी चाहिए। पूर्ण पवित्रता कीर्तनकार में होनी चाहिए। कोई भी दुर्गुण क्षम्य नहीं है।

कीर्तन सुनने के भी कुछ नियम होते हैं जिनका पालन श्रोताओं को करना आवश्यक है। जब कीर्तन चल रहा हो, तो श्रोताओं को सीधे बैठकर श्रवण करना चाहिए। श्रवण करते समय कोई अंग मोड़कर न बैठे। आलस नहीं करना चाहिए जैसे जम्हाई लेना, अंगो को खुजलाना, पान तंबाखू का सेवन कर बैठना वर्जित है। यदि सात दिन या नौ दिनों का उपवास हो तो भी कीर्तन नहीं छोड़ना चाहिए।

मराठी संत पुरुषों के वचनों व शिक्षा का प्रसार कथा-कीर्तन द्वारा ही पूरे महाराष्ट्र में प्रचलित हुआ। लौकिक शिक्षा का प्रसार न होने के कारण पूर्व समय में पुस्तकों का अभाव, समाचार पत्रों का अभाव, वृत्त पत्र नहीं थे। ऐसी स्थिति में समाज को स्थिर रखकर उसे सन्मार्ग पर लाने का एकमात्र कठिन कार्य कीर्तन परंपरा द्वारा ही संभव हो सका था।

अनंतफंदी, रामजोशी, विठोबा, अण्णा दफ्तरदार, श्रीपत बोवा ब्रम्हनाळकर, सांगलीकर, नाशिककर गणेश शास्त्री मोडक, रामचंद बोवा काशीकर, राम दीक्षित, आफळे, माहुलीकर, नारायण बुवा फलटणकर, काशीनाथ बुवा मसूरकर ऐसे अनेक विद्वान कीर्तनकारों की परंपरा है जिन्होंने अपने ओजस्वी तथा प्रभावी कीर्तन से समाज को एक नई दिशा प्रदान की है। ■

शोध आलेख

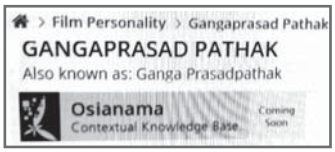

'गायनाचार्य पं. गंगाप्रसाद पाठक का सिने पक्ष'

शोधार्थी इच्छा भट्ट

पं. गंगाप्रसाद पाठक ग्वालियर घराने के मूर्धन्य गायक थे। वर्तमान संगीत जगत उनसे भलीभांति परिचित है। वानप्रस्थ जीवन के लिये उन्होंने मध्य प्रदेश की प्राचीन नगरी विदिशा को चुना, जिसे पूर्व में भेलसा कहा जाता था। शास्त्रीय-संगीत हो, चित्रपट-संगीत हो या रंगमंच यहां तक कि अभिनय में भी उनका बोलबाला था। यह कटु सत्य है कि पाठक जी शास्त्रीय संगीत के लिये समर्पित थे। इसीलिये रंगमंच एवं मुंबई की चमकदार फिल्मी दुनिया उन्हें बांध न सकी। वे उसे अंतिम नमस्कार कर विदिशा आ गये। शोधार्थी उनके सिने पक्ष को अपने शोध कार्य में उजागर रही है। मैंने विभिन्न माध्यमों एवं पुस्तकों से अध्ययन कर इसे भलीभांति उजागर किया है।

पाठक जी के गायन की लोकप्रियता सन् 1924-25 में ग्वालियर से ही आरंभ हो गई थी। सन् 1928 में लाहौर (वर्तमान पाकिस्तान) में उनके गायन ने धूम मचाई। सन् 1930 में श्री हर बल्लभ संगीत सम्मेलन जालंधर (पंजाब) में सर्वश्रेष्ठ गायक घोषित कर जयमाला पहनाई गई। उनकी ख्याति से पूरा महाराष्ट्र परिचित हो गया। उन्होंने अपना कार्यक्षेत्र मुंबई चुना एवं वहीं रहने लगे। मुंबई में उन्होंने पारसी थियेटर के नाटकों में संगीत निर्देशन एवं अभिनय किया। उस समय के प्रसिद्ध निर्माता निर्देशक राधेश्याम कथा वाचक ने अपनी पुस्तक "My theatre days" में लिखा है – It was mostly the nayaks who foined from the north india. I promoted fine actors and dingers like Nand kishor, Bhagwat kishor vyakul, Girija shanker and Ganga prasad Gawaiya. Aftor the company event to Bombay to perfom "parivartan".

सन् 1932 से 1938 तक लगभग छ: सात वर्ष वे फिल्मी दुनिया में सक्रिय रहे। इस अल्पावधि में उन्होंने फिल्मों में संगीत निर्देशन, गायन एवं अभिनय कर लोकप्रियता अर्जित की। लगभग बीस पच्चीस फिल्मों में काम किया। शोधार्थी ने उनकी फिल्मों को तीन वर्गों में विभाजित किया है।

1. पाठक जी के संगीत निर्देशन की फिल्में।
2. उनके द्वारा अभिनीत फिल्में।
3. अभिनय एवं गायन की फिल्में।

1. 'शैलबाला' – पाठक जी की यह पहली फिल्म थी जिसमें गीतों की धुन कम्पोज की और उन्हें गाया भी। यह फिल्म रणजीत मूवी टोन के बैनर तले फिल्माई गई। इसके निर्देशक चंदूलाल शाह थे। इसके अतिरिक्त उस्ताद झंडे खां द्वारा कम्पोज्ड गीतों को उस समय की मशहूर गायिका गौहर मामजी वाला ने गाये थे। यह फिल्म 1 जनवरी 1932 इम्पीरियल टॉकीज में रिलीज हुई। फिल्म की समीक्षा 'चाँद' पत्रिका में आई थी। फिल्म के पोस्टर में रणजीत मूवी टोन का मोनो एवं कलाकारों के चित्र हैं।

पं. गंगा प्रसाद पाठक
(1898-1976)

2. 'राधेश्याम' – इस फिल्म का निर्माण कमला मूवी टोन के अंतर्गत किया गया। यह पाठकजी की महत्वपूर्ण फिल्म थी। इस फिल्म में संगीत निर्देशन एवं कृष्ण की भूमिका में अभिनय किया था। उल्लेखनीय बिंदू ये हैं कि सबसे छोटी उम्र की गायिका राजकुमारी (11 वर्ष) को गाने का अवसर दिया एवं प्रोत्साहन स्वरूप एक रूपया पारिश्रमिक दिया। मेगा शो 1998 के इंटरव्यू में स्वयं कहा था। उस समय इस फिल्म की लागत एक लाख रूपये आई थी। 'चांद' पत्रिका में फिल्म की अच्छी समीक्षा आई थी।

3. 'कृष्ण सुदामा' – इस फिल्म का निर्माण 1933 में रणजीत मूवी टोन के अंतर्गत हुआ। इसके निर्देशक जयंत देसाई थे। संगीत निर्देशन गंगाप्रसाद एवं रेवाशंकर का था। पाठक जी ने कृष्ण की भूमिका में अभिनय किया था। इस फिल्म में अठारह गीत थे।

4. 'बुल-बुले पंजाब' – इस फिल्म का निर्माण दिसम्बर 1933 में श्री महालक्ष्मी सिने टोन में हुआ था। इसके निर्देशक श्री नानू भाई वकील थे। संगीत निर्देशन एस.पी. राने का था इसमें नायक का अभिनय पाठक जी ने किया था। इस फिल्म में बीस गाने थे।

5. 'मिस 1933' – रणजीत मोवी टोन में इस फिल्म का निर्माण हुआ। इसके डायरेक्टर चंदूलाल शाह थे। संगीत निर्देशन गंगा प्रसाद पाठक का था। इसमें सोलह गीत थे जिनमें 'मधुकर श्याम हमारे चोर' यह गीत बहुत लोकप्रिय हुआ यह सामाजिक फिल्म थी।

6. 'भूल भुलैया' – सन् 1933 में रणजीत मूवी टोन के अंतर्गत इस फिल्म का निर्माण हुआ। यह कॉमेडी फिल्म थी जिसे कॉमेडी

ऑफ इररस (Comedy of erross) भी कहा जाता था। संगीत निर्देशन झंडेखां एवं गंगाप्रसाद पाठक का था। इसमें बारह गीत थे। यह फिल्म बहुत लोकप्रिय हुई।

7. 'तारा सुंदरी' – सन् 1934 में रणजीत मूवी टोन के अंतर्गत इसका निर्माण हुआ। इसके निर्देशक चंदूलाल शाह थे। संगीत निर्देशक गंगाप्रसाद पाठक थे। आरंभ में यह मूक भी बनाई गई थी।

8. 'वीर बब्रूवाहन' – सन् 1934 में इस फिल्म का निर्माण रणजीत मूवी टोन के अंतर्गत हुआ। इसके निर्देशक जयंत देसाई थे। इस फिल्म में तीन संगीत निर्देशक थे। झंडेखां, रेवाशंकर एवं गंगाप्रसाद। कुल सोलह गीत इस फिल्म में गाये गये।

9. 'गुण सुंदरी' – रणजीत मूवी टोन के अंतर्गत सन् 1934 में इसका निर्माण हुआ। इसके निर्देशक चंदूलाल शाह थे। संगीत निर्देशन गंगा प्रसाद का था। इस फिल्म में पाठक जी ने विलेन (खलनायक) का अभिनय भी किया था। अभिनय इतना सशक्त था कि दर्शक अति उत्तेजित हो गये थे। 'गगरी छलक न जाय' यह गीत बहुत लोकप्रिय हुआ। एन सायको पीडिया ऑफ इंडियन सिनेमा में इसका भरपूर उल्लेख है।

10. 'नादिरा' – सन् 1934 में रणजीत मूवी टोन के अंतर्गत इस फिल्म का निर्माण हुआ। इसके निर्देशक जयंत देसाई थे। इस फिल्म में दो संगीतकार थे। गंगाप्रसाद एवं बन्ने खां। इस फिल्म में सात गीत थे।

11. 'नागन' – इस फिल्म का निर्माण सन् 1934 में रणजीत मूवी टोन के अंतर्गत हुआ। इसके डायरेक्टर जयंत देसाई थे। इस फिल्म में बारह गीत थे। इसके संगीत निर्देशक गंगाप्रसाद थे। इसमें ईश्वरलाल, माधुरी, गौरी, भूपतराय आदि अभिनेता थे।

12. 'तूफानी तरूणी' – रणजीत मूवी टोन के अंतर्गत इस फिल्म का निर्माण सन् 1934 में हुआ था। यह फिल्म श्वेत-श्याम थी। इसके निर्देशक चंदूलाल शाह थे। इस फिल्म में सात गीत थे, संगीत निर्देशक गंगाप्रसाद पाठक थे। इस फिल्म के अभिनेता गंगाप्रसाद, ईश्वरलाल, शांता आपटे, इंदिरा, चार्ली आदि थे। इस फिल्म में संगीत निर्देशन एवं अभिनय दोनों में गंगाप्रसाद थे।

13. 'अपराधी' – सन् 1935 में यह फिल्म अंबिका मूवी टोन के अंतर्गत निर्मित हुई। इसके निर्देशक गुंजाल थे। इस फिल्म में उस समय के प्रसिद्ध साहित्यकार अमृतलाल नागर ने अभिनय किया था। इस फिल्म में ग्यारह गीत थे जिनका संगीत निर्देशन गंगाप्रसाद पाठक ने किया था। 'जगत में प्रेम की शक्ति अपार' यह बहुत लोकप्रिय हुआ था।

14. 'रात की रानी' – यह फिल्म सन् 1935 में रणजीत मूवी टोन के अंतर्गत निर्मित हुई। इसके निर्देशक राजा सेडो पी.के. थे। यह श्वेत-श्याम फिल्म थी। गंगाप्रसाद एवं रेवाशंकर संगीत निर्देशक थे। इसमें छैः गीत थे। गीत नारायण बेताब ने लिखे थे। यह सामाजिक फिल्म थी।

15. 'मीठी नजर' – इस फिल्म का निर्माण अंबिका मूवी टोन के अंतर्गत 1935 में किया गया। इसके निर्देशक हर्षद मेहता एवं शंकरलाल मेहता थे। इस फिल्म के फायनेसर राजनारायण दुबे थे। संगीत निर्देशक काकू भाई याज्ञनिक थे। यह फिल्म लाहौर (वर्तमान पाकिस्तान) में रिलीज हुई थी। इसमें छैः गीत थे। इसमें गंगाप्रसाद पाठक ने अभिनय किया था। 'मुझे शक्ति दे भगवन वचन अपने निभाऊँ मैं' बहुत लोकप्रिय हुआ था।

16. 'चालाक चोर' – इस फिल्म का निर्माण रणजीत मूवी टोन के अंतर्गत हुआ। एक जनवरी 1936 में रिलीज हुई। इसके प्रोड्यूसर चंदूलाल शाह एवं डायरेक्टर राजा सेंडो थे। इस फिल्म में दस गीत थे। इस फिल्म में गंगाप्रसाद, रेवाशंकर एवं बन्ने खां ने संगीत दिया था।

17. 'दिल का डाकू' – इसका निर्माण रणजीत मूवी टोन के अंतर्गत हुआ। 13 फरवरी 1936 को रिलीज हुई। इसके डायरेक्टर

डी.एन. मधोक थे। इस फिल्म में बारह गीत थे। संगीत निर्देशन गंगाप्रसाद, रेवाशंकर एवं बन्ने खां का था।

18. 'स्नेह लग्न' – इसका निर्माण चंद्रआर्ट प्रोडक्शन में हुआ। 1 जनवरी 1938 में यह फिल्म रिलीज हुई। इसके प्रोड्यूसर डी.एन. मधोक एवं डायरेक्टर चंद्रराज कदम थे। इस फिल्म में गंगा प्रसाद पाठक का अभिनय था। इस फिल्म में दस गीत थे। जिनका संगीत निर्देशन मुल्कराज कापड़िया ने किया था।

पं. गंगाप्रसाद पाठक की ये विशेष फिल्में थी जिनमें श्वेत श्याम एवं रंगीन शामिल हैं। इसके अतिरिक्त नदी किनारे, देवी-देवयानी, चार चक्रम आदि में भी पं. गंगाप्रसाद पाठक ने संगीत दिया एवं अभिनय भी किया था। जनमानस में उनकी कृष्ण की छवि बहुत लोकप्रिय थी।

मात्र छै: सात वर्ष की अल्पावधि में बीस/पच्चीस फिल्मों में संगीत निर्देशन एवं अभिनय उनके सिने पक्ष को भलीभांति उजागर करता है।

संदर्भ सूची –

1. 1928 का निमंत्रण पत्र लाहौर
2. 'दिनमान' साप्ताहिक 1979
3. त्रिधा संगीत अकादमी, भोपाल
4. 'चांद' पत्रिका पृष्ठ 1932
5. मैगा शो 1998 (राजकुमारी का इंटरव्यू)
6. राष्ट्रीय कला साधक पत्रिका पृष्ठ 69
7. एनसायको पीडिया ऑफ इंडियन सिनेमा पृष्ठ 1934
8. फिल्म पर्सनालिटी – गंगाप्रसाद पाठक

97, आनंद भवन सर्वधर्म 'सी' सेक्टर, कोलार मार्ग, भोपाल-462042 म.प्र., मो. 8109396336

'स्पन्दन' संस्था के पुरस्कारों, सम्मानों की घोषणा

ललित कलाओं के लिए समर्पित **'स्पन्दन' संस्था, भोपाल** की ओर से हिंदी साहित्य और प्रदर्शनकारी कलाओं के क्षेत्र में योगदान करने वाले महत्वपूर्ण साहित्यकारों एवं कलाकारों के लिए अखिल भारतीय स्तर पर कई सम्मान स्थापित किये गए हैं। संस्था द्वारा साहित्य और कला की कई विधाओं के लिए स्थापित सात सम्मानों में **'स्पंदन कथा शिखर सम्मान'** के लिए इकतीस हजार रुपए, **'स्पंदन युवा पुरस्कार'** के लिए इक्यावन सौ रुपए तथा शेष सम्मानों के लिए ग्यारह हजार रुपए की राशि तथा शाल श्रीफल भी भेंट किया जाता है। इस वर्ष 2020 से **'स्पंदन विशिष्ट विधा सम्मान'** की शुरुआत भी की गयी है। संस्था की संयोजक डॉ उर्मिला शिरीष ने वर्ष 2019 एवं वर्ष 2020 के लिए संयुक्त रूप से निम्नानुसार घोषणा जारी की है-

(क) संपादन सम्मान 2019 के लिए घोषणा

1. **स्पंदन कथा शिखर सम्मान**
   (निरंतर सृजनशील वरिष्ठ साहित्यकार के लिए)
   श्री जितेंद्र भाटिया
2. **स्पंदन आलोचना सम्मान**-(आलोचना कर्म के लिए)
   कहानी के पास- श्री शशांक
3. **स्पंदन कृति सम्मान**-(कहानी संग्रह / उपन्यास के लिए)
   अलगोजे की धुन पर (कहानी संग्रह)-सुश्री दिव्या विजय
4. **स्पंदन कृति सम्मान** – (कविता संग्रह के लिए)
   न्यूनतम मैं – श्रीकांत चतुर्वेदी
5. **संपादन साहित्यिक पत्रकारिता सम्मान**
   लमही- श्री विजय राय
6. **स्पंदन ललित कला सम्मान**
   सुश्री वाजदा खान (चित्रकला)
7. **स्पंदन युवा पुरस्कार**
   श्री अविजित सोलंकी (रंगमंच)

(ख) स्पंदन सम्मान 2020 के लिए घोषणा

1. **स्पंदन कथा शिखर सम्मान**
   (निरंतर सृजनशील वरिष्ठ साहित्यकार के लिए)
   श्री महेश कटारे
2. **स्पंदन आलोचना सम्मान**
   आलोचना कर्म के लिए सन्नाटे का छंद – श्री आनंद कुमार सिंह
3. **स्पंदन कृति सम्मान**
   कहानी संग्रह / उपन्यास के लिए नींद क्यों रात भर नहीं आती (उपन्यास) –श्री सूर्यनाथ सिंह
4. **स्पंदन कृति सम्मान**
   कविता संग्रह के लिए विदा लेना बाक़ी रहे –श्री आशुतोष दुबे
5. **संपादन साहित्यिक पत्रकारिता सम्मान**
   आंचलिक अखबारों की राष्ट्रीय पत्रकारिता-श्री हरीश पाठक
6. **स्पंदन ललित कला सम्मान**
   श्री अभिजीत पोहनकर (वादन)
7. **स्पंदन विशिष्ट विधा सम्मान**
   श्री जहीर कुरैशी (हिंदी गज़ल)
8. **स्पंदन युवा पुरस्कार**
   सुनो बकुल-श्री सुशोभित (ललित निबंध)

रिपोर्ट: उर्मिला शिरीष संयोजक स्पंदन संस्था, भोपाल

आलेख

रवीन्द्रनाथ टैगोर जी की जयन्ती (7 मई) के अवसर पर

कवीन्द्र-रवींद्र और उनके विमर्श

कृष्ण कुमार यादव

भारतीय संस्कृति के श्लाका पुरुषों में रवींद्रनाथ टैगोर का नाम प्रतिष्ठापरक रूप में अंकित है। वे एक ऐसे व्यक्तित्व थे, जो जीती-जागती किंवदंती बन गए। साहित्यकार-संगीतकार-लेखक-कवि-नाटककार-संस्कृतिकर्मी एवं भारतीय उपमहाद्वीप में साहित्य के एकमात्र नोबेल पुरस्कार विजेता के अलावा उनकी छवि एक प्रयोगधर्मी और मानवतावादी की भी है। तभी तो शब्द और संगीत के इस विलक्षण साधक के लिए पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा कि- 'बड़ा आदमी वह होता है जिसके संपर्क में आने वाले का अपना देवत्व जाग उठता है। रवींद्रनाथ ऐसे महान पुरुष थे। वे उन महापुरुषों में थे जिनकी वाणी किसी विशेष देश या संप्रदाय के लिए नहीं होती, बल्कि जो समूची मनुष्यता के उत्कर्ष के लिए सबको मार्ग बताती हुई दीपक की भांति जलती रहती है।' वाकई रवींन्द्रनाथ टैगोर को शब्दों में नहीं बाँधा जा सकता। उनकी रचनाधर्मिता का क्षितिज इतना विस्तृत है कि आज भी उनकी प्रासंगिकता जस-की-तस बरकरार है। कोई भी विधा उनकी लेखनी से अछूती नहीं रही। विभिन्न विधाओं में उन्होंने 141 पुस्तकें लिखीं, जो 27 खंडों में प्रकाशित हुईं। इनके 15 काव्य-संकलन (12,000 कविताएं), 11 गीत-संग्रह (2000 गीत), 47 नाटक, 34 लेख-निबंध-आलोचना संग्रह, 13 उपन्यास, 12 कहानी-संग्रह, 6 यात्रा-वृत्तांत व 3 खण्डों में आत्मकथा शामिल है। रवीन्द्रनाथ की अधिकर काव्य-रचनाएं 'गीत वितान' व 'संचयिता' में संग्रहित है। यह एक अजीब संयोग है कि सभी विधाओं में समान अधिकार रखने वाले टैगोर को नोबेल पुरस्कार उनकी काव्य-कृति 'गीतांजलि' पर मिला और आज भी साहित्य का नोबेल पुरुस्कार पाने वाले वे भारतीय उपमहाद्वीप के इकलौते साहित्यकार हैं।

रवींद्रनाथ टैगोर का जन्म 7 मई 1861 को बंगाल के जोरासांको में हुआ। मनीषी द्वारकानाथ ठाकुर और माता शारदा देवी की 14 वीं संतान के रूप में रवींद्रनाथ का जन्म हुआ। रवींद्रनाथ ने एक ऐसे परिवार में जन्म लिया जहां परंपराएं व संस्कार थे तो आधुनिकत भी थी। भौतिकता की चकाचौंध थी तो अध्यात्म का परिवेश था, तभी तो उनकी आठवीं तक की शिक्षा घर ही हुई और आगे की शिक्षा के लिए वे इंग्लैंड भेजे गए। प्राचीन वैदिक साहित्य के साथ ही पाश्चात्य दर्शन का प्रभाव भी उनके खून में था। संगीत-कला-साहित्य की अनुगूंज वातावरण में सर्वत्र विद्यमान थी, यूं ही सात वर्ष की अल्पायु में ही उन्होंने जीवन की पहली कविता नहीं रच डाली। स्वयं रवींद्रनाथ टैगोर ने लिखा है कि - 'मेरा परिवार हिन्दू सभ्यता, मुस्लिम सभ्यता एवं ब्रिटिश सभ्यता की त्रिवेणी था।

रवींद्रनाथ टैगोर पर अपने परिवार की सामाजिक संस्कृति का बचपन से ही गहरा प्रभाव पड़ा। सांवले चेहरे के बीच उनकी आँखें मानो हर पल कुछ ढूँढना चाहती थी। कुछ आत्म, कुछ परमात्म और इससे भी परे जीवन की विसंगतियों को देखकर विचलित होने का भाव। यही कारण है कि उनका विलक्षण व्यक्तित्व एकांगी नहीं बल्कि बहुआयामी रहा। एक साथ ही उन्होंने साहित्य, संगीत, चित्रकला, नाट्य, शिक्षा सभी में महारत हासिल की। रवीन्द्र सिर्फ विधाओं के ही यायावर नहीं थे बल्कि जीवन में भी यायावर थे। उन्होंने 13 बार विश्व भ्रमण किया। 'रवींद्र संगीत' की गणना आज भी बंगाल की लोकप्रिय संगीत - शैलियों में होती है। रवींद्रनाथ के गीतों के अनुवाद जर्मनी फ्रांस, जापान, इटली आदि में किए गए हैं। इटली के कुछेक चित्रकारों ने तो उनके गीतों के आधार पर चित्र रचना तक की है। तभी तो कहते हैं कि रवींद्रनाथ जितना पढ़े गए हैं, उससे कहीं ज्यादा सुने गए हैं। आज भी टैगोर की रचनाओं के पुनर्वेषण के स्वत: स्फूर्त प्रयास निरंतर चल रहे हैं। उनकी रचनाएं कल भी मनुष्य को झकझोरती थीं आज भी झकझोर रही हैं। सत्यजीत रे जैसे दिग्गज फिल्मकार ने उनकी रचनाओं पर चारूलता, घरे बाहिरे व तीन कन्या जैसी शानदार फिल्में बनाई तो राजा, रक्तकरबी, विसर्जन, डाकघर जैसी नाट्यकृतियों का मंचन आज भी उतना ही प्रासंगिक दिखाई देता है। यहां तक कि अपने रंग-जीवन के अंतिम वर्षों में हबीब तनवीर जैसे विख्यात निर्देशक ने भी 'राजरक्त' नाम से टैगोर के नाटक 'विसर्जन' की मंच प्रस्तुत की और उसे आरंभिक प्रदर्शन के बाद मांजते रहे। वाकई पीढ़ियों के अंतराल के बाद भी रवींद्रनाथ टैगोर की कृतियों का मंचन-संचयन यही दर्शाता है कि उनकी कृतियों की नई व्याख्याओं की गुंजाइश सदैव बनी रहेगी और वे अपनी प्रासंगिकता कभी नहीं खोएंगी। ऐसे में जो लोग रवीन्द्रनाथ टैगोर की प्रासंगिकता पर प्रश्नचिन्ह लगाते है, उन्हें भी रवींद्रनाथ के पक्ष में बहने वाली बयार चकित-विस्मित करती रहती है। अगर आज भी रवींद्रनाथ के गीतों-कविताओं को गायक-गायिकाएं सजा-संवार रहे हैं, उनके नाटक नए सिरे से खेले जा रहे है, 'काबुलीवाला' और अन्य कहानियां लोगों के मर्म को छू रही है, 'गोरा' जैसे उपन्यास नए विमर्श और पाठ के लिए उकसाते हैं, उनका बाल-साहित्य बहुतों का मन मोहता है, उनकी कृतियों को लेकर डाक-टिकट जारी हो रहे हैं तो यह मानना पड़ेगा कि टैगोर आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं एवं वे हर समय हमारे सम्मुख नित नए रूपों में अवतरित होते रहते हैं। यहां टैगोर के बाल-साहित्य पर लिखे डब्ल्यू बी यीट्स के शब्द गौर करने लायक हैं- वस्तुत: जब वह बच्चों के विषय में बातें करते हैं तो निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि वह संतों के विषय में भी बात नहीं कर रहे हैं।

एक जमींदार परिवार से होते हुए भी रवींद्रनाथ उदार दृष्टि के थे। उनका कवि-मन जीवन की सहजता में विश्वास करता था। वे लोगों से घुलने-मिलने और उनकी जीवन-संस्कृति को समझने की कोशिश करते थे। फिर वह चाहे मुंडा आदिवासियों के मध्य रहकर उनकी संस्कृति को समझना हो, ग्राम हितैषी सभा के माध्यम से गाँवों में स्कूल, अस्पताल आदि की स्थापना हो, ग्राम

संसद के तहत पंचायती राज को मूर्त रूप देना हो या नोबेल पुरस्कार में प्राप्त धन को शांतिनिकेतन को दान देकर उससे भारत के प्रथत कृषि बैंक की स्थापना हो। रवीन्द्रनाथ एक भविष्यदृष्टा थे। रवींद्रनाथ ने नारी-सशक्तीकरण, नारी शिक्षा, विधवा विवाह, दहेज प्रथा, बाल-विवाह, देवदासी इत्यादि को लेकर प्रखरता से कलम चलाई। रक्तकरबी, गोरा, भयामा, चंडालिका, चोखेर-बाली, पुजारिनी, घरे बाइरे इत्यादि उनकी चर्चित रचनाओं को इसी क्रम में देखा जा सकता है। टैगकोर की संवेदनाएं सिर्फ साहित्य-कला-संगीत तक ही सीमित नहीं थी, वे उसे वास्तविकता के धरातल पर देखना चाहते थे। इसी कारण मानवीय गरिमा और और सम्मान के कवि रूप में वह सकल विश्व में विख्यात हैं। विज्ञान में विश्वास करते थे पर नैतिकता की कीमत पर नहीं।

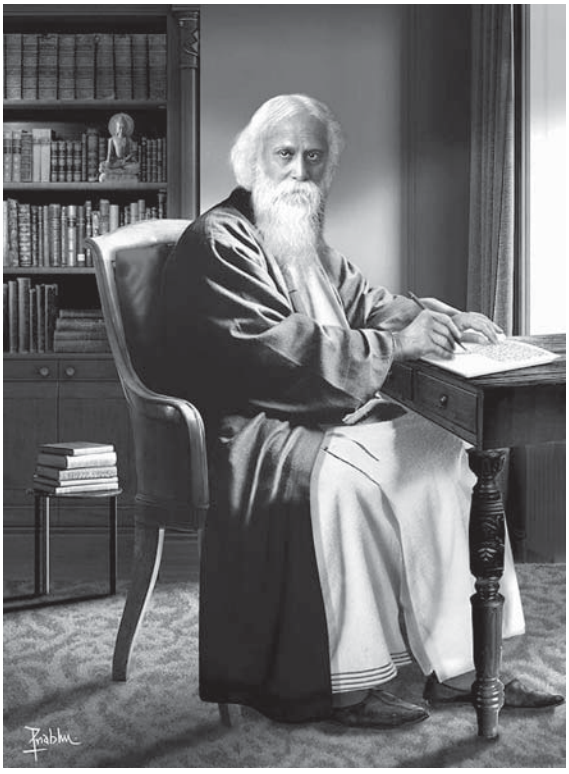

रवींद्रनाथ टैगोर का स्वतंत्रता-आंदोलन में भी अप्रतिम योगदान रहा। आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में वे प्राध्यापक रहे, अंग्रेजियत के ताने-बाने को काफी नजदीक से महसूस किया पर देश-प्रेम की उत्कट अभिलाषा उनके अंदर व्याप्त थी। जहां कांग्रेस के नेता व अन्य भाषणों द्वारा लोगों में देशभक्ति की भावना को उभार रहे थे, वहीं उनके क्रांतिधर्मी गीत लोगों की रंगों में आजादी का जोश भर देते थे। उन्होंने गीत के माध्यम से आह्वान किया था - **'जोपि तोर दक शुने केऊ ना ऐसे तबे एकला चालो रे, तबे ऐकला चला रे।'** 1905 के 'बंग-भंग' आंदोलन के दौरान हिन्दू-मुसलमानों द्वारा एक दूजे को राखी बांधकर एकता का प्रदर्शन उनकी ही सोच थी। वे एक साथ ही क्रांतिकारी थे और उदारवादी भी। जलियांवाला बाग हत्याकांड के विरोध में नाइट हुड के तौर पर दी गई 'सर' उपाधि को लौटाने में उन्होंने कोई देरी न दिखाई। सरदार भगत सिंह जैसे क्रांतिकारी भी टैगोर की रचनाओं से प्रेरणा पाते थे। भगत सिंह ने अपनी जेल डायरी में टैगोर का एक लेख पूंजीवाद और उपभोक्तावाद अपने हाथों से लिख रखा था। यही नहीं टैगोर की इस उक्ति को भी भगत सिंह ने दर्ज किया था कि 'जो न्यायाधीश अपनी तजवीज की हुई सजा के दर्द को नहीं जानता, उसे सजा देने का हक नहीं।' वह अनायास ही नहीं था कि काकोरी कांड में सजा काट रहे रामप्रसाद बिस्मिल, अशफाकउल्ला खां, रोशन लाल इत्यादि क्रांतिकारी सरफरोशी की तमन्ना के साथ-साथ रवींद्रनाथ टैगोर व काजी नजरूल इस्लाम के क्रांतिधर्मी गीतों को गाकर वातावरण में देश भक्ति का उन्माद फैलाते रहते। इतिहास गवाह है कि रवींद्रनाथ टैगोर ने बंकिमचंद चट्टोपाध्याय द्वारा रचित राष्ट्र-गीत वन्दे मातरम की धुन तैयार की और स्वयं 1896 के कांग्रेस अधिवेशन में इसे पहली बार गाया। राष्ट्रगान जन-गण-मन के रचयिता भी टैगोर ही हैं। टैगोर को यह सौभाग्य प्राप्त है कि वे भारत बांग्लादेश दो राष्ट्रों के राष्ट्रगान के रचयिता हैं।

रवींद्रनाथ टैगोर की मातृभाषा बांग्ला थी, पर हिन्दी साहित्य से भी उनका लगाव था। किशोर-वय से ही वे वाल्मीकि-कालिदास समेत भारतीय काव्यधारा की विशद परंपरा के साथ-साथ जयदेव, विद्यापति, कबीर और नानक की परंपरा से जुड़े। अपने समकालीन तमाम हिन्दी-साहित्यकारों से भी टैगोर का संपर्क बना रहा। वे खुद कहते थे कि - 'मैं हिन्दी भाषी लोगों के निकट संपर्क में आने हेतु बेहद उत्सुक हूं। यहां हम लोग संस्कृति-साहित्य प्रचार के लिए जो भी कुछ कर सकते हैं, कर रहे हैं। हमारी दिलीइच्छा है कि हिंदी भाषी लोग भी यहां आएं, हमारे अनुभव में हिस्सा बटाएं तथा अपने अनुभव से हमें भी लाभान्वित करें। आचार्य क्षितिमोहन सेन, पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी जैसे साहित्यकारों से उनका निरंतर संपर्क रहा और इनके माध्यम से उन्होंने हिन्दी साहित्य के मर्म को समझा। अज्ञेय व टैगोर की मुलाकात पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने ही कराई थी। आचार्य क्षितिमोहन सेन, पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी, अज्ञेय के साथ-साथ वे माखनलाल चतुर्वेदी व जैनेन्द्र से भी मुलाकात किए। टैगोर हिन्दी गद्य को समझने के लिए प्रेमचंद से मिलने को काफी उत्सुक थे, पर दोनों के मिलन का कोई संयोग अंत तक नहीं बन सका। इसे साहित्य की एक विडम्बना के रूप में ही माना जाएगा। उनकी दिली इच्छा थी कि साहित्य की भाषा कुछ भी हो, पर यदि वह लोगों की संवेदनाओं को झंकृत करता है तो अन्य भाषाओं में भी उनकाअनुवाद होना चाहिए, ताकि लोग उससे लाभान्वित हो सकें। रवींद्रनाथ ने स्वयं कबीर, मीरा विद्यापति का बांग्ला में अनुवाद किया। कबीर की वाणी से तो वे इतने प्रभावित हुए कि उनकी रचनाओं का 'हंड्रेड' पोएम्स ऑफ कबीर' शीर्षक से अंग्रेजी में अनुवाद भी किया।

साहित्य की विभिन्न विधाओं में हिन्दी की गौरवमयी परपंरा को टैगोर समग्र देश ही नहीं विश्व के सामने भी लाना चाहते थे। एक तरफ वे कबीर-वाणी को अंग्रेजी में अनुदित करते हैं तो दूसरी तरफ उन्हें बघेलखंड के कवि ज्ञानदास के पद भी प्रभावित करते हैं। टैगोर ने स्वयं लिखा कि - ''ज्ञानदास की रचनाएं सुनकर मुझे अनुभव हुआ कि आजकल की आधुनिक कविता का परिचय इनकी कविताओं में मिलता है और ये कविताएं सर्वदा के लिए आधुनिक ही है।'' गीत-विधा पर टैगोर की जबरदस्त पकड़ थी। वे अन्य भाषाओं में रचित गीतों की संजीदगी से प्रभावित भी होते थे। हिन्दी साहित्य में गीतों की परंपरा पर उनका कथन उद्धृत करना उचित होगा - इसमें कोई संशय नहीं है कि एक समय हिन्दी भाषा में गीत साहित्य का आविर्भाव हुआ है, उसके गले में अमरसभा का वारमल्य है। पर इसके साथ ही वे सचेत भी करते हैं कि ''आज वह अनादर के कारण बहुत कुछ ढका हुआ है। इसका उद्धार अति-आवश्यक है, जिससे भारतवर्ष के अ-हिन्दी लोग भी भारत के इस चिरंतन

साहित्य के उत्तराधिकार के गौरव के भागीदार हों।'' साहित्य की जीवंतता के लिए उसमें प्रवाह व सहजता का होना बेहद जरूरी है। यदि साहित्य में लचीलापन न हो तो उसके चटकने में देरी नहीं लगती। इसी प्रकार अलंकारों से परिपूर्ण साहित्य वर्ग-विशेष तक ही सीमित रह जाता है, जन-सरोकारों से वह कट जाता है। रवींद्रनाथ टैगोर भी साहित्य में अलंकारों की इस कृत्रिमता के पक्षधर नहीं थे। एक बार उन्होंने बिहारी की रचनाओं के बारे में कहा कि - 'कुछ भी क्यों न हो, बिहारी सतसई जैसे ग्रंथ मेरे लिए रूचिकर सिद्ध नहीं हुए, विशेषकर किसी-किसी दोहे के चार-चार, पाँच-पाँच अर्थों के विषय में वाद-विवाद मुझे कुछ जंचा नहीं।' वस्तुत: टैगोर कवित्व को साधना रूप में देखते थे। वह कहते थे कि मैं गीत गाने वाली चिड़िया जैसे हूँ मेरा गीत कहीं बाहर नहीं बल्कि पत्तों के परदे में है। जहां बैठकर चिड़िया अनायास ही गाने लगती है। वे मानवतावादी विचारधारा के प्रबल पोशक थे। हिन्दी साहित्य के छायावाद युग पर टैगोर का प्रभाव देखा जा सकता है। स्वयं महादेवी वर्मा ने अपने ग्रंथ 'पथ के साथी' में टैगोर को स्मरण करते हुए उनके प्रति अपने उद्गार व्यक्त किए हैं।

रवींन्द्रनाथ टैगोर (7 मई 1861-8 अगस्त 1941) की प्रतिभा किसी देश-काल की मोहताज नहीं थी। उन्होंने भारतीय साहित्य की समृद्ध परंपरा को इतनी ऊंचाईयों तक पहुंचाया और अंग्रेजी भारत में रहते हुए भी साहित्य का प्रतिष्ठित नोबेल पुरुस्कार प्राप्त न सिर्फ-स्वतंत्र-चेतना का उद्गार किया बल्कि पराधीन भारत के आहत स्वाभिमान को एक बार फिर गर्व से अपना सिर उठाने का अवसर दिया। यह सोचने वाली बात है कि अगर बीसवीं शताब्दी के शुरू में बांग्ला जैसी प्रांतीय भाषा में एक ऐसा विश्वस्तरीय साहित्यकार हो सकता था जिसने साहित्य का सर्वोच्च सम्मान अर्जित कर नए प्रतिमान गढ़ें हों, तो यह भारत की भाषिक बहुलता और भारतीय भाषाओं की जीवंत ऊर्जा को रेखांकित करता है। एक तरफ वे प्रकृति और उसके रहस्य का गीत गाते हैं तो वहीं उनके साहित्य में मानव जीवन की बुनियादी चिंतायें भी है। अनेक मामलों में उनकी समझ अपने युग के सभी विचारकों, आलोचकों, रचनाकारों और कला मनीषियों के विचारों की सीमाओं को भेदती हुई मनुष्यत्व के मर्म तक गयी है। धर्म, शिक्षा, राष्ट्र, अध्यात्म, मानवतावाद, सार्वभौम मनुष्य इत्यादि को लेकर उनके विचारों की आज देश-दुनिया में विशेष प्रासंगिकता है और बदलते परिप्रेक्ष्य में भी उन पर व्यापक पुनर्विचार और उसके प्रचार की आवश्यतता है। यदि टैगोर को नोबेल पुरस्कार मिलने के लगभग एक सदी के पश्चात भी भारतीय उपमहाद्वीप में किसी साहित्यकार को यह खिताब नहीं मिला तो यह स्वयं में टैगोर की प्रासंगिकता को कायम रखती है।

निदेशक डाक सेवाएं लखनऊ (मुख्यालय) परिक्षेत्र, उ.प्र. - 226001,
मो. 09413666599, ई-मेल : kkyadav.t@gmail.com'

पत्रिका ही नहीं, एक रचनात्मक अनुष्ठान

पत्रिका मुफ्त मांग कर, कृपया हमारे अनुष्ठान को आघात न पहुँचाएं

'कला समय' के सदस्य बनें- ❍ पत्रिका की वार्षिक/द्वैवार्षिक /आजीवन सदस्यता ग्रहण करें। सदस्यता शुल्क मनीआर्डर, ड्राफ्ट, ऑनलाइन अथवा व्यक्तिगत रूप से भुगतान किया जा सकता है।

'कला समय' की एजेंसी के नियम- ❍ आपके गांव, कस्बे, शहर में सांस्कृतिक पत्रिका 'कला समय' की एजेन्सी के लिए सम्पर्क करें। ❍ कम से कम दस प्रतियों से एजेन्सी शुरू की जायेगी। ❍ पत्रिका कुरियर अथवा रजिस्टर्ड बुक पोस्ट से भेजी जायेगी। डाक खर्च एजेन्सी को वहन करना होगा। ❍ कमीशन, प्रतियों की संख्या के आधार पर।

स्थायी तथा सम्पादकीय पता और दूरभाष क्रमांक के साथ सम्पर्क करें- जे-191, मंगल भवन, महावीर नगर, ई-6, अरेरा कॉलोनी, भोपाल- 462016 Email : bhanwarlalshrivas@gmail.com मो. 9425678058, 0755-2562294

लेखकों/कलाकारों से ❍ कला, संस्कृति और विचार के अछूते पहलुओं पर सृजनात्मक, शोधात्मक और सूचनात्मक आलेख, टिप्पणियां, रिपोर्ताज, साक्षात्कार, ललित निबंध, कविताएँ, छायाचित्र, रेखांकन तथा शोध आमंत्रित हैं। ❍ रचनाएँ कागज के एक ओर टाइप की हुई तथा मौलिकता का प्रमाण पत्र संलग्न हो। कृपया रचना के साथ पर्याप्त डाक टिकिट लगा लिफाफा भी संलग्न करें। रचनाएँ और चित्र ई-मेल से भी भेजे जा सकते है।

प्राथमिकता के साथ : Chanakya फोंट / वर्ड फाइल / PDF फॉर्मेट में ही भेजें।

अनुरोध : वे सदस्य जिनका वार्षिक / द्विवार्षिक सदस्यता शुल्क समाप्त हो रहा है, कृपया अपनी सदस्यता का नवीनीकरण करायें। सदस्यों को पत्रिका साधारण डाक से भेजी जाती है। नहीं मिलने की स्थिति में सदस्यता शुल्क के साथ ` 120/- का प्रतिवर्षानुसार रजिस्टर्ड डाक शुल्क अतिरिक्त भेजा जाना होगा।

-संपादक

आलेख

लोकगीतों का संगीत पक्ष

-डॉ. अरविंद जोशी

जीवन और संगीत के नैसर्गिक संबंध का जितना वास्तविक परिचय हमें लोकसंगीत द्वारा मिलता है, उतना शास्त्रीय संगीत से नहीं, वैसे तो किसी ललित कला के प्रत्येक रूप में सौंदर्य और आकर्षण रहता है, किन्तु उसके शास्त्रीय रूप का निर्माण और विकास मुख्यत: हृदय और बुद्धि के समन्वयात्मक प्रयत्नों से होता है- और इसीलिये उसका सरल व निश्छल सौंदर्य प्राय: कुछ दब जाता है, लोक संगीत और शास्त्रीय संगीत में यही प्रमुख भेद है। शास्त्रीय संगीत में बुद्धि प्रयोग के फलस्वरूप चमत्कार की प्रवृत्ति क्रमश: बढ़ती गई है। यह सभी संगीत विद्वान स्वीकार करेंगे। आज भी वे शास्त्रीय संगीतज्ञ जो चमत्कार की प्रवृत्ति को कम 'महत्व' देते हुए 'भाव' साधना में लीन होते हैं उन्हें अन्य संगीतज्ञों से अधिक स्थाई श्रद्धा व सम्मान प्राप्त होता है और विशेष रूप से वे ही श्रोताओं को मंत्र मुग्ध सा कर देते हैं। चमत्कार वादी संगीतज्ञों का प्रभाव क्षणिक अथवा अस्थायी होता है।

लोक-गीतों के भी शास्त्रीय गीतों की भांति दो अंग होते हैं कविता और धुन अथवा शब्द और स्वर, गीत की रचना तीन प्रणालियों में हो सकती है। कुछ रचयिता पहले धुन बनाकर उस पर शब्द बैठाते हैं कुछ रचयिता पहले कविता बनाते हैं और फिर उसे संगीत देते हैं। तीसरे प्रकार के रचयिता वे होते हैं जिनके हृदय से शब्द और स्वर एक साथ निकल पड़ते हैं। अर्थात जब वे किसी भाव विशेष में निमग्न होते हैं, तब अंतर्प्रेरणा से वे अपने मुख से कविता के शब्द स्वयं गाते हुए ही निकालते हैं। उनसे शब्द-रचना और स्वर-रचना एक साथ होती है। उत्तम लोकगीत अधिकतर तीसरी प्रणाली से ही रचे गये हैं। यह लोक गीतों की बड़ी विशेषता है। इसी से लोकगीतों में कविता के भाव और उसकी धुन के भाव में एक साम्य मिलता है, जिसके कारण वे गीत अधिक हृदयग्राही बन जाते हैं। लोक-गायक मुख्यत: कवि न होकर गायक होता है। वह सुख-दु:ख के समय अपने अनुभवों को गीतों के माध्यम से प्रकट कर देता है। इसके लिये वह शास्त्र का विचार नहीं करता, वह चमत्कार प्रयोग की बात भी नहीं सोचता। वह तो भावोद्रेक के समय अपनी मस्ती वह कुछ कह उठता है अथवा कुछ गा उठता है, और वही वास्तविक लोकगीत होता है। ऐसे लोकगीत की कविता और धुन दोनों में प्राण होता है, जीवन होता है। लोकगायक अपने लोकगीत में अपने व्यक्तित्व और अपने समाज के व्यक्तित्व का मानसिक चित्र खींच देता है।

लोकजीवन का सुन्दरतम प्रतिबिम्ब लोक संगीत में दिखाई पड़ता है, क्योंकि लोकगीतों के शब्दों व स्वरों के चयन में कृत्रिमता का अभाव रहता है। उसमें लोकजीवन का सीदा-सादा परिचय होता है वे व्यक्ति के बाह्य जीवन के साथ-साथ उसके मानसिक भावों के भी परिचायक होते हैं, परंतु उनमें सूक्ष्मता की अपेक्षा स्थूलता और स्पष्टता का अधिक महत्व होता है। लोकगीत संक्षिप्त, सरल, स्पष्ट, स्वाभाविक, सुन्दर, अनुभूतिमय और संगीतमय होते हैं। कदाचित ही कोई ऐसा लोकगीत हो, जो संगीत के अनुप्राणित न हो। उसका संगीत भी लोक-जीवन का उतना ही सफल परिचायक है जितनी उसकी कविता। ग्रामीण ने इन गीतों के स्वरों व शब्दों में मानों अपनी संपूर्ण सम्वेदनाओं और अनुभूतियों को निष्कपट, सरल और स्वाभाविक ढंग से रख दिया है।

लोक संगीत के गायन पक्ष को ही यहां लिया जा रहा है वादन पक्ष उसके साथ संयुक्त रहेगा, किन्तु लोक नृत्य पर इस स्थल पर विचार करना विषयान्तर में जाना होगा। यद्यपि उसका भी लोक जीवन के निर्माण व विकास में महत्वपूर्ण स्थान रहा है। सामूहिक रीति से नाच-नाच कर गाना ग्रामीणों में बहतु प्रचलित है। वादन के क्षेत्र में लय व ताल दिखलाने वाले वाद्यों का उपयोग ही ग्रामगीतों के साथ अधिक होता है। स्वतंत्र वादन का विकास लोक-संगीत में नहीं हुआ है।

लोक-संगीत में अकेले गाने से कहीं अधिक सामूहिक ढंग से गाने के महत्व का पता चलता है, और उसमें स्वर की अपेक्षा लय का भी अपेक्षाकृत अधिक प्रभाव मिलता है। उत्तर भारत में लोकसंगीत में प्रयुक्त होने वाले अवनद्ध तथा धन वाद्यों में से ढोलक, खंजडी, झांझ और करताल उल्लेखनीय है। इनमें भी ढोलक सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। ढोलक के वाद्य में कहीं-कहीं अद्‌भुत विकास मिलता है। उसके पृथक बोल होते हैं और कुछ ढोलक वादक तो ऐसे मिलते हैं। जो तबले के आवाज के सदृश्य ही ढोलक पर भी पूर्ण विस्तार और चमत्कार दिखाते हैं। किन्तु लोकगीतों में ढोलक पर केवल लय व सरल ताल दिखलाना है। पर्याप्त होता है यद्यपि यह कार्य भी अत्यंत प्रभावशाली और रोचक ढंग से सम्पादित होता है। लोकगीतों में अधिकतर कहरवा, दादरा, खेमटा और दीपचंदी (चांचर) तालों का प्रयोग मिलता है। शास्त्रीय संगीतज्ञ भी जानते हैं कि इन तालों के विभागों और ताली-खाली आदि से जो 'वजन' अथवा 'लय' की चाल निर्मित होती है वह कितनी सरल सुग्राह्य और आकर्षक होती है। मनुष्य मात्र के हृदय में जो प्रधान भाव रहते हैं उनकी अभिव्यक्ति के लिये ये ताल लगभग पर्याप्त हैं हर्ष, उल्लास, स्फूर्ति, उत्साह, वीरता आदि भावों के लिये ये ताल लगभग पर्याप्त हैं और कहरवा बहुत उपयुक्त है और दादरा भी सहायता पहुंचाता है। दादरा अथवा खेमटा का उपयोग श्रृंगार में भी होता है और दीपचंदी ताल तो श्रृंगार और करूण आदि भावों की अभिव्यक्ति में विशेष उपयोगी सिद्ध हुआ है। ये नियम अटल नहीं है, इन तालों का प्रतिकूल रसों में भी प्रयोग मिलता है। किन्तु उपर्युक्त निर्णय अधिकांश प्रयोगों के आधार पर किया गया है। अधिक विलम्बित लय का प्रयोग लोकगीतों में नहीं होता इसी से दीपचंदी ताल भी मध्य व द्रुत लय में प्रयुक्त होता है।

यद्यपि स्वरों के उतार-चढ़ाव का अधिक वैचित्र्य और तद्‌विषयक विविधता लोकगीतों में नहीं मिलती। किन्तु जो भी स्वर प्रयोग उनमें मिलते हैं वे अपनी सरलता और स्वाभाविकता के कारण हृदय को बरबस अपनी ओर खींच लेते हैं। फिल्मी गीतों में लोकगीतों के इन्हीं स्वर और लय-प्रयोगों का उपयोग करके उनकी रोचकता और लोकरंजकता बढ़ाई जाती है। शास्त्रीय संगीत का आधार राग-तत्व है और प्रत्येक राग का व्यक्तित्व होता है, किन्तु सभी शास्त्रीय संगीतज्ञ यह स्वीकार करेंगे कि प्रत्येक राग के अंतर्गत प्रयुक्त होने वाले असंख्य

स्वर-समुदायों में से कुछ गिने-चुने ऐसे समुदाय होते हैं जो बहुत ही मधुर और आकर्षक होते हैं अन्य समुदाय केवल उस राग के वातावरण का विस्तार करने व उसकी प्रतिष्ठा कराने में सहायता पहुंचाते हैं, सफल शास्त्रीय गायक वही होता है, जो राग के ऐसे प्रयोगों को चुन सके और उनका सही ढंग से ठीक स्थान पर प्रयोग कर सके। लोकगीतों में इतना विस्तार नहीं होता। केवल एक-दो चुने हुए स्वर-प्रयोग ही दिल को खींचने के लिये पर्याप्त होती है। उनमें स्वरों का साज-श्रृंगार नहीं होता किन्तु उनका उन विशिष्ट गिने-चुने प्रयोगों का सीदा-सादा पहनावा ही विस्तृत श्रृंगार की अपेक्षा अधिक सुन्दर लगता है और वह सबको आकर्षित करता है। शास्त्रीय संगीत में स्वर समाधि का लक्ष्य होता है। अत: एक राग की पूर्ण स्वरूप की प्रतिष्ठा अपेक्षित है, जिसके लिये विविध स्वर विस्तार किया जाता है और जो सर्व साधारण के लिये सरलता से ग्राह्य नहीं होता। लोकगीत एक स्पष्ट-भावना अथवा वातावरण की एक तीव्र और संक्षिप्त झलक दिखाते हैं, जो सर्वसाधारण को तत्काल प्रभावित करती है।

लोकगीतों में अधिकतर सात शुद्ध स्वरों और दो विकृत कोमल गांधार और कोमल निषाद - स्वरों का प्रयोग मिलता है। अर्थात उनके मुख्यत: बिलावल, खमाज, काफी थाटों के स्वर लगते हैं शास्त्रीय संगीत की दृष्टि से भी इन थाटों के राग अपेक्षाकृत अधिक सरल व सुग्राहय होते हैं। कुछ गीतों में अन्य विकृत स्वरों का भी प्रयोग मिलता है। उदाहरण कोमल धैवत और कोमल ऋषभ। इनमें भी कोमल ऋषभ का प्रयोग कोमल धैवत से कम मिलता है। तीव्र मध्यम युक्त गीत तो कदाचित दो-चार ही मिलेंगे। किसी एक गीत की स्वर-परिधि भी बहुत संक्षिप्त होती है। अर्थात अधिकांश लोक गीतों में तीन, चार या पांच स्वर ही प्रयुक्त होते हैं। देश में शास्त्रीय संगीत के प्रचार व विकास के साथ-साथ और ग्राम तथा नगर के पारस्परिक अधिकाधित संपर्क होने के कारण अनेक स्थानों में लोक गीतों की स्वर सीमायें भी बढ़ती जा रही हैं, फिर सभी प्रान्तों के लोकगीतों की स्वर सीमाओं में भी अन्तर मिलता है कुछ प्रान्तों में तो स्वर-वैचित्र्य बहुत अधिक मिलता है। उदाहरण बंगाल और महाराष्ट्र। अन्य प्रांतों में भी अब स्वर-सीमाएं और स्वर-वैचित्र्य कुछ बढ़ रहा है। किन्तु फिर भी हर प्रान्त के लोक-संगीत में सरलता स्वाभाविकता और संक्षिप्तता आज भी वर्तमान है। अधिकांश लोकगीत सप्तक के पूर्वांग में भी गाए जाते हैं। केवल उन्हें प्रभावशाली और स्पष्ट सुनाई देने योग्य बनाने के लिये ऊंचे स्वर का षडज मान लिया जाता है। उत्तरांग के स्वरों का प्रयोग भी अब क्रमश: बढ़ रहा है। परंतु पूर्वांग के स्वरों की अपेक्षा उनका प्रयोग कम होता है।

यहां पर एक बात पर ध्यान दिलाना आवश्यक है, लोकधुनों में सरलता होने का यह तात्पर्य नहीं है कि उनमें गायन-क्रिया के सौन्दर्यवर्धक उपकरणों का पूर्णतया अभाव है। यह लोकगीत को गाने वाले व्यक्ति पर निर्भर है। ऐसे अनेक गायक मिलते हैं। जो सरल से सरल धुन को गाते समय भी स्वाभावत: अनेक प्रकार के खटके, मुरकियां और मींड का प्रयोग अनायास ही कर जाते हैं। जिन्हें शास्त्रीय संगीतज्ञ यथेष्ट प्रयत्न करने पर अपने कंठ से उत्पन्न कर पाते हैं।

वास्तव में लोक संगीत के अनेक प्रयोग शास्त्रीय संगीत के लिये उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं और सच यह है कि अनेक रागों का जन्म ही लोक-धुनों से हुआ है जैसे - आसा, मांड, झिंझोटी पहाड़ी आदि। वर्तमान काल में तो लोकसंगीत पर भी शास्त्रीय संगीत का प्रभाव पड़ने लगा है और यह आशा की जा सकती है कि भविष्य में लोकसंगीत और शास्त्रीय संगीत का पारस्परिक आदान-प्रदान दोनों को ही अधिकाधिक धनी बनाता जायेगा। किन्तु इस प्रक्रिया में सावधानी इस बात की रखनी आवश्यक होगी कि दोनों का निजी मुख्य लक्ष्य और उसके अनुकूल स्वरूप विकृत न होने पाये। आवश्यक यह है कि शास्त्रीय संगीत लोक-संगीत के रोचक और प्रभावशाली प्रयोगों को लेकर अपने को और अधिक मधुर और आकर्षक बनाये। दूसरी और लोकसंगीत शास्त्रीय संगीत की सहायता से अपनी सीमाएं और विविधता बढ़ाये परन्तु शास्त्रीय संगीत अपनी कलात्मकता को और लोकसंगीत अपनी सर्वग्राहिता एवं लोकप्रियता को न छोड़ें।

लोक संगीत के वाद्य

लोकगीतों का क्रमिक विकास - मानव स्वभाव से ही दूसरों के सम्मुख अपने आन्तरिक उद्‌गारों को प्रकट करने की अभिलाषा रखता है अत: वह उन्हें प्रकट करने के लिये या तो वाणी का प्रयोग करता है, या इंगितों को अपना साधन बनाता है अथवा कभी कभी वाणी और संकेत दोनों ही काम में लाता है। यह उसकी प्रवृति है और प्रवृत्ति का मानव-प्रकृति के साथ जो घना संबंध होता है, उसे कोई भी इनकार नहीं कर सकता।

आज से कई हजार वर्ष पहले जब मानव जाति असभ्य थी, तब भी उसके हृदय में प्रकृति और जीवन सौन्दर्य के प्रति आकर्षण था, अनुभूति थी और उदगार थे, सौन्दर्य से विमुग्ध उस असभ्य मानव के हृदय में तब भी चपल उमंगों की हिलोरों का रस उठा करता था, लालसा तब भी उसकी आंखों में झांका करती थी।

प्रकृति मानव के जन्मजात संस्कारों की आत्मा है। उसका अस्तित्व उसकी चेतना के साथ है किन्तु बुद्धि और उसके विकास के प्रश्न पर इन दोनों में दूध चीनी जैसा संबंध देखने पर भी हम उसके व्यक्तित्व और प्रवाह में अन्तर पाते हैं, कारण कि एक चेतनामय पिंड (प्राणी) भूमि की कठोरता को स्पर्श करते ही क्षुधा की शांति के लिये स्वयं बिना किसी के निर्देशन के मां के स्तनों को स्पर्श करने के लिये मुंह और हाथ से चेष्टा करता है। यहां उसकी प्रवृत्ति और प्रकृति का स्पष्ट रूप हम देखते हैं, साथ ही हम उसकी बुद्धि की कल्पना एक अस्पष्ट रेखा के समान करते हैं, जिसमें अनुमान के लिये लम्बाई तो होती है, किन्तु चौड़ाई का व्यक्तीकरण नहीं होता, लेकिन ज्यों-ज्यों वह शिशु सांसारिक अनुभूतियों के क्षेत्र में अपने शारीरिक विकास के लक्षणों से प्रभावित होता है, त्यों त्यों वह बुद्धि के निर्देशन पर, प्रवृत्तियों के विकास पर विश्वास करता है, अर्थात विकसित जीवन तत्वों की व्यवस्था करते समय बुद्धि को प्रवृत्तियों से प्रधान मानता है।

प्राकृतिक संगीत ही लोकगीतों की परिभाषा है, मानव जब असभ्य था, तब वह अपने उद्‌गारों को प्रकट करने के लिये वाणी द्वारा कुछ अस्पष्ट शब्दों का उच्चारण करता था। उस समय वही वाणी उसकी कविता और वही अस्पष्ट शब्द अथवा ध्वनियुक्त स्फुरण उसका संगीत होता था। धीरे-धीरे

उसका विकास हुआ। उसके साथ ही समाज का भी विकास हुआ और फिर उसने संगीत के साथ सामूहिक नृत्यों के महत्व को भी स्वीकारा तथा पहचाना। इस गीत अथवा नृत्य के प्रचार का यह फल हुआ कि उसने एक दूसरे की भंगिमाओं और उद्‌गारों की गहराई का अनुभव करते हुए, आपसी प्रेम, सद्‌भावना, संगठन एवं वास्तविक अर्थों में अपनत्व की भावना के महत्व को पहचाना तथा अपने जीवन में उन्हें प्राथमिकता प्रदान कर सभ्यता की एक नई धारा की ओर अग्रसर हुआ। यही प्राकृतिक संगीत लोक संगीत के नाम से प्रचलित हुआ।

समाज में वीर-पूजा, धार्मिक पर्वों एवं सामाजिक उत्सवों जैसे शादी, जन्मोत्सव आदि के समय भी नाचने, गाने की प्रथा अच्छी तरह चल पड़ी थी। वीर-पूजा में अपने पूर्वजों का जिन्होंने देश जाति अथवा धर्म के लिये अनेक कष्ट सहन करते हुए प्राण दे दिये थे, गुणगान करते और उनकी स्मृति बनाए रखते थे। इस प्रकार की वीर-पूजा हमारे देश में तथा अन्य अनेक देशों में वीरों की मूर्तियां अथवा अन्य प्रतीक बनाकर अनके सम्मुख नाच-गाकर जिससे उनकी वीरता का ओजस्वी वर्णन होता था करते थे, पेरू में मृत शरीर को ही सुरक्षित रखते हुए उसकी पूजा आदि करने की प्रथा थी। कभी-कभी युद्ध जीत कर आये हुए यौद्धाओं के सम्मान में भी इस प्रकार के उत्सव हुआ करते थे। इसके अतिरिक्त वर्ष में कुछ ऐसे उत्सव आते थे, जब वे धार्मिक उत्सव मनाया करते थे धार्मिक उत्सव प्राय: खेत में बोये धन-धान्य वृद्धि की कामना से करते थे, कुछ उत्सव पुत्रादि की वृद्धि एवं पारिवारिक सुख की कामना से होते थे। इसमें जहां धन-धान्य से की वृद्धि से संबंधित उत्सव होते थे, वहां वे बड़ी ही उमंग और लगन के साथ मनाये जाते थे। फसल तैयार होने पर हर्षोन्याद के साथ सभी स्त्री-पुरुष नाच-गाकर उत्सव मनाया करते थे। फसल को सुंदर देखकर सभी आनंद-विभोर हो अपने देवताओं और पूर्वजों की पूजा कर उसे काटते थे। इसके अतिरिक्त कुछ अवसर मुण्डन, कर्ण-छेदन, ब्याह आदि संस्कारों के भी आते थे जब गाना और नाच हुआ करता था प्राचीन युग में जो उत्सव या मेले हुआ करते थे, उनमें नाचना और गाना ही उत्सव का मुख्य अंग होता था। विचार करने पर मालूम होता है कि यह उत्सव चार रसों के अंतर्गत आ सकते है - शान्त, वीर, करुण और श्रृंगार यही चार रस संगीत के द्वारा भलीभांति प्रकट भी किये जा सकते हैं अतएव प्राचीनों में इन विभिन्न प्रकार के उत्सवों का अलग-अलग भावों और रसों के कारण अलग-अलग ढंग से करने का विचार जाग्रत हुआ। ग्राम संगीत में पुन: परिवर्तन और परिवर्धन हुए। गायकों ने समयानुकूल धुनों के तथा उनके उच्चारण के ढंगों में परिवर्तन किये। वीर और श्रृंगार के रसों के नृत्यों में साम्य न रहा। श्रृंगार रस के नृत्यों में कुछ लोच और भावों (चेहरे के मधुर भावों) में वृद्धि हुई। वीर-पूजा नृत्य की उछलकूद उसमें कुछ कम कर दी गई। श्रृंगार और शांत रस के अनुरूप कुछ नये बाजे भी बने, जैसे वेणु, पणव, परह आदि जिससे इन उत्सवों की भिन्नता दूर से ही दृष्टिगोचर होने लगी कुछ काल तक इसी प्रकार थोड़े हेर-फेर के साथ ये उत्सव मनाये जाते रहे। इसी प्रकार समाज की रूपरेखा भी बहुत अधिक बदल चुकी थी। सभी लोग अच्छे घर बना कर रहने लगे थे। गांव, कस्बे और नगर में रहने की रूचि बढ़ते जा रही थी। प्रकृति एवं इतर प्राणियों में भी उनको प्रेम और बिछोह के दृश्य दिखने लगे थे। कभी-कभी वे उनके हाव-भावों से आकर्षित होकर उनका अनुकरण करने का प्रयास करते। उन्हीं के गीत बनाकर अपने प्रेम को उन्हीं के अनुरूप बनाने का प्रयत्न करते इस प्रकार के उदाहरण उनको चातक, पपीहा, कोयल आदि में पर्याप्त रूप से मिलते रहे। यहीं से श्रृंगार के अंतर्गत एक भाव और पैदा हुआ जिसने विप्रलम्भ श्रृंगार का रूप धारण किया, मिलन के गीत के बाद वियोग के गीतों की आवश्यकता महसूस होने लगी। दो प्रेमियों का वियोग चाहे विदेश गमन के कारण हुआ हो अथवा दो में से किसी एक के शरीरान्त के कारण हुआ हो, असह्य वेदना उत्पन्न करने लगा इसी वेदनात्मक भावावेश में जो उनके मुंह से निकला वह विरह गीत बन गया। इन भावों का या तो सीधा संबंध स्थापित करते हुए या किसी पर आरोपित करते हुए प्रदर्शित किया जाता था। इस तरह के गीतों की धुनें भी किसी एक के द्वारा गाई जाने वाली हो, वियोग से ओत-प्रोत होती थी। इन धुनों को सुनकर ऐसा प्रतीत होता है, मानों कोई किसी आकुलता (बड़ी) और अधीरता से याद कर रहा हो कभी ऐसा महसूस होता है, मानों इनकी कोई बड़ी लम्बी दर्द भरी कहानी है जिसको वे भीतर ही भीतर संजोये रखना चाहते हों।

उपर्युक्त विभिन्न प्रकार के गीतों में अलग-अलग प्रांतों के प्रकृति, बोल-चाल, रहन-सहन, वेष-भूषा का भी अन्तर असर डालता रहा। भिन्न प्रदेशों में रहने वाले व्यक्तियों को जिस प्रकार का प्राकृतिक वातावरण मिला उसी के अनुसार उनकी बोलचाल, वेषभूषा और आचार-व्यवहार में परिवर्तन होने लगा। संगीत को प्रकृति से प्रेरित मनुष्यों के मनोभावों के अनुरूप होना ही चाहिये। अतएव हर प्रदेश में धुनों में परिवर्तन तथा नवीन धुनों का आविष्कार हुआ। ये नयी धुनें कुछ तो प्रादेशिक नाम से विख्यात हुई जैसे, मुलतानी, गुर्जरी, मालव, जौनपुरी आदि और कुछ के देश काल और अवस्था के आधार पर नाम रखे गये जैसे - मांड, आसा, कजरी, चैती, होरी, विरहा, फाग, बारहमासा, पूर्वी आदि इस प्रकार लोक संगीत का क्षेत्र पहले की अपेक्षा बहुत बढ़ गया। उपर्युक्त चार रसों को प्रतिपादित करते हुए नृत्य और गान में नये प्रकार की नयी धुनें प्रचलित हुईं। गुजरात का गरबा-नृत्य और गीत परिष्कृत रूप में समाज के सामने आया। पंजाब के ग्रामीण-गीत, स्वरों में खटकों और मुर्कियों के कारण सुनने वालों के मन में एक प्रकार की तड़फन पैदा कर देते हैं। ऐसा लगता है, मानों स्वरों के द्वारा किसी से छेड़छाड़ की जा रही हो। बंगाल के लोकगीतों में कहीं तो प्राचीन रीतियों के अनुसार उछल-कूद पायी जाती है, और वहीं स्वरों में सुन्दर 'मींड' के कारण पथिक का हृदय अपनी ओर आकर्षित कर लेने का जादू मौजूद है। उत्तरप्रदेश और बिहार में करूणा भरे गीत अत्यधिक सुनाई देते हैं। इन प्रांतों के ग्राम-गीतों की धुनों को सुनकर हृदय हर्षित हो उठता है।

महाराष्ट्र के लोक संगीत में ओज है। उस संगीत में स्फुर्ति अधिक मालूम होती है, वहां की धुनों में सरलता की अपेक्षा वीरता एवं उपदेश की भावना अधिक पायी जाती है। इसी प्रकार अन्य प्रदेशों में भी विभिन्न भावयुक्त धुनों का प्रचलन है, जिनके गहन अध्ययन के पश्चात ही उनमें अन्तर्निहित विलक्षणता का पता चलता है प्राचीन युग से अब तक लोक संगीत में उतना अन्तर नहीं पड़ा है। जितना अन्य विषयों में, विशेष रूप से उन जन-जातियों के संगीत में जो आज भी आधुनिक सभ्यता से बहुत दूर है, अत: कुछ अंश तक तो प्राचीन भारतीय संगीत की रूपरेखा का वर्तमान लोक संगीत से पता लगाया ही जा सकता है। जिन व्यक्तियों में ग्रामीण संगीत को समझने की चेष्टा की होगी, वह अवश्य ही जानते होंगे कि भारतीय शास्त्रीय संगीत की अनेक विशेषताओं के बीज भारतीय लोग संगीत में उपलब्ध हैं।

अगर भारतीय लोक संगीत के संबंध में पूरी खोज की जाये तो ऐसी बहुत सी नयी बातें मालूम हो सकती है, जो आज हमें मालूम नहीं है। संगीत का संबंध संस्कृति से है, और संस्कृति देश का दर्पण है अत: ढूंढने पर हमारी प्राचीनता, सभ्यता आदि का बहुत कुछ प्रमाण लोक-संगीत में मिल सकता है।

लोकगीत तथा उसकी सामग्री - लोक गीतों के स्वाभाविक विकास की सामान्य विवेचना के उपरान्त अब हम लोक गीतों की सामग्री पर विचार करेंगे, सामान्यत: लोकगीतों में मुख्य तीन वस्तुओं का प्रयोग होता है यथा -

1. गीत (शब्द योजना)
2. धुन (स्वर योजना)
3. वाद्य (स्वर तथा लय योजना)

गीतों को लोक साहित्य के अंतर्गत उन गीतों की धुनों तथा उनके साथ प्रयुक्त वाद्यों को लोक संगीत के अंतर्गत रखा जा सकता है। लोक साहित्य के अंतर्गत लोकगीतों का चयन-मनन एवं अध्ययन अनेक विद्वान कर चुके हैं, और कर रहे हैं, किन्तु अभी तक लोक धुनों को संकलित कर उनके स्वरों तथा उनसे उदभूत भावों की आलोचनात्मक व्याख्या करने का (प्रस्तुत) कार्य नहीं हुआ है। लोकगीतों के साहित्य की अपेक्षा उसके संगीत-पक्ष का आकर्षण बहुत अधिक होता है। अतएव जब तक लोक गीतों के संगीत-पक्ष का पूरा अध्ययन न दिया जाये तब तक उसके स्वाभाविक आकर्षण के रहस्य का पता नहीं चल सकता है।

भाषा अपने समझने वाले सीमित क्षेत्र के लोगों में ही प्रभाव उत्पन्न कर पाती है, जबकि संगीत की ऐसी कोई सीमा नहीं है। संगीत का स्वाभाविक एवं प्राकृतिक रूप सभी स्थानों में एक सा दिखाई पड़ता है, संगीत के स्वर तथा लय का आनंद समस्त प्राणियों को प्राप्त होता है। अतएव लोक गीतों में संगीत पक्ष का प्रबल होना (आकर्षण) स्वाभाविक ही है, संगीत के इसी आकर्षण के संबंध में डॉ. श्याम सुन्दर दास ने 'साहित्य लोचन' (पृष्ठ 18) में लिखा है - 'संगीत की विशेषता इस बात में है कि उसका प्रभाव बहुत विस्तृत है और वह प्रभाव अनादि काल से मनुष्य मात्र की आत्मा पर पड़ता चला आ रहा है, जंगली से सभ्य मनुष्य तक उसके प्रभाव के वशीभूत हो सकते हैं। मनुष्य की जाने दीजिये, पशु-पक्षी तक उसका अनुशासन मानते हैं।

लोकगीतों में संगीत के अंतर्गत दो भिन्न धारायें दिखाई पड़ती है। एक धारा उन गीतों की धुनों के रूप में तरंगित होती है, दूसरी विभिन्न वाद्यों की स्वरलय लहरियों का रूप धारण करती है। यद्यपि ये दोनों धारायें अन्योन्याश्रित हैं फिर भी ये कभी-कभी स्वतंत्र रूप से भी प्रवाहित होती हैं। लोक गीतों में अधिकांश ऐसे होते हैं, जिनमें गीत किसी धुन विशेष में गाया जाता है तथा उसके साथ स्वर और लय के अथवा केवल लय के वाद्य बजाये जाते हैं, किन्तु कभी-कभी कुछ ऐसे भी नमूने देखने में आते हैं, जिनमें गीत गाया नहीं जाता अपतु पाठ की तरह पढ़ा जाता है, ऐसी स्थिति में लय की प्रधानता होती है और धुन के न हो हुए भी ताल-यंत्र का वादन होता है। इस प्रकार के प्रयोग प्राय: हास्य विनोद आदि के स्थलों पर होता है, इसके विपरित कुछ ऐसे नमूने भी देखे जाते हैं जहां गीत किसी धुन विशेष में तो गाया जाता है, किंतु उसके साथ किसी वाद्य का प्रयोग नहीं किया जाता, ऐसे प्रयोग प्राय: वियोग, करूणा आदि के स्थलों पर देखे जाते है। लोक गीतों के संगीत में स्वर-वाद्यों का प्रयोग, सुख-दुख, हर्ष शोक के क्षणों में सामान्य रूप में होता है, किंतु ताल वाद्यों का प्रयोग प्राय: हर्षोल्लास के लिये ही होता है अतएव ताल वाद्यों का प्रयोग प्रतीकात्मक कहा जा सकता है। यह लोक संगीत के स्वाभाविक विकास का ही परिणाम है जो कृत्रिमता के दोष से सर्वथा अनभिज्ञ है।

लोकगीतों का काव्य जिस प्रकार साहित्य शास्त्र के कठोर बंधनों से मुक्त बौद्धिक एवं तार्किक उहापोहों से परे स्वच्छंद एवं उन्मुक्त हृदय की पृष्ठभूमि में भावनाओं से अनुप्राणित एवं परिपोषित होता है। उसी प्रकार लोक संगीत शास्त्रीय संगीत के परिष्कृत नियमों से दूर आकाश के स्वच्छंद पक्षी की भांति स्वर और लय के चल पंखों पर उड़ता हुआ अपने स्वाभाविक उतार-चढ़ाव से श्रोताओं का मन मुग्ध कर देता है लोकगीत अथवा लोक संगीत भावना प्रधान होता है। उसे शास्त्रीयता की कसौटी पर लाकर परखने का प्रयास करना उसके साथ अन्याय होगा।

लोकगीतों का काव्य जिस प्रकार साहित्य शास्त्र के कठोर बंधनों से मुक्त बौद्धिक एवं तार्किक उहापोहों से परे स्वच्छंद एवं उन्मुक्त हृदय की पृष्ठभूमि में भावनाओं से अनुप्राणित एवं परिपोषित होता है। उसी प्रकार लोक संगीत शास्त्रीय संगीत के परिष्कृत नियमों से दूर आकाश के स्वच्छंद पक्षी की भांति स्वर और लय की चल पंखों पर उड़ता हुआ अपने स्वाभाविक उतार-चढ़ाव से श्रोताओं का मन मुग्ध कर देता है लोकगीत अथवा लोक संगीत भावना प्रधान होता है। उसे शास्त्रीयता की कसौटी पर लाकर परखने का प्रयास करना उसके साथ अन्याय होगा।

लोक गीतों की आडम्बरहीन शब्द योजना, अपने सादे जीवन के अनुरूप सीधे-साधे ढंग से अपनी भावनाओं को व्यक्त कर देना आदि कुछ ऐसी विशेषताएं हैं, जो अन्यत्र दुर्लभ है, इसी प्रकार लोक संगीत की धुनों का आकर्षण अपनी सरलता एवं स्वाभाविकता के कारण इतना प्रभावोत्पादक होता है कि उनको सुनते-सुनते श्रोता उनमें तन्मय हो जाता है, तथा उसकी भावनाओं का असीम सागर स्वरों के कम्पन के साथ हिलौरे लेने लगता है, ऐसा कौन होगा जो बिहार के विरहा, उत्तरप्रदेश के बारहमासा, पंजाब की हीर-रांझा आदि की धुनों को सुनकर पिघल न उठे ऐसा कौन मानव-मन होगा जो उत्तरप्रदेश के चरवाहों की तथा बंगाल के नाविकों की वंशी, महाराष्ट्र के कोकण की ओर रहने वाले वारली जाति के लोगों की वाद्य तारपी आदि को सुनकर मोहित न हो जाये ऐसा कौन मनुष्य होगा जो बंगाल के जामा, उत्तरप्रदेश की नौटंकी, महाराष्ट्र के तमाशा आदि के ताल-यंत्रों के आकर्षण से खिंचा हुआ पूरी रात जागते रहने के लिये उक्त स्थानों पर न पहुंच जाये लोक संगीत का आकर्षण अनादि काल से मनुष्य मात्र पर अपना प्रभाव डालता चला आया है और जब तक सृष्टि रहेगी, उसका प्रभाव बना रहेगा।

लोक गीतों में संगीत वाद्यों का महत्व - यह पहले बताया जा चुका है कि लोक संगीत की दो धारायें हैं, एक धुन की तथा एक दूसरी उसके वाद्यों की लोक संगीत में वाद्यों का महत्व शास्त्रीय संगीत की अपेक्षा बहुत अधिक होता है, विशेष रूप से ताल-वाद्यों का, जिनके अंतर्गत धन तथा अनवद्ध वर्गों के वाद्य आते हैं चाहे लोक गीत हो अथवा लोक नृत्य, वाद्यों की आवश्यकता दोनों के लिये समान होती है लोक गीतों एवं लोक नृत्यों में प्राण डालने वाले वाद्य ही होते हैं जिनके बिना उक्त दोनों निष्प्राण प्रतीत होते हैं। जिस समय आल्टा तथा 'फाग' में ढोलक 'नौटंकी' में नक्काश, 'तमाशा' में ढोलकी,

कहारों के गाने में हुडुक बज उठते हैं तब लय के मदमाते झोके मनुष्य के अंग-अंग को झुमा-झुमा देते हैं। श्रोता घंटों खोया-खोया वृक्ष-पत्रों की भांति झूमता रहता है। लोक नृत्यों में तो यह स्थिति अपनी चरम सीमा को पहुंच जाती है। पंजाब के भांगड़ा का उफ और चिमटा, गुजरात के गरबा और डांडियों के डण्डे, बंगाल तथा बिहार के भील तथा संथाली नृत्य के मादल, छत्तीसगढ़ के गोंड मारिया, सिल आदि जातियों के नृत्यों के ढोल तथा झांझ आदि की ध्वनियों का वेग जब शनै: शनै: बढ़ने लगता है तब नर्तकों के साथ-साथ दर्शकों के मन प्राण भी उछलने लगते हैं उस समय ऐसा प्रतीत होता है मानों शंकर की ताल पर सारा ब्रम्हांड नाच रहा हो, यह मस्ती, यह मदहोशी, यह हर्षोन्याद की स्थिति और कहां परिलक्षित हो सकती है ?

शास्त्रीय संगीत एवं लोक संगीत की समस्त सामग्री पर यदि विचार किया जाये तो हमें विकास के प्राकृतिक नियमों का आभास मिलेगा 'नादाधीन मिदं जगत' के स्थान पर यदि हम 'कालाधीन मिदं जगत' कहें तो वह अत्यधिक सत्य होगा क्योंकि वैज्ञानिक तथ्यों के अनुसार नाद भी काल के अधीन है, काल के पर्याय कम्पन आन्दोलन आदि हैं, जिनसे गति के लय के भेद दिखाई पड़ते हैं गति चेतनता का प्रतीक है और स्वर उसी का परिणाम है। अतएव स्वर की अपेक्षा गति का प्रभाव अधिक विस्तृत एवं व्यापक होता है। स्वर का आनंद प्राप्त करने लिये संस्कार चाहिये किंतु गति का आनंद छोटे-बड़े, ऊंच-नीच, देहाती-शहरी आदि सभी अनायास होता है इसके लिये संस्कार की आवश्यकता नहीं पड़ती वाद्यों की उत्पत्ति के इतिहास में संभवतया इसीलिये सर्वप्रथम ताल-यंत्रों की ही उत्पत्ति मानी गई है जैसे-जैसे हमारी संस्कृति का विकास होता गया वैसे-वैसे हमने स्वर वाद्यों का सृजन किया तथा उनके विकास में प्रगति करते गये और करते जा रहे हैं।

लोक संगीत आज की प्रकृति के उन्मुक्त एवं स्वच्छंद वातावरण में पुष्पिन तथा चल्लवित होता जा रहा है वह आज भी कृतिज्ञता से दूर है इसलिये उसमें हमें ताल-यंत्रों का एक छत्र राज्य दिखाई पड़ता है। लोक संगीत में यदा कदा स्वर वाद्यों का प्रयोग देखा जाता है, किंतु ताल यंत्रों की तुलना में वह गौण है। इसके शास्त्रीय संगीत में (सुसंस्कृत एवं परिष्कृत होने के कारण) स्वर वाद्यों का ही महत्व अधिक है, सृष्टि के आदि के लय और ताल के प्रति मानव विशेष को रूचि रही है किंतु यह देखने को मिलता है कि जैसे-जैसे वह सभ्य होता गया उसका आकर्षण स्वर की ओर बढ़ता गया आज भी यह देखने को मिलता है कि जो व्यक्ति समुदाय प्रांत अथवा देश लय की अपेक्षा स्वर से अधिक प्रभावित होता है वह लय अथवा ताल के प्रति अधिक अनुरक्ति रखने वालों की अपेक्षा अधिक सभ्य सुसंस्कृत होता है उसमें बुद्धि का विकास तथा हृदय की गहराई अधिक होती है।

वाद्यों के विकासक्रम तथा उनके प्रयोगों में बहुलता एवं न्यूनता के अध्ययन से यह बात स्पष्ट हो जाती है। उदाहरणार्थ प्राय: प्राचीन सभी ग्रंथों में वाद्यों को चार वर्गों में बांटा गया जिसमें एक वर्ग धन वाद्यों का भी है जिसके अंतर्गत कांस्य ताल कंठ ताल मंजीरा आदि वर्ग के वाद्य आते हैं इनके प्रयोग के संबंध में लिखा गया है कि यह अवनद्ध वाद्यों की भांति लय अथवा ताल के लिये बजाये जाते हैं इससे यह मालूम होता है कि प्राचीन समय में शास्त्रीय संगीत के अवनद्ध वाद्यों के साथ धन वाद्यों का भी प्रयोग होता था, किन्तु आज उसके साथ धन वाद्यों का प्रचलन बिलकुल नहीं रहा है। इस प्रकार हम देखते हैं कि शास्त्रीय संगीत में जहां नये-नये स्वर वाद्यों का आगमन तथा प्रयोग जारी है वहां धन वाद्यों का संपूर्ण परित्याग कर दिया गया है अतएव यदि यह कहा जाये कि शास्त्रीय संगीत स्वर-प्रधान तथा लोक संगीत गति-प्रधान होता है तो अत्युक्ति न होगी।

लोक संगीत वाद्यों का वर्गीकरण - वाद्यों के चतुर्विध वर्गीकरण की शास्त्रोक्त प्रणाली की विवेचना पहले की जा चुकी है यदि उसी वर्गीकरण की पद्धति को लोक संगीत के वाद्यों के लिये भी अपना लिया जाये तो उचित ही होगा किन्तु लोक संगीत के वाद्यों के वर्गीकरण को हम उद्देश्य की दृष्टि से देखें तो हमें केवल दो ही वर्ग दिखाई पड़ते हैं पहला वर्ग उन वाद्यों का जिन्हें हम स्वरोत्पत्ति के लिये बजाते हैं तथा दूसरा वर्ग उन वाद्यों के लिये होता है जिन्हें हम लय अथवा ताल के लिये बजाते हैं स्वर के लिये बजाये जाने वाले तत् तथा सुषिर वर्ग के वाद्य होते हैं जिनकी संख्या तथा भेद लोक संगीत में नहीं है (अधिक) लय अथवा ताल के लिये बजाये जाने वाले वाद्य अवनद्ध तथा धन के अंतर्गत आते हैं। भारतीय लोक संगीत में इनकी संख्या इतनी अधिक है कि देखकर आश्चर्य होता है अतएव लोक संगीत के निमित्त उद्देश्य के दृष्टिकोण से वाद्यों के केवल दो ही वर्ग माने जाने चाहिये।

लोक संगीत वाद्यों का रूप, परिचय तथा निर्माण सामग्री - उपर्युक्त वर्गीकरण के अनुसार चूंकि लोक संगीत में ताल-वाद्यों का महत्व सर्वोपरि होता है तथा उनका विस्तार क्षेत्र भी अधिक है अतएव पहले उन्हीं वाद्यों के रूप तथा निर्माण-सामग्री का वर्णन किया जा रहा है इन सभी वाद्यों के अध्ययन से उनके स्वरूप तथा निर्माण सामग्री के संबंध में जो तथ्य सामने आते हैं उनमें से कुछ बातों को देखकर बड़ा आश्चर्य होता है। सामान्यत: लोक संगीत के वाद्यों की समस्त सामग्री प्रकृति जन्य होती है जिससे मिट्टी, काठ तथा खाल मुख्य है किन्तु उसकी बनावट में कारीगरी के अद्भुत नमूने देखने को मिलते हैं विशेष रूप से संन्थालों तथा भीलों के ताल-वाद्य मादल, महाराष्ट्र के लोक संगीत का ताल-वाद्य ढोलकी जिसे आजकल 'नाल' भी कहते हैं तथा कहार जाति का ताल-वाद्य हुरूक कुछ अपनी अलग विशेषताएं रखते हैं चमड़े से मढ़े हुए ताल वाद्यों के ऊपर (खाल के) अथवा भीतर मिट्टी अथवा अन्य वस्तुओं के चूर्ण से तैयार किये हुए मसाले का लेप भारतीयों की अपनी विशेष उपलब्धि है, इसी प्रकार सुतली से चमड़े के दोनों मुख कसे गये हों उसकी सुतली को दबा कर तथा ढीला कर चमड़े की ध्वनि में ऊंचा-निचाई उत्पन्न करना भी भारतीयों की अद्भुत कल्पना का परिणाम है। चमड़े पर मसाला रखने के कारण उस खाल की ध्वनि में इतनी अधिक गूंज होने लगी है कि वह गायक के लिये 'आधार स्वर' बन सकती है।

भारतीय शास्त्रीय संगीत में आधार-स्वर की महत्ता बहुत अधिक है यहां तक कि बिना आधार स्वर के गान क्रिया संभव ही नहीं प्रतीत होती इसी आधार स्वर की जिसे अंग्रेजी में ड्रोन कहते हैं, प्राप्ति के लिये तानपूरे का प्रयोग किया जाता है इस आधार स्वर की वृद्धि के निमित्त ही शास्त्रीय संगीत में ताल वाद्यों का प्रयोग निहित है जिसमें गूंज की अधिकता हो।

पखावज तबला आदि के दक्षिण भाग में मसाले का प्रयोग गूंज उत्पन्न करता है, तथा उसी गूंज के सहारे उन्हें अभिसिप्त स्वर में चढ़ा या उतार लिया जाता है।

यद्यपि भारतीय लोक संगीत के ताल-वाद्यों में मसाले का प्रयोग

होता है जिससे उन वाद्यों की गूंज बढ़ जाती है, किन्तु जैसा कि पहले कहा चुका है लोक संगीत लय प्रधान होता है, अतएव इन गूंज युक्त वाद्यों को किसी निश्चित स्वर में मिलाने की इसमें कोई विशेषता नहीं होती फिर भी वातावरण का निर्माण करने में ये गूंज वाले वाद्य अपेक्षा कृत अधिक सहायक होते हैं। इनमें महाराष्ट्र की ढोलकी एक अपवाद अवश्य है, क्योंकि उसे शास्त्रीय संगीत में प्रयुक्त होने वाले ताल-वाद्यों की भांति एक निश्चित स्वर में मिलाया जाता है यह निश्चित स्वर 'तमाशा' में प्रयुक्त होने वाले तुनतुना जिसे मराठी में 'तुणतुणे' कहते हैं प्राप्त होता है, जो एक तार का वाद्य होता है तथा गायकों के स्वर में मिला कर 'एकतारा' की भांति बजाया जाता है 'तुनतुना' तथा ढोलकी के स्वर एक में मिलकर इतने प्रबल हो जाते हैं कि गायक उसे सरलता पूर्वक आधार स्वर मानकर गाता रहता है।

भारतीय लोक संगीत के ताल वाद्यों की बनावट मुख्य रूप से तीन प्रकार की होती है –

1. जिनमें एक ओर खाल मढ़ी रहती है तथा दूसरी ओर का मुंह खुला रहता है, इस प्रकार में डफ, खंजरी आदि आते हैं।
2. जिन्हें दोनों ओर खाल में मदा जाता है इस प्रकार में ढोल, ढोलकी हुडुक डमरू आदि आते हैं।
3. जिनके एक ओर खाल मढ़ी जाती है तथा दूसरी ओर से उसका मुंह बंद रहता है इस प्रकार में नगाड़ा, नगड़िया, ताशा, दुक्कड़, मटकी आदि आते हैं।

उपर्युक्त तीनों प्रकारों के वाद्यों के आकार, उनके ढांचा निर्माण की वस्तु खाल बनाने के ढंग में, अनेक भेद-उपभेद पाये जाते हैं।

कला समय

आगामी अंक
अगस्त-सितम्बर 2020

डॉ. नारायण व्यास (डी. लिट्)

भारतीय पुरात्तवविद्, इतिहासकार, साहित्यकार, कलाविद्,समाजसेवी पर केन्द्रित विशेषांक

डॉ. नारायण व्यास भारत के सुविख्यात पुरातत्ववेता, भारतीय शैल-चित्र एवं मंदिर स्थापत्य-मूर्तिकला के विशिष्ट अध्येता बहु आयामी व्यक्तित्व के धनी इतिहास, संस्कृति एवं पुरात्तव के जानकार शैलचित्र कला में (डी.लिट्) की उपाधि प्राप्त प्रथम भारतीय पुरातत्वविद् पद्मश्री डॉ. विष्णु श्रीधर वाकणकर के प्रिय शिष्य अनेक सम्मानों से सम्मानित भारत सरकार का सांस्कृतिक प्रतिनिधित्व के अंतर्गत राष्ट्रीय, अंतरराष्ट्रीय शोध संगोष्ठियों में सहभागिता के साथ ही दिल्ली, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, गुजरात, दमन-दीव, छत्तीसगढ़, हरियाणा, महाराष्ट्र के अनेक प्रान्तो के पुरातात्विक उत्खन्न एवं सर्वेक्षण से संबंध शख्सियत पर केन्द्रित अंक हेतु आलेख, चित्र, संस्मरण आमंत्रित है।

-संपादक

खलील जिब्रान की चार लघु कथाएं

कला समय के इस कॉलम में आज कुछ हट कर ... अरबी और अंग्रेजी के लेबनानी अमेरिकी कलाकार, कवि तथा विश्व विख्यात लेखक खलील जिब्रान (1883–1931) की कुछ लघुकथाएं।

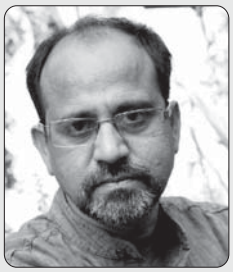

अनुवाद : मणि मोहन

प्रो. मणि मोहन अनुवाद के क्षेत्र में लंबे समय से सक्रिय हैं। अनुवाद के अलावा वे समकालीन हिंदी कविता के समर्थ कवि भी है। अनुवाद के माध्यम से वे हमें विश्व साहित्य की विरासत और हलचल से अवगत कराते रहते हैं।
सम्प्रतिः शा. स्नातकोत्तर महाविद्यालय गंज बासौदा में अंग्रेजी के प्राध्यापक। मो.- 09425150346

प्रेम गीत

एक बार एक कवि ने एक प्रेम गीत लिखा और यह गीत बहुत सुंदर था। इस गीत की उसने कई प्रतियाँ तैयार की और अपने दोस्तों और परिचितों को भेजीं जिसमें स्त्री और पुरुष दोनों शामिल थे। इस प्रेम गीत को उसने उस युवा स्त्री को भी प्रेषित किया जिससे वह सिर्फ एक बार मिला था और जो पहाड़ों के उस पार कहीं रहती थी।

और फिर एक या दो दिन बाद ही उस युवा स्त्री का संदेशवाहक उसके पत्र को लेकर आ गया। और अपने पत्र में उसने लिखा था, ''मेरा विश्वास करो, इस प्रेम गीत ने, जो तुमने मेरे लिए लिखा है, मेरे हृदय का स्पर्श किया है। अब तुम आकर मेरे माता–पिता से मिल लो ताकि हम अपनी सगाई की व्यवस्था करें।''

और उस कवि ने इस पत्र का उत्तर देते हुए लिखा, ''मित्र, यह प्रेम गीत एक कवि के हृदय से निकला है, जिसे प्रत्येक पुरुष, प्रत्येक स्त्री के लिए गाता है।''

और उस युवा स्त्री ने फिर उसे पत्र लिखा, ''पाखण्डी और झूठे। अब से लेकर मृत्यु पर्यन्त, मैं तुम्हारी वजह से तमाम कवियों से नफरत करूंगी।''

कवि

चार कवि उस कटोरे के इर्दगिर्द बैठे हुए थे जो कि एक टेबिल पर रखा हुआ था। पहले कवि ने कहा, 'मुझे लगता है कि मैं अपने तीसरे नेत्र के माध्यम से अंतरिक्ष में फैलती इस शराब की सुगन्ध को देख सकता हूँ, मानो किसी जादुई अरण्य में चिड़ियों के झुण्ड मँडरा रहा हो।'

दूसरे कवि ने अपना सिर ऊपर उठाया और बोला, 'अपने आंतरिक कान की मदद से मैं इन परिंदों को गाते हुए भी सुन सकता हूँ। इस संगीत ने मेरे हृदय को अपने वश में कर लिया है, जैसे सफेद गुलाब की पंखुड़ियां मधुमक्खी को लुभाती हैं।'

तीसरे कवि ने अपनी आँखें बन्द की और अपनी बाहें ऊपर उठाते हुए बोला– ''मैं अपने हाथों से इन परिंदों को छू सकता हूँ। मैं इनके पंखों को महसूस कर रहा हूँ मानो किसी निद्रामग्न परी की साँसें मेरी उँगलियों का स्पर्श कर रह हों।''

इसके बाद चौथे कवि ने शराब से भरे कटोरे को उठाते हुए कहा, 'उफ दोस्तों! मेरी नजरें, श्रवण और स्पर्श करने की क्षमता कितनी कमजोर है। मैं न तो इस शराब की सुगन्ध को देख सकता हूँ, न उसके गीत को सुन सकता हूँ और न ही उसके पंखों की सरसराहट को महसूस कर पा रहा हूँ। इसलिए अब मुझे इस शराब को पीना चाहिए ताकि यह मेरी इन्द्रियों को सक्रिय कर सके और मुझे आप सब की उदात्त ऊंचाई तक पहुँचा सके।' और फिर उसने शराब के कटोरे को अपने होंठों से लगाया और खाली कर दिया।

तीनों कवियों के मुँह खुले के खुले रह गए और उन्होंने चकित होकर चौथे कवि की तरफ देखा। और उनकी आँखों में एक प्यासी किन्तु संगीतहीन कर्कश घृणा दिखाई दे रही थी।

आँसू और हँसी

नील नदी के किनारे एक लकड़बग्घा और एक मगरमच्छ की मुलाकात हुई। परस्पर अभिवादन के बाद लकड़बग्घे ने कहा, ''और क्या हालचाल है, श्रीमान ?''

और मगरमच्छ ने जवाब दिया – ''कुछ भी अच्छा नहीं चल रहा। जब कभी दर्द और दुःख की वजह से मुझे रोना आता है तो सभी जीव–जन्तु हमेशा यही कहते हैं कि, 'ये तो मगरमच्छ के आँसू है', और यह बात मुझे बहुत तकलीफ देती है।''

यह सुनकर लकड़बग्घा बोला, ''तुम अपनी तकलीफ की तो बात करते हो, पर एक पल के लिए मेरे बारे में भी तो सोचो। मैं इस दुनियां की सुंदरता की तरफ देखता हूं, इसके जादू को विस्मय से देखते हुए आनंद के अतिरेक से मैं हँसता हूं, जैसे यह दिन हँसता है। और फिर जंगल के प्राणी कहते हैं, 'अरे यह तो लकड़बग्घे की हँसी है।''

शांति और युद्ध

धूप का आनंद लेते हुए तीन कुत्ते बातचीत में मशगूल थे। पहले कुत्ते ने स्वप्नदर्शी अंदाज में कहा, ''चमकदमक वाली कुत्तों की इस दुनियां में रहना वास्तव में सुखद है। जरा सोचो कितनी आसानी से हम समुद्र के भीतर, धरती पर, यहां तक की आकाश में भी सफर करते हैं। एक पल के लिए उन अविष्कारों के बारे में सोचो जो कुत्तों के आराम को ध्यान में रखकर हुए हैं, यहां तक कि हमारी आँख, कान और नाक तक की सुविधा का ध्यान रखा गया है।''

और दूसरा कुत्ता बोला, ''हम कला के प्रति ज्यादा सचेत हैं। चन्द्रमा की तरफ देखते हुए हम अपने पुरखों से कहीं ज्यादा लयात्मक ढंग से भौंकते हैं। और जब हम पानी में खुद का अक्स देखते हैं तो पाते हैं कि हमारे नाक नक्स पहले से कहीं ज्यादा उज्जवल हुए हैं।''

फिर तीसरा कुत्ता कुछ यूँ बोला, ''परन्तु मेरे लिए रूचि और आनंद की बात यह है कि कुत्तों की हमारी दुनियां में गजब का सामंजस्य है।''

ठीक इसी क्षण उन्होंने देखा, बाप रे! कुत्ता पकड़ने वाला उनकी तरफ ही आ रहा था।

तीनों कुत्तों ने उछाल भरी और तेजी से गली की तरफ दौड़ लगा दी। भागते हुए तीसरे कुत्ते ने कहा, ''ईश्वर के लिए तेजी से भागो। सभ्यता हमारे पीछे है।'' ■

गीत

कृष्ण बक्षी के गीत

कृष्ण बक्षी

जन्म : 15 अक्टूबर 1942
प्रकाशन : हवा बहुत तेज है, एक भाषा नदी की, जमीन हिल रही है, रोशनी बेताब है 'गजल संग्रह', रंग बोलता है, सुर्ख सवेरा, गीतों पर एकाग्र।
सम्पादन : जानकी प्रसाद शर्मा एवं मणि मोहन, सवालों की दुनिया
पता: राधा कृष्ण पुरम, बरेठ रोड गंज बासोदा, विदिशा (म.प्र.) 464221
संपर्क : 07869602422

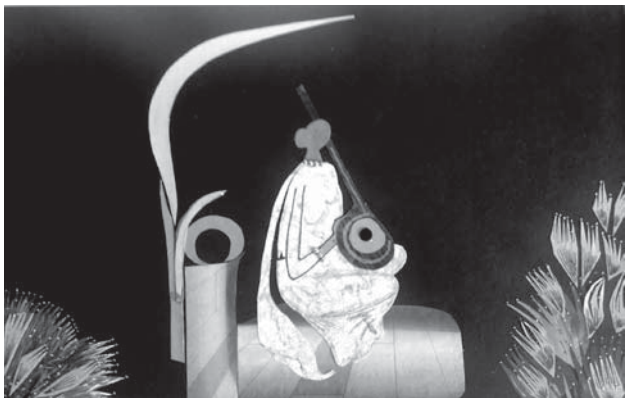

कोलाज : नंदिनी सोहोनी पुणे (महाराष्ट्र)

(1)

बढ़ने लगा अंधकार है
सूरज को तुम, लेकर आओ
और नहीं अब, देर लगाओ ...
गहराने से, लगे हमारे
साथ चले थे, जितने साये
वो थे, नहीं भरोसे वाले-
हमने जो साथी अपनाये ...
दगा दे गये, भरी दोपहरी
साँझ ढले तो, मत घबराओ ...
बनके दिया तुम्हारी खातिर
जिस ने अपनी उम्र गुजारी
उसके हिस्से, क्यों दे डाली
इतनी घनी रात, अँधियारी ...
दीन-दुखी पर, दया भाव का
माथे पर, मत तिलक सजाओ...
काफी समझाया था तुमको
बात तुम्हारी समझ न आई
नौका को मत, वहाँ उतारो
जहाँ नहीं, बिलकुल गहराई ...
बचते आये हो तुम अब तक
ये गलती न फिर, दोहराओ ..

(2)

फूलों ने
चूम लिया,
गंध ने नकारा
बरसों तक ऐसे ही चला।
जाने किस जगह,
जा कर काफिला
थमे।
पीठ, किये पड़ी
हरी दूब पीलेपन
सौंप कर हमें।।
तपी हुई रेत पर
पूरा दिन लेटकर गुजारा।
बरसों तक ऐसे ही चला।।
महारथी समय ने
पकड़ ली, गरदन
गिरेबान।
पेट भर मिली हमें,
भूख, कुढन, जलन-
या थकान।।
आँगन के खिंचे रहे तेवर,
गलियों का चढ़ा रहा पारा।
बरसों तक ऐसे ही चला।।

(3)

चाहे जितनी सघन रात हो
फिर भी उस पर कोई बात हो।

ऐसी बात नहीं कि, जिसका ओर-छोर न हो
जिसका मकसद उजली किरणों वाली भोर न हो
व्यर्थ बैठ-बाठ कर, बहस चर्चा शोर न हो
हो तो एक सिरे से, इसकी तहकीकात हो ...
चाहे जितनी सघन रात हो।।

बावजूद इस सब के भी है भागम-भाग मची
उसे खोजिये जिसने ये, काली करतूत रची
जिसके कारण कहीं दिये की लो तक नहीं बची
ऐसा नहीं के ये सब का सब जन्मजात हो
चाहे जितनी सघन रात हो।।

बार-बार ये प्रश्न, हवा में गया उछाला है
दिन की सूची में आखिर क्यों नहीं उजाला है
सोचा जाये कहाँ-कहाँ पर गड़बड़झाला है
ताकि हो तो बेहतर उसकी शुरुआत हो
चाहे जितनी सघन रात हो।।

■

कविता

डॉ. शुभ्रता मिश्रा की कविताएँ

डॉ. शुभ्रता मिश्रा
शिक्षा: पीएचडी (वनस्पतिविज्ञान)

संप्रति : स्वतंत्र लेखिका। हिंदी भाषा में वैज्ञानिक एवं सामयिक विषयों पर लेखन, हिंदी अनुवाद, आकाशवाणी व दूरदर्शन के कार्यक्रमों सहित विभिन्न संस्थानों में व्याख्यान। प्रकाशन : हिंदी व अंग्रेजी में विज्ञान व सामयिक विषयों की कुल इक्कीस पुस्तकें प्रकाशित। संपर्क : मोबाइल – 08975245042, ईमेल – shubhrataravi@gmail.com

(1)
अंटार्कटिका का पुण्यधरा

परमशीलता, श्वेताम्बरा
पंचकोटि अवनि इतिहास का
द्रोण सुधा सींचती
गोंडवानालेंड के विलगाव का
कोण आधा खींचती
दुर्गम, प्रचण्ड, शुष्कता से भरी
पुण्यसलिला, हिमरुचिरा,
अंटार्कटिका की पुण्यधरा।।

परमअचला, श्वेतगम्भीरा
इहशोक के स्पंदन के
मौन संगीत से गूंजती
इहलोक के संचलन के
परम रहस्य को बांचती
अगम, अखण्ड, वातता से भरी
श्वेतरुधिरा, हिमकंदरा,
अंटार्कटिका की पुण्यधारा।।

परमधवला, श्वेतनीरा
सौर विकिरणों की
लघुतरंगे बिखेरती
नीर के त्रिरुप में
प्रकृति में बिराजती
रहस्यों, विस्मयों,
झंझावता से भरी
श्वेतचर्चिता, हिमअधरा
अंटार्कटिका की पुण्यधरा।।

श्वेतसंस्कृता, हिमनिर्झरा
अंटार्कटिका की पुण्यधरा।

परममरुस्थला, श्वेतचीरा
भूल द्वेष प्रेमभूत मानवता
सदियों से कर रही आरती
शांतिमय विज्ञान हेतु
दशकों से गूज रही भारती
तितिक्षा, चुनौती, शुष्कता से भरी
श्वेत संस्कृता, हिम निर्झरा
अंटार्कटिका की पुण्यधरा।।

परमवत्सला, श्वेतमीरा
निस्तब्ध एकांतता में
ब्रह्माण्ड आप पूजती
पृथ्वी की अंतिम विशाल
अप्रसूता श्राप झेलती
पुष्पहीना, विषकंटका,
विविक्ता से भरी
श्वेतमाता, हिममंदिरा,
अंटार्कटिका की पुण्यधरा।।

कोलाज : नंदिनी सोहोनी पुणे (महाराष्ट्र)

(2)
उठो समय

उठो समय
तुम ठहरे हुए अच्छे नहीं लगते
क्या हुआ जो स्निग्ध अशुभता
तुम्हारे हर शुभ को फिसला रही है।
उठो समय,
तुम्हारा ठहराव सृष्टि की नियति
बदल रहा है
तुमसे तुमको ही छीन रहा है
फिसलकर गिरी
शुभताओं में भी कहीं
ऊर्जा बसी है,
फिर से उठकर तो देखो।
अत: उठो समय .....

(3)
इंद्रजाल

कालरात्रि में तारा टूटा
जैसे मेरे भ्रम का कोई
इंद्रजाल था टूटा।

तार-तार जब हुआ जाल तो,
कितनी ही आशाएँ रोईं।
तार-तार जब हुआ जाल तो,
शब्दों ने जैसे वाणी खोईं
मूक बना में खड़ा रहा
कितने ही ज्वारों तक
सचल हुआ, जब
आया एक ऐसा भाटा
ज्ञात हुआ
वह भ्रम था मेरा
वह मेरा एक सन्नाटा।

जीवन की इस कालरात्रि में
कितने ही तारे टूटेंगें
कितने ही भ्रमजालों के वे
इंद्रजाल छूटेंगे।
तार-तार आशाएँ होगी,
तार-तार होगे सपने
चलना तुझे अकेले होगा
क्या दूजे, कैसे अपने ?

■

ग़ज़ल

दौलतराम प्रजापति की ग़ज़लें

दौलतराम प्रजापति

जन्म : 03 मार्च 1975

प्रकाशित कृतियां : दीप रोशन हुआ, नवगीत संग्रह, ग़ज़ल संग्रह।

प्रकाशन : आंचलिक जागरण, कथा सागर, दिव्य हिमाचल, शुभतानिका, एक नया सवेरा, शब्द शिल्पी, शैल सूत्र, लहक, लोकजंग, किस्सा कोताह, सुबह सबेरे।

पता: वार्ड 05 कुम्हार गली सिरोंज रोड लटेरी जिला विदिशा (म.प्र.) 464114

संपर्क : 09893388470

कोलाज : नंदिनी सोहोनी पुणे (महाराष्ट्र)

(1)

जिनके दम से कुर्सियां हैं तख्त हैं सब नूर हैं।
हैं वही ये लोग जो सड़कों पे अब मजबूर हैं।।

है हकीकत ये तो फिर कुछ तो दिखाई दे हमें
फाइलों में जिनके नामे राहतें भरपूर हैं।।

पीठ पर लादी गृहस्थी तय किया मीलों सफर
आज जाना हमसे अपने गाँव कितनी दूर है।।

हैं हवाई जहाज इनके धनकुबेरों के लिये
पाँव नंगे, भूखे प्यासे रोड पर मजदूर हैं।।

तुम बजाओ तालियाँ और थालियाँ घर बैठकर
बेजुबाँ सड़कों के देखो रिस रहे नासूर हैं।।

काम धंधे ठप्प हैं चौपट किसानी रोजगार
चीखती सारी व्यवस्थाएं जो चकनाचूर हैं।।

आह-चीखें-वेदनाएं और निराशा हरतरफ
आप दौलत ये बताएँ किस लिए मगरूर हैं।।

(2)

चारों खाने बर्फ जमीं है इस दिल पर अंगारे क्यों ?
मेहनत करने वाले आखिर फिरते हैं बटमारे क्यों ?

निर्दोषों के माथे मढ़कर अपराधी की संज्ञाएं
गली-गली में सीना ताने फिरते हैं हत्यारे क्यों ?

मची हुई है लूटामारी अंधेरों की मनमानी
अंधेरों से लड़ने वाले बैठे मन को हारे क्यों ?

नफरत नंगी नाच रही है गाँव-गाँव और गली गली
डरे-डरे सहमे-सहमे से दुबके भाई चारे क्यों ?

हमने भी अपने हिस्से का खून पसीना बोया है
खुशहाली में अपने हिस्से आये केवल नारे क्यों ?

कल-कल बहती मीठी नदिया जग की प्यास बुझाती है
रुके हुए धनवान समंदर आखिर लगते खारे क्यों ?

दौलत तेरी कार-गुजारी के सब पन्ने काले हैं
पहले अपना दामन देखो जग की तरफ इशारे क्यों।।

(3)

जो सुबह के सुर्ख चेहरे से टपकता खून है।
ये हमारे दर्द के अंजाम का मजमून है।।

बारिशें और ठंड के चाबुक बदन पर नक्श हैं
दिलके अंदर दोस्तों फिर भी धधकता जून है।

हम बहादुर शाह तो हरगिज नहीं पर दोस्तो
आजकल अपना वतन अपने लिए रंगून है।।

चीथड़ों से ढक रही काया सलौनी राधिका
जिस्म पर गोपाल के मैली फटी पतलून है।।

क्या तेरी है जात दौलत है तेरी औकात क्या
वक्त से सादिक बताओ कौन अफलातून है।।

(4)

घर आंगन सब हो गए, बच्चों की चौपाल।
घर को घर-सा कर गया, ये कोरोना काल।

भूले-बिसरे आ रहे, रह-रह कर दिन याद
क्या देकर, क्या ले गए, हमसे बीत साल।।

पक्षी वापिस आ गए, लौट गांव की ओर
नदियां निर्मल हो गई, मुस्काते हैं ताल।।

मौका अपने पास है, सोचो ! करो विचार
प्रगति के इस दौर की, दुर्गति की पड़ताल।।

रोजी-रोटी छिन गई, लोग घरो में कैद
आज समय के गर्भ से, उपजे कई सवाल।।

(5)

इश्क-मीना-जाम-साकी-उल्फतों की चाहतें
मेरी ग़ज़लों में नहीं, हैं दोस्तों की चाहतें।।

एक तो खारा समंदर और फिर प्यासा बहुत
तुम भी किसके दर पे लाये मुद्दतों की चाहतें।।

एक मुट्ठी भीख की खातिर लुटा कर चल दिए
झोलियाँ भरकर दुआएँ बरकतों की चाहतें।।

घूमती हैं बेसबब इस मेज से उस मेज तक
नश्तियों पर फाइलों में रिश्वतों की चाहतें।।

दीन-ओ-ईमां हैं सियासी पेंच में उलझें हुए
कौम को लड़वा रहीं हैं नफरतों की चाहतें

आस के काजल लगाए स्वप्न मेंहदी के रचे
बिन विहाई रह गई सब गुरबतों की चाहतें।।

खून में दौलत अक़ीदत को मिलाया यूँ गया
पत्थरों से माँगता हूँ रहमतों की चाहतें।।

■

आलेख

कोरोना कहर में कला

छवियों का छंद

विनय उपाध्याय

''अनुभूति की तरंगें तो हर चित्त में उठ सकती हैं, पर अभिव्यक्ति के तीर्थ सबके नसीब में नहीं होते।'' कला की ज़मीन पर खड़े होकर देखें, तो कोई अकुलाहट, कोई संवेदना, कोई बेचैनी बाँह थामती है और जैसे सारे बंधन खुल जाते हैं। एक आज़ाद मन इसी भूमि पर अपनी कल्पना के रंग बिखेर देता है और कुछ रच देने का सुख अनमोल सौगात बन जाता है। संजय महाजन इन दिनों इसी अहोभाव से भरे हैं।

संस्कृति के सुन्दर छंद रचने वाले इस लोकरंगी कलाकार ने इधर जो रूपांकार गढ़े हैं, यकीनन वह उनके कलात्मक कौशल की नई बानगी हैं। सतपुड़ा और विंध्याचल पर्वतों के पाँव पखारती नर्मदा मध्यप्रदेश के निमाड़ अंचल के जिस पश्चिमी छोर को छूकर अपनी गति का चरण नापती है, संजय उसी धरती के बेटे हैं। उनका मन इसी मिट्टी के वैष्णवी अनुराग में भीगा है। इसी जनपद की लोक संस्कृति के सौभाग्य पर्व गणगौर का परचम थामे वे देश-दुनिया की सैर कर चुके हैं। गणगौर के गीत-नृत्यों से उनका रूह-रक्त का नाता हैं।

गीतों के साथ उमगती नृत्य की लय-ताल भरी देह की थिरकनों में संजय कुछ ऐसे रमे कि उनकी शख्सियत के चेहरे पर यही रंगत ठहर सी गयी। लेकिन शृंगार और ललित्य के उजास में निखरी उनकी प्रतिभा ने हाल ही में जो चमत्कार कर दिखाया है उस पर मुग्ध हो जाने को मन करता है। वे लोक कलाओं के पारंपरिक संसार में रूपंकर का निहायत नया आयाम लिए प्रकट हुए हैं। इन दिनों उनका आशियाना रंग-बिरंगे पुतलों से सजा है। ये पुतले भारत की उस तहज़ीब की दास्तान सुनाते हैं जो लय-ताल और भावमुद्राओं की भाषा में हमारी उत्सवधर्मी परंपरा का मनोहारी विश्व रचती है।

संजय के लिए पुतलों की यह शृंखला रचने का प्रयोजन जितना सांस्कृतिक विरासत के प्रति गहरे मान से जुड़ा है, कमोबेश उतना ही उसके ललित पक्ष को उजागर करना भी, जहाँ चाक्षुष सौन्दर्य के साथ अलहदा रंग-रूपों में सजी-धजी नृत्य शैलियों के ज़रिये निरंतर.....

आंचलित परिवेश तथा शृंगार-प्रियता के दर्शन होते हैं। नैन सुहाती पुतलियों की इस पांत में भरतनाट्यम, ओडीसी, कथक, मोहिनीअट्टम, कथकली, कुचिपुड़ी और मणिपुरी जैसी सात प्रमुख शास्त्रीय नृत्य शैलियों से लेकर भांगड़ा (पंजाब), लावणी (महाराष्ट्र), डांडिया रास (गुजरात) कालबेलिया-सपेरा (राजस्थान), पंडवानी (छतीसगढ़), काठी-गणगौर रथ, बधाई, मटकी, गुदमबाजा (मध्यप्रदेश) और ढोलुकुनीता (कर्नाटक) आदि जनपदीय परंपरा के प्रतिनिधि नृत्यों की भाव-मुद्राएं अपनी आभा में निखर आयी सी हैं। इन सबके साथ ही हाथ में विजय पताका लिए भारत जननी भी। यानी लोक और शास्त्रीय परंपरा के प्रति एक-सा मान।

यहाँ यह जानना दिलचस्प होगा कि संजय का यह सृजन उस त्रासद समय का हासिल है जब सारी क़ायनात पर कोरोना का कहर टूट पड़ा। तमाम सरहदें घर की चैखट तक सिमट गयी और दरीचे इमारतों के ही नहीं, दिमाग़ के भी बंद होने लगे। संजय और उनके परिवार ने इसी बीच उत्साह बटोरा। घर की जमा संदूके खंगाली। उपयोग में न आने वाली पुरानी नृत्य-पोशाखें, गहने, शृंगार-सामग्री और अन्य संसाधन इकठ्ठा किये।

इन पुतलियों का रूप गढ़ने में संजय ने खुद की तकनीक ईजाद की। पहले चरण में नृत्य शैलियों की कल्पना करते हुए उन्होंने घर में बनाई पेपर पेशी के मुखौटे तैयार किये। गेहूँ के आटे और फेवीकोल का सूती मुलायम कपड़ों पर लेप लगाकर उन्हें ज़रूरत भर स्टील के तारों से कसकर शरीर का मूल ढांचा तैयार किया। वैशाख और ज्येष्ठ महीने की तीखी धूप ने इनकी नमी सोख ली और इन्हें मनचाहा आकार मिला। फिर शुरू हुआ इनका सिंगार। रंग-बिरंगी राखियों की रेशमी डोर और फूल, पुरानी मालाओं के मोती, गजरा, चोटी, बिंदी,

काजल और रंगीन चिंदियों की छालरों से जब उनका शृंगार किया तो जैसे निष्प्राण देह बोल उठी। आनुपातिक संतुलन और सुंदरता भी इनकी खासियत है जो मोह जगाती है।

इस अनुष्ठान में संजय का परिवार भी शामिल हुआ। पत्नी ने पोशाखें सिलीं, तो बच्चों ने लाई बनाने से लेकर छोटे-बड़े तार जुटाने में मदद की। संजय बताते हैं कि उनके लिए इन रूपकों को सिरजना एक अनोखी भाव-यात्रा पर चल पड़ने की भीतरी पुकार थी। छुटपन से ही तरह-तरह की गुड़ियाएँ बनाने का उन्हें शौक था। इंदौर के आड़ा बाजार में जब भी जाना होता, गुड़ियाएं उनकी कल्पना में कौंधती वे दुकानों पर लटकते लाल-पीले धागों और चमकती पन्नियों को देखकर ललचाते और उन्हें लेकर ही लौटते लड़कपन में ही घर के आंगन में रंगोली और हथेलियों पर मेहंदी काड़ना उन्होंने सीख लिया। दीवार और कागज़ पर उभरी आकृतियाँ उनकी चित्रकारी का नमूना है। कथक के प्रशिक्षित नर्तक हैं और तबले के दाँए-बाँए पर थिरकती उंगलियाँ उनके विशारद होने की गवाही देती हैं। उनके गले में खनक है और चेहरे पर अनुभव की चमक है। ये तमाम संदर्भ कला के इस 'महाजन' को समग्रता में देखने-समझाने के आयाम हैं।

बहरहाल निमाड़ की पट्टी का यह कलाकार अपने इस नवोन्मेषी काम को लेकर गहरे संतोष और आनंद में हैं। नृत्यरत पुतलियां फिलवक्त उनके घर के बैठक खाने की शोभा हैं। बड़वाह के कलारसिकों तक आहट पहुँची तो कौतुहल उमड़ पड़ा है। संजय जल्दी ही इनकी नुमाईश करेंगे। मांग पर इनका निर्माण भी करेंगे। इन पुतलों की निर्माण कार्यशाला करने का भी उनका इरादा है। वे श्रम को माधुर्य में बदल देने का माद्दा रखते हैं। जीवन, प्रकृति, संस्कृति, इसी रीत और प्रीत की आपसदारी हैं।.....संजय महाजन ने भी तो छवियों का ऐसा ही मनछूता छंद रचा है।

-एम.एक्स.-131, अरेरा कालोनी, भोपाल, म.प्र.- 462016
मो.: 9826392428

हार्दिक बधाई...

विश्वेश ठाकरे को पीएचडी

श्री विश्वेश ठाकरे

कला समय के सहयोगी, छत्तीसगढ़ के वरिष्ठ पत्रकार और दैनिक भास्कर के स्टेट सेटेलाइट एडिटर विश्वेश ठाकरे को माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता विश्वविद्यालय ने पीएचडी की उपाधि प्रदान की है। पीएचडी में उनका विषय टेलीविजन समाचार चैनलों में विधानसभा चुनाव के समाचारों का विश्लेषणात्मक अध्ययन था। इस रिसर्च में टेलीविजन चैनलों पर चुनाव के दौरान प्राइम टाइम बुलेटिन में दिखाए जाने वाले समाचारों का अध्ययन किया गया है । विश्वेश ठाकरे पिछले 22 सालों से इलेक्ट्रॉनिक और प्रिंट मीडिया में सक्रिय पत्रकार की भूमिका निभा रहे हैं। संप्रति वे रायपुर में अपनी सेवा दे रहे हैं।

कला समय परिवार गौरवान्वित महसूस करते हुए विश्वेश जी के उज्ज्वल भविष्य की कामना करता है ।

- संपादक

आदरांजलि...

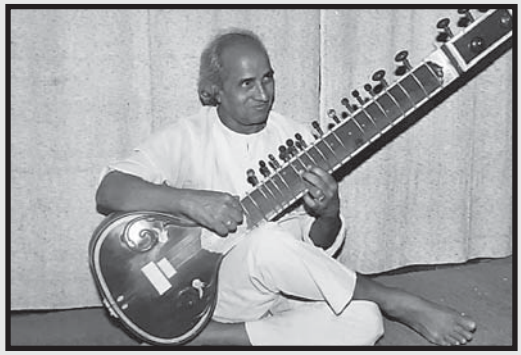

स्व. श्री शरद तेलंग

उत्तरार्ध शंकर सूत्र श्रृंखला के यशस्वी उत्तराधिकारी मूर्धन्य सितार वादक स्मृति-शेष पं.शरद तेलंग की स्मृति को चिरस्थायी बनाने के लिए समर्पित प्रतिष्ठान 'इनपुट-आर' की ओर से संगीत-विज्ञान-कला के मूल्यगत संरक्षण-विकास के लिए समर्पित मनीषियों-ऋषियों के अनथक श्रम को नमन् ।

श्रृद्धावनत

राग तेलंग
अनघा राग, अमन राग
श्रद्धा सुमन, राजेश भार्गव

आलेख

काव्य और संगीत का पारस्परिक संबंध

डॉ. अरविंद जोशी

विद्याओं की देवी सरस्वती का जो रूप कल्पिक किया है। सरस्वती को वीणा पुस्तक धारिणी चित्रित किया जाता है। वह हंस और कमल पर स्थित होती हैं। हंस आत्मा का और कमल भी आत्मा और मन का प्रतीक होता है। वीणा और पुस्तक ये कला और विद्या के प्रतीक हैं। कला और विद्या का मूल आधार आत्मा है। इसलिये सरस्वती को हंसवाहिनी और श्वेत पद्मासना बताया जाता है।

आत्मा की सद्वृत्तियों की अभिव्यक्ति तथा उस पर संग्रहित संस्कारों की अभिव्यक्ति कला व ज्ञान के माध्यम से होती है। अभिव्यक्ति का सबसे सुलभ उपाय मनुष्य के पास उसका कंठ-स्वर ही है। समस्त विधायें वाणी के द्वारा ही व्यक्त होती हैं। इसलिये सरस्वती को वाणी भी कहा जाता है। वाणी के दो रूप हैं - 1. ध्वनीमय, 2. शब्दमय इनमें से शब्द भी ध्वनी ही है। विशिष्ट ध्वनी को विशिष्ट ग्रंथों से युक्त कर देने पर उन ध्वनियों के समूहों से विशिष्ट अर्थों की अभिव्यक्ति होती है और इन्हीं ध्वनि समूहों को हम शब्द या पद कहते हैं। शब्द और पद सीमित निश्चित अर्थ को अभिव्यक्त करते हैं यह तो सत्य है, किन्तु यह भी निश्चित है कि अपनी ध्वनि के कारण वे ध्वनि के अपेक्षा अधिक स्थूल होते हैं। इसीलिये भाषा के शब्द निश्चित किंतु स्थूल अर्थ रखने वाले होते हैं। जब तक शब्द के साथ उसके अर्थ के अनुकूल ध्वनि याने उच्चारण का प्रयोग न हो तो तब तक शब्द का अर्थ और अर्थ से भी कहीं अधिक भाव या अभिप्राय स्पष्ट नहीं हो पाता। इसलिए भाषा अर्थ के लिए ध्वनि पर आश्रित है और ध्वनि अर्थ स्पष्टतता के लिए भाषा का आश्रय चाहती है। शब्द मय वाणी या भाषा का मुखर कलात्मक स्वरूप 'काव्य' है और ध्वनि का सुन्दरतम कलात्मक स्वरूप 'संगीत है'। काव्य और संगीत इसलिये एक दूसरे के परिपूरक और सहायक होते हैं। काव्य और संगीत सरस्वती के दो हाथों की याने दो पक्षों की अभिव्यंजना करते हैं। अभिप्राय यह है कि दोनों का सहअस्तित्व है और दोनों एक दूसरे के बिना अपूर्ण है।

'काव्य और संगीत' कि अन्योन्याश्रित भाव की परम्परा

भारतीय परम्परा में काव्य और संगीत के इस पारस्परिक संबंध को आरंभ से ही स्वीकृत किया गया है। वेदों का स्वरूप काव्यमय है, किंतु वेदों का प्रत्यक्ष व्यवहार हमेशा पाठ्य और गेय रूप में होता रहा है। वेद का पाठ्य भी अपने आपमें संगीत मय रहा है। सामवेद ऋग्वेद का ही मूल वेद है, गेय स्वरूप है। वैदिक काल में काव्य और संगीत अनिवार्य रूप से एक दूसरे से संबंधित रहे। आगे जब संगीत कला का विकास हुआ तब भी संगीत हमेशा काव्य मूलक रहा है। 'संगीत' में 'गीत' की प्रधानता बताई गई है। स्वर ताल और पद से युक्त रचना को गीत कहा गया है। अत: स्पष्ट है, कि गीत काव्य ही है और संगीत काव्य का स्वर और ताल मय रूप है। वाद्य और नृत्य को गीत के आश्रित कहने का अर्थ यह है कि वे काव्य के अभाव में अपने आपमें अपूर्ण है और स्वतंत्र नहीं है। संगीत के विकास में जाति गान भी काव्यगान रहा है। इसका प्रमाण यह है कि ग्रंथकारों ने प्रत्येक जाति के रस और गीतियों का वर्णन किया है। रस और गीति मूलत: दृश्य काव्य (नाटक) के विषय हैं। जातियों के अनतर जब राग गायन प्रचार में आया, तब भी संगीत में काव्य अनिवार्य रूप से राग से संबंध तत्व रहा। इसका प्रमाण यह है कि, प्राय: सभी ग्रंथों में राग के लक्षणों को बताते हुए गीत शब्द का प्रयोग किया गया है।

राग गायन में ध्रुवपद परम्परा में भी काव्य और संगीत का घनिष्ठ संबंध रहा आया है। ध्रुवपद का अर्थ ही यह है - जिसमें 'पदध्रुव' याने स्थायी हो ध्रुवपदों में जो काव्य दिखाई देता है वह अपने आपमें श्रेष्ठ काव्य के नियमों और स्वरूप से युक्त प्रतीत होता है।

ध्रुवपद परम्परा में आगे जाकर काव्य और संगीत का संबंध कुछ कम होता हुआ दिखाई देता है। जो आगे ख्याल शैली तक आते आते काफी टूटा हुआ मालूम होता है इस दुर्भाग्य का मूल कारण यह है, कि जिस युग में काव्य और संगीत एक दूसरे से बिछुड़ने शुरू हुए उस युग में कलाकार पढ़े लिखे और भाषा ज्ञानी नहीं रह गये थे। अनपढ़ कलाकार गाने के लिये बस यूं ही काम चलाऊ शब्द योजना रच लेते थे जिसे उत्तम भाषा नहीं कहा जा सकता। क्योंकि ग्रंथों में वाग्मे कारों के जो लक्षण बताये गये हैं। उसमें संगीत के साथ ही गुण काव्य-संबंधी भी हैं। ऐसे रचनाकारों को वाग्गेयकार न कहकर धातु कार कहा गया है। और अधम कोटि का बनाया गया है।

आजकल संगीत के संबंध में यह विचार भी फैल रहा है कि संगीत केवल स्वरों और लयों की कला है। उसमें शब्द का स्थान कतई अनिवार्य नहीं बल्कि गौण या सहायक मात्र है। कुछ लोग तो संगीत में शब्दों के अस्तित्व को पूर्णत: नकारते हैं। जब शब्द के प्रति यह धारणा है तब संगीत में काव्य था तो कोई स्थान ही नहीं माना जावेगा। वह धारणा कुछ अंशों में ठीक भी कही जा सकती है। किंतु बहुलांश में भ्रामक है इसमें संदेह नहीं। जैसी गायकी आज प्रचलित है उसके हिसाब से तो यह विचार काफी ठीक प्रतीत होता है; किन्तु मूल प्रश्न यह है कि आज की गायकी खुद ही सही रास्ते पर है ? वाद्य संगीत की बात छोड़ दें, कंठ संगीत में तो सिर्फ आकार या स्वर गान से काम चल ही नहीं सकता कंठ शब्द के उच्चारण में कहीं ज्यादा अभ्यस्त होता है, क्योंकि बचपन से ही हम भाषा बोलते हैं इसलिये गायन में शब्दों के प्रयोग की प्रवृत्ति स्वाभाविक ही है। कक्षा में सुन्दरतम का प्रस्तुतिकरण लक्ष्य होता है। जब राग और ताल का सुन्दरतम रूप प्रस्तुत करता है, तब शब्द का प्रयोग काम चलाऊ ढंग से क्यों होना चाहिये। यदि शब्द व भाषा का श्रेष्ठतम रूप काव्य-संगीत के साथ जोड़ा जावे तो क्या राग और ताल का सौंदर्य और संगीत गत भावमिव्यंजना अधिक रंजक अधिक सुग्राह्य नहीं हो जावेगी।

छन्द और ताल

संगीत में ताल और काव्य में छन्द ये दोनों एक जैसा ही स्थान और महत्व रखते हैं। स्वरों की गति और लगानारता को सीमित करने के लिए साधन ताल है। ताल के अभाव में संगीत अनियंत्रित और उत् श्रृंखल हो जाता है इसलिये ताल को संगीत का तल या आधार या शैय्या कहा गया है। कविता में छंद की भी ठीक यही स्थिति है। वास्तव में छंद के कारण ही कविता का स्वरूप कविता बनता है। कविता के स्वरूप की रचना या बंदिश छंद के कारण ही बन पाती है। जिस प्रकार मात्राओं और बोलों के विशेष समूह को संगीत की भाषा में ताल कहा जाता है। ठीक उसी प्रकार साहित्य में भी मात्राओं व वर्णों के विशेष समूह को छंद कहा जाता है। छंद का स्वरूप चरणों, वर्णों, मात्राओं, गति और पति से बनता है। इन शब्दों का संबंध ताल में दिखाई देता है। जैसे छंद वृत्त के तत्व होते हैं, वैसे ही ताल में खण्ड या अंग होते हैं। छंद में वर्णों से तात्पर्य है। अक्षर या अक्षर समूह ताल में बोल यही महत्व रखते हैं। छंद में मात्रायें समय गणना का साधन होती हैं और छंद के पूर्ण स्वरूप को मात्राओं के योग से बनाया जाता है। ठीक इसी प्रकार ताल की मात्रायें काल गणना और काल स्वरूप निर्धारण का साधन होती है 'यति' अर्थात प्रवाह छंद का प्राण है। ताल का प्राण 'लय' है। छंद में उच्चारण का प्रवाह और उतार चढ़ाव 'गति' कहलाता है। ताल में बोलों के माध्यम से लय का उतार चढ़ाव 'जरब' कहलाता है।

छंदों के भेद - मुख्यत: : छंद दो प्रकार के होते हैं - 1. मात्रिक छंद : वे छंद जो मात्राओं की गणना के अनुसार बनते हैं। 2. वर्णिक छंद - वे छंद जो वर्णों या अक्षरों की विशेषतानुसार बनते हैं। जहां तक संगीत का प्रश्न है, ताल का संबंध केवल मात्रिक छंदों से आता है वर्णिक छंदों से नहीं।

■

यादें... डॉ. अरविंद विष्णु जोशी

डॉ. अरविंद जोशी के संगीत की तीन पीढ़ी का साक्षी हूँ

– पद्मश्री डॉ. अरुण दाबके

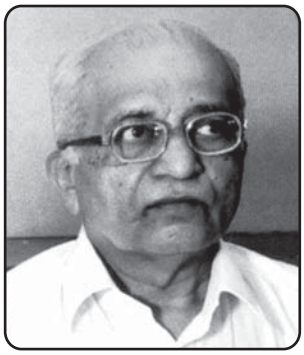

आज स्व. अरविंद जोशी के ऊपर लिखने का अवसर आया तो मुझे एकाएक इस परिवार के साथ पुराने संबंध याद आने लगे। मेरी दोनों लड़कियों ने भी अपने जीवन में संगीत–नृत्य को स्थान दिया तो इसके पीछे मैं ऐसा मानता हूँ कि इस परिवार के साथ मेरे आत्मीय संबंध का होना भी एक कारण हो सकता है।

मुझे इस परिवार के साथ तीन पीढ़ियों को देखने का अवसर मिला है। स्वर्गीय पंडित विष्णु कृष्ण जोशी जब यहां आए तो यहां संगीत कहीं नहीं था। उन्होंने अपनी मेहनत से इस स्थान पर संगीत का बड़ा केन्द्र बना दिया। आज नई पीढ़ी संगीत को समझ रही है तो उसके पीछे 'श्रीराम संगीत महाविद्यालय' का योगदान हम भूल नहीं सकते। जोशी जी के भाई को भी मैंने करीब से देखा। बाद में दूसरी पीढ़ी से परिचय हुआ। यानी स्वर्गीय अरविंद जोशी और अब उनका चिरंजीव अनिरूद्ध जोशी। मुझे एक बात अच्छी लगती है कि संगीत के संस्कार इस परिवार में पीढ़ी दर पीढ़ी बढ़ते चले जा रहे हैं। और कभी इस परिवार ने धन के पीछे भागने की कोशिश नहीं की। अब यह संस्कार अनिरूद्ध में भी उसी तरह से आए हैं ऐसा मैं मानता हूँ।

जोशी परिवार की अगली पीढ़ी में स्वर्गीय अरविंद जोशी जो इस परिवार के एक महत्वपूर्ण व्यक्ति रहें उनको अपने पूर्वजों से विनम्रता और संस्कार की धरोहर प्राप्त हुई है। वे लाभ रहित काम करने वालों में से हैं। यह बात मैं इसीलिये कह सकता हूँ क्योंकि मैं उन्हें जानता था। शास्त्रीय संगीत की सेवा में वे निरंतर रमे हुए रहे। उनको शास्त्र का भी भरा पूरा ज्ञान था और देश में अच्छा सितार बजाने वालों में उनका अपना एक विशेष स्थान रहा। मैं दो बार शासकीय सेवा के कारण भोपाल में पदस्थ था। उस समय उनका और मेरा संबंध कुछ और ज्यादा मजबूत हुआ। अब जोशी परिवार की अगली पीढ़ी और भी ज्यादा अच्छी हो गई है इसका कारण है पीढ़ी दर पीढ़ी उनको मिलने वाला संस्कार दादा–पिता के आशीर्वाद का ही यह प्रतिफल था कि अनिरूद्ध ने कम समय में ही राष्ट्रीय स्तर के सितार वादक के रूप में अपनी पहचान बना ली है जो इस परिवार के संस्कार और पुण्य कर्मों का फल ही मैं इस प्रकार से इसको मानता हूँ कि अब मैं चिरंजीव अनिरूद्ध को शुभकामनाएं दे रहा हूँ वो इस परिवार की धरोहर को आगे ले जाएँ।

सादर!

■

सहृदय कलाकार पं. अरविंद जोशी

–पद्मश्री उमाकान्त गुन्देचा, वरिष्ठ ध्रुपद गायक

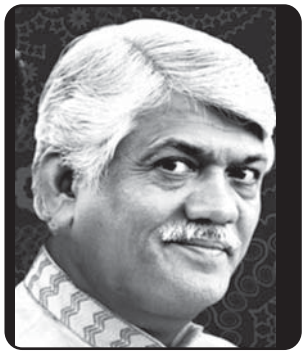

पंडित अरविंद जोशी जिन्हें हम प्यार से दादा कहते थे सज्जनता की प्रतिमूर्ति थे। हम जब 1981 में भोपाल आये तो पंडित किरण देशपांडे ने उनसे हमारा परिचय करवाया। पता चला वे रायपुर के पंडित विष्णु कृष्ण जोशी के सुपुत्र है। जिन्हें हम पहले से जानते थे दर असल पं. विष्णु कृष्ण जोशी जी हमारी बी. म्यूज की परीक्षा लेने के लिए उज्जैन आए थे। अरविन्द दादा को संगीत विरासत में मिला सितार में वे उस्ताद विलायत खाँ सा साज बजाते थे। उनका सितार वादन अत्यंत सुरीला व रसीला था। एम.एल.बी। कॉलेज में संगीत के प्रोफेसर होने की वजह से शास्त्र व प्रदर्शन दोनों का उनके वादन में खूबसूरत सामंजस्य था। वे बहुत कम बोलते थे तथा अंतर्मुखी कलाकार थे। सहजता व सरलता उनके व्यक्तित्व की विशेषता थी। हमने पंडित किरण देशपांडे और दादा ने 1984–85 में आसाम की यात्रा साथ में की थी, दरअसल प्रादेशिक कला एवं संस्कृति के आदान–प्रदान योजना के तहत सांस्कृतिक दल मध्यप्रदेश से आसाम गया था जिसमें प्रभात दा गांगुली का 'लिटिल बेले ग्रुप' भी साथ गया था। उस समय दादा के व्यक्तित्व को और भी करीब से जानने का मौका मिला और तभी से उनसे जो कनिष्ठता बढ़ी वह अंतिम समय तक कायम रही। दादा उत्कृष्ट कलाकार होने के साथ–साथ एक उत्तम पिता व गुरू भी थे उन्होंने अपने सुपुत्र अनिरूद्ध जोशी को सितार वादन की तालीम दी जो आज युवा सितार वादकों में अपनी पहचान बना चुके है। दादा शांत स्वभाव के थे एवं हमेशा दिखावे से दूर रहते थे। उस्ताद विलायत खां के वे अनन्य प्रशंसक थे। आज दादा हमारे बीच नहीं है मगर वो स्नेहमयी मुस्कान और उनके साथ बिताया समय बहुत याद आता है। उनकी स्मृति को सादर नमन।

■

यादें... डॉ. अरविंद विष्णु जोशी

यादें

डॉ. अरविंद जोशी अंतर्मुखी कलाकार थे

-पं. किरण देशपांडे, वरिष्ठ तबला वादक गुरू

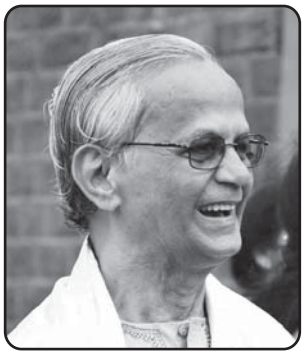

कोई 50-55 साल पहले की बात होगी मैं शायद खैरागढ़ वि.वि. की कोई परीक्षा लेने रायपुर गया था। मेरे पिताजी और अण्णा (पं. विष्णु कृष्ण जोशी संस्थापक प्राचार्य, श्रीराम संगीत महाविद्यालय रायपुर) के घनिष्ठ मैत्री संबंध होने के कारण मैं उन्हीं के घर पर रूका था, गर्मी के दिन थे। दोपहर खाने के बाद मैं विश्राम कर रहा था, तब सितार बजने की आवाज आयी। यमन कल्याण राग की बड़े सुरीले आलाप के साथ बढ़त हो रही। बीच में मुखड़ा भी आ रहा था पर संगत में तबला नहीं था। मुखड़ा उस्ताद विलायम खाँ की बजायी गत का था मैं विस्मय चकित था पर आनंद मग्न भी। सायंकाल में मैंने जब आदरणीय अण्णा से पूछा तब उन्होंने बताया कि उनका बड़ा बेटा 'बाबा' सितार का रियाज कर रहा था वह इतना संकोची था कि उस प्रवास में मेरा उनसे सामना ही नहीं हो पाया। कई सालों के बाद महाविद्यालय में हम दोनों सहायक प्राध्यापक के रूप में सहयोगी बनें, तब भी उनके संकोची स्वभाव में बहुत अंतर नहीं आया। उनका मित्र परिवार छोटा था। अंगुलियों पर गिने जा सकने वाले मित्रों में प्रो. तिवारी, प्रो. रमेश खोत, प्रो. जी.डी. सिंह के नाम लिये जा सकते हैं जो उनके घनिष्ठ थे लगभग 'किचन कैबिनेट' की तरह मुझे अरविंद अपने बड़े भाई जैसा ही सम्मान देते थे।

मैंने जब से जाना अरविंद अंतर्मुखी कलाकार थे। खुद जब सितार बजाते थे तब पहले अपना साज बहुत अच्छा मिलाते थे। दूसरे सितारवादक या अन्य कलाकारों का साज जब ठीक मिला नहीं होता तो अरविंद असहज हो जाते थे बल्कि उस संगीत सभा में उनका मन ही नहीं लगता था। आलापी में उनका मन रमता था। रागाकृति उनके सामने प्रगट होने के बाद श्रुति कण स्वर मींड, खटके, मुरकियों से उस राग में रंग भर देते थे। वैविध्यपूर्ण जोड़ और वर्तमान झोक के साथ उनके वादन का पूर्वरंग समाप्त होता था। Metabolism की कुछ समस्या के कारण अरविंद के हाथों में बहुत पसीना आता था। तीव्र गति का झाला अथवा तान बजाते समय अनामिका से कहीं मिजरान फिसल जाये इसका उन्हें डर लगा रहता था। इसी वजह से अपनी प्रतिभा से वादन के उस रंग में वे न्याय नहीं कर पाते थे। मसीत रवानी हो या रजाश्वानी गत वो बंदिश का परंपरागत रूप ही प्रस्तुत करते थे और राग की शास्त्रीयता को कलात्मकता में बजाते थे बंदिश के प्रारंभिक मध्य और अंतरा इन तीनों हिस्सों को वो अच्छी तरह प्रदर्शित करते थे। सुबह के रागों में तोड़ी लहित भैरव और श्याम के रागों में यमन शुद्ध कल्याण मारक यूरिया इन रागों का विस्तार वो घंटों तक कर सकते थे अधिक न बजाये जाने वाले बिलाबल के प्रकार मम्हार के प्रकार इन रागों को भी वे साधिकार बजाते थे।

उनके सहज संभाषण में अपने गुरु स्व. पं. बिमलेन्दु मुखर्जी सहाब और पिता पं. विष्णु कृष्ण जोशी के प्रति नितांत आदर प्रगट होता था। वो स्वयं निष्णात गुरू थे महाविद्यालय में सितार पर पहली बार हाथ रखने वाली छात्राओं को वो उसी तन्मयता से सिखाते थे। जैसे अपने प्रतिभावान पुत्र चि. अनिरूद्ध को अरविंद संकोची और मितभाषी थे। मैंने शायद ही उन्हें किसी को 'जोक' सुनाते देखा होगा पर वे विनोद का निश्चल आनंद लेते थे किसी भी बड़े या छोटे कलाकार की उसके सामने बहुत और दिखावटी तारीफ नहीं करते थे।

ऊंचे कद के साँवले पर आकर्षक चेहरे मोहरे के श्री अरविंद को सेवानिवृत्ति के बाद कुछ ही समय में अपने प्रिय छोटे भाई रमाकांत का असामयिक निधन का कुछ ऐसा आघात लगा जिससे वो मानसिक और शारीरिक रूप से हिल गये और अंत तक संवर नहीं पाये लम्बी बीमारी के बार उन्होंने ऐहिक जीवन से बिदा ली। ■

मेरी नजर में डॉ. अरविंद जोशी जी...

-लता मुंशी, वरिष्ठ भरतनाट्यम नृत्यांगना

अरविन्द जोशी जी एक सुन्दर सौम्य व्यक्ति थे। मेरी उनसे मुलाकात शासकीय महारानी लक्ष्मी बाई कन्या महाविद्यालय में हुई। जोशी जी महाविद्यालय में सितार के प्राध्यापक थे। चूंकि नृत्य एवं संगीत विभाग पास-पास थे तो लगभग रोज ही उनसे मुलाकात होती, उनके साथ बैठकें होती बातचीत होती जिसमें संगीत महाविद्यालय एवं अन्य विषयों में चर्चा होती थी। उस समय गायन में पं. किरण देशपाण्डे जी थे। मैंने हमेशा महसूस किया था कि जोशी जी किसी भी बारे में बहुत ज्यादा नहीं बोलते थे वे हमेशा दूसरों को सुनते रहते थे। चेहरे पर एक सौम्य मुस्कान हमेशा रहती थी और यही मुस्कान उनके व्यक्तित्व की खास पहचान थी। लगभग 20-25 वर्षों का साथ रहा उनसे लेकिन मैंने उन्हें इतने वर्षों में कभी भी गुस्से में या आवेश में नहीं देखा।

कभी-कभी मुझे आश्चर्य भी होता था कि क्या उन्हें कभी गुस्सा नहीं आता ? कोई इतना शांत कैसे रह सकता है ? लेकिन शायद यही शांत चित्त एक साधक की पहचान होती है वे सच्चे अर्थों में एक संगीत साधक थे। वे एक बहुत अच्छे सितार वादक थे और उन्होंने अपनी इस परंपरा को अपने बेटे अनिरूद्ध को सौंपी है। उनका पूरा समय या तो स्वयं की साधना में बीतता था, या फिर बेटे को संगीत की शिक्षा देने पर। उनका जीवन बहुत सादा एवं पारंपरिक था। लेकिन बस दु:ख इस बात का है कि वो बहुत जल्दी हम सबको छोड़कर चले गये।

वे एक संत पुरुष ही थे। ■

यादें... डॉ. अरविंद विष्णु जोशी

यादें

डॉ. अरविंद जोशी संगीत के संस्कार विरासत में मिले

-विश्वास केलकर

जब मुझे यह जानकारी मिली कि आदरणीय अरविन्द जोशी जी पर केंद्रित एक पत्रिका शीघ्र प्रकाशित होने जा रही है जिसमें संगीत के क्षेत्र में उनके योगदान को दर्शाया जाएगा तथा इस हेतु मुझे भी आदरणीय अरविंद दादा पर अपने कुछ संस्मरण भेजने हैं, मैं उनकी मधुर स्मृतियों में खो गया।

मुझे अच्छी तरह से स्मरण है कि रायपुर के बूढ़ापारा में हमारे घर के निकट ही परम श्रद्धेय पंडित विष्णु कृष्ण जी जोशी (अरविंद दादा के पिताजी) का निवास स्थान था। हमारे घर के ठीक सामने की गली प्राथमिक बालिका विद्यालय (लड़की स्कूल) की गली के नाम से जानी जाती थी, वहां से पंडित जी का निवास बमुश्किल से सवा सौ मीटर की दूरी पर था परम पूज्य पिताजी और चाचा (जिन्हें हम 'दिगु काका' कहा करते थे) मोठे मास्तर यानि पंडित विष्णु जी के शिष्य थे, इसलिये उनके प्रति हमारे मन में बचपन से ही अत्यंत आदर और श्रद्धा का भाव था। जहां तक मुझे याद है कि अरविंद दादा अत्यंत विनम्र, शालीन, धीर और गंभीर व्यक्ति थे। चूंकि संगीत के प्रति मेरा लगाव बचपन से ही था और मुझे गाना बहुत प्रिय था, इसलिए मैं चाचा जी अर्थात मेरे दिगु काका से अक्सर चिंतन मनन और गाना सुनने उनके घर पर बैठा करता था। हमारा घर व चाचा जी का घर पास-पास लगा हुआ था। अरविंद दादा, काका के घर आते थे उन्हें (दिगु काका) दिगम्बर मास्साब से अत्यंत स्नेह था वे आपस में संगीत के विषय में विमर्श भी किया करते थे तथा मैं उनको सुना करता था। मुझे यह भी याद है कि आदरणीय श्री गुणवंत व्यास जी (रायपुर के गुणी संगीतज्ञ) भी इन गोष्ठियों में वक्ता के रूप में होते थे। रायपुर में अरविंद दादा के सितार वादन को प्रत्यक्ष रूप से सुनने का मौका मुझे तीन-चार बार ही मिल सका लेकिन रेडियो अर्थात आकाशवाणी पर मैंने उन्हें कई बार सुना था, अरविंद दादा जब भी रायपुर आते थे तो दिगम्बर मास्साब के घर जरूर जाते थे। 1980 में वे इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय खैरागढ़ में प्राध्यापक हो गए। वर्ष 1985 के फरवरी माह में मुझे केंद्रीय विद्यालय में संगीत शिक्षक, पद के साक्षात्कार हेतु अवसर प्राप्त हुआ। आदरणीय माताश्री व पिताश्री की आज्ञानुसार मैं भोपाल में सर्वप्रथम आदरणीय श्री अरविंद दादा से भेंट करने उनके टी.टी. नगर भोपाल स्थित घर पर पहुंचा। वे बहुत प्रसन्न हुए उसके पश्चात उन्होंने मुझे सुना व मार्गदर्शन प्रदान करते हुए, मेरा उत्साहवर्धन किया।

मुझे अच्छी तरह से स्मरण है कि जब मैं दादा से बातचीज कर रहा था उसी समय वहिनी (श्रीमती अर्चना जोशी) ने जलपान का प्रबंध कर अतिथि सत्कार में कोई कमी नहीं छोड़ी। जोशी परिवार अतिथि सत्कार में एक संस्कारित परिवार था और श्रीमती अर्चना जोशी हर परिस्थिति में सत्कार को महत्व देती थीं। वहिनी बहुत शालीन, स्नेहिल और मृदु स्वभाव की महिला है और उन्हें अरविंद दादा का हर परिस्थितियों में आखिरी समय तक साथ निभाया और आजीवन उनके सेवा की। वहिनी के इसी सेवाभाव के कारण अरविंद दादा ने संगीत के क्षेत्र में अपना उचित स्थाना बनाया। ऐसा मानना अनुचित नहीं होगा। उस रोज जब मैंने उनसे वापस जाने की अनुमति लेने हेतु उनके चरण स्पर्श किए, मुझे स्मरण है कि उन्होंने आशीर्वाद देते हुए कहा था, कि तुम्हारा चयन हो जाएगा और संयोग कि उनका वह आशीर्वाद फलीभूत हुआ।

आदरणीय अरविंद दादा पर संस्मरण लिखे हुए मुझे उनके पिता और महान संगीतज्ञ पंडित विष्णु कृष्ण जोशी जी के बारे में बताना भी आवश्यक लगता है कि वे ग्वालियर घराने के एक प्रतिष्ठित गायक थे और ऐसा माना जाता है कि रायपुर (छत्तीसगढ़) में शास्त्रीय संगीत को स्थापित करने उसे प्रचारित प्रसारित करने में उनका अहम योगदान है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि आदरणीय अरविंद दादा को संगीत के संस्कार विरासत में ही प्राप्त हुए थे। परम श्रद्धेय अरविंद दादा की सितार के प्रति अभिरूचि को देखकर उनके पिताजी ने उन्हें परम पूज्य बिमलेन्दु मुखर्जी साहब के पास सितार सीखने भेजा। सभी जानते हैं कि, उन दिनों पंडित मुखर्जी रायपुर के पास भिलाई में निवास करते थे। ऐसे महान गुरू के शिष्य बनकर अरविंद दादा ने बहुत समर्पित भाव से गुरू से इमदादखानी वादन शैली को सीखा और आत्मसात किया, जिसे उनके वादन शैली में स्पष्ट रूप से अनुभव किया जा सकता है।

जहां तक अरविंद दादा का रागों के प्रस्तुतीकरण का सवाल है, उनके प्रस्तुतिकरण में राग की प्रस्तुति विलक्षण हुआ करती थी इसमें उनका वाद्य और इमदादखानी बाज पर पूर्णाधिकार परिलक्षित होता था। आपके राग प्रस्तुतिकरण की गहराई तथा राग का विस्तार, जिसमें, आलापचारी समुधुर मींड जमजमा व मुर्की आदि संतुलित प्रयोग आपको समकालीन श्रेष्ठतम कलाकारों की श्रेणी में खड़ा करती है। संगीत के क्षेत्र में अनेक नामी संगीतज्ञ व कलाकार जिनमें से कुछ परम पूज्य बिमलेंदु मुखर्जी साहब के शिष्य भी हैं, ने कई बार मुझसे बातचीत में आपकी आलापचारी और राग विस्तार के संबंध में अपने श्रद्धा भाव प्रकट किए, ऐसा मैंने पाया।

अरविंद दादा के सुयोग्य पुत्र श्री अनिरूद्ध जोशी ने भी परम पूज्य मुखर्जी साहब से ही सितार वादन की शिक्षा ग्रहण की तथा आज अनिरूद्ध जिस स्थान पर है, मैं कह सकता हूं कि, निश्चित ही यह दादा के उचित मार्गदर्शन और आशीर्वाद के कारण ही, वे इस स्थान तक पहुंचे हैं। हमें उम्मीद है कि, अनिरूद्ध इस क्षेत्र में आदरणीय अरविंद दादा की विरासत को और अधिक ऊंचाइयां प्रदान कर उनका नाम रोशन करेंगे।

आदरणीय अरविंद दादा को मैं अपने श्रद्धासुमन अर्पित करता हूँ।

-असिस्टेंड डायरेक्टर
प्रोग्राम ऑल इण्डिया रेडियो, भोपाल

■

यादें... डॉ. अरविंद विष्णु जोशी

यादें

मेरे पिता मेरे आदर्श

– अवंतिका जोशी

"My father didn't tell me how to live.
He lived, and let me watch him to do it."

ये पंक्तियां मेरे दादाजी पं. विष्णु कृष्ण जोशी जिन्हें हम सब 'अण्णा' के नाम से संबोधित करते थे और मेरे पिताजी को हम सब 'बाबा' के नाम से संबोधित करते थे। उनके व्यक्तित्व से मेल खाती हैं।

मेरा परम सौभाग्य है कि मेरा बचपन अण्णा के सानिध्य में बीता, वो मुझसे बहुत प्रेम करते थे, मेरे जन्म के समय दादा-दादी बहुत खुश हुए थे, क्योंकि उन्हें एक बड़ी बेटी और फिर चार बेटे थे। बेटी को भी दोनों बेटे ही थे। कई सालों पश्चात मेरा जन्म हुआ, तो हमारे घर पर उत्सव का माहौल था। अण्णा का व्यक्तित्व बिल्कुल नारियल की तरह था बाहर से सख्त दिखते थे पर असल में हृदय बहुत ही सौम्य था। जब बाबा की नियुक्ति भोपाल में हुई तो अण्णा-आजी (दादा-दादी) भोपाल में रहते ताकि मुझे उन दोनों का ज्यादा से ज्यादा सानिध्य प्राप्त हो। मुझे याद आता है और माँ भी बताती है कि अण्णा रविवार का उपवास करते थे तो शाम को मूंगफली खाते थे। शाम को छोटे मूंगफली लेकर आते तो अण्णा मुझे अपनी गोद में बिठाकर बड़े प्रेम से खिलाते और फिर खुद खाते। अण्णा भले ही विद्यालय के काम में कितने भी व्यस्त रहे पर अनिरूद्ध और मेरे लिए समय निकाल ही लेते थे। मां ने अपनी संगीत की पढ़ाई अण्णा-आजी के पूर्ण सहयोग से पूरी की। अण्णा जब माँ को रियाज करवाते तब दादी खाने की तैयारी करती और बाबा हम दोनों को लेकर पढ़ाई करवाते या फिर हमारे साथ खेलते। यह इस बात का प्रमाण है कि अगर परिवार का सहयोग हो तो सभी चीजे आराम से संभल जाती हैं। आज भी वो कैसेट हमने संभालकर रखी है जिसमें बाबा ने अनिरूद्ध और मुझसे जो अंग्रेजी और हिंदी में कविताएं बुलवाई थी। आज भी जब वो कैसेट सुनते है तो अनिरूद्ध और मैं भावुक हो जाते हैं और उन दिनों को बहुत याद करते हैं।

माँ बताती हैं कि मेरे बचपन में बाबा जब रियाज करते थे तो मैं नृत्य किया करती थी, जिसके कारण रात को मेरे पैर बहुत दुखते थे। तो मैं रोतीं तो बाबा मेरे पैर दबाते थे और तेल से मालिश भी करते तब जाकर मुझे नींद आती। बाबा ने मुझे कपड़ों को इस्त्री करना, चाय बनाना सिखाया हालांकि चाय हर कोई बना लेता है पर चाय बनाने का व्यवस्थित तरीका जिसके कारण सारे Flavours उसमें उतरे वह तरीका बहुत ही अनूठा था। जब मैं Gradvation कर रही थी तब एक दिन यूं ही मैंने मजाक में बाबा से पूछा बाबा मेरी शादी हो जाएगी तो आप ताजे दूध की चाय बनाकर पिओगे ? तो बाबा ने थोड़ा रूककर जवाब दिया ? जब तू आएगी तभी पीऊंगा।'

अण्णा और बाबा दोनों के स्वभाव और व्यक्तित्व का प्रभाव मुझमें भी है। माँ और मुझे जो जानते हैं और बाबा के मित्रों से भी मुझे सुनने मिला है वे दोनों शांत मितभाषी दोनों के अक्षर बहुत सुंदर और काम करने का तरीका बहुत ही सुनियोजित था। बाबा ने जब अपनी पी.एच.डी. की पढ़ाई शुरु की तभी से मैं उन्हें अपने काम को और पढ़ाई को किस तरह से दोनों में संतुलन बिठाते हुए देखा है। अपने विषय को लेकर वे कितने सजग थे, उस विषय का अध्ययन फिर उसके नोट्स बनाना और उस विषय पर अपने गुरु के चर्चा करना ताकि विषय का गहराई से अध्ययन हो सके। अगर विषय में या अन्य किसी बात में कोई जटिलता है तो उसका निवारण कैसे करना हैं, ये मैंने उन्हीं से सीखा। हम अक्सर समस्याओं को अपने ऊपर हावी होने देते हैं ! और समाधान कैसे होगा ये सोचते ही नहीं पर बाबा कि सीख यही थी कि ! समस्या को तूल ही मत दो, वो अपने आप ही समाप्त हो जाएगी।

मुझे बाबा की हँसी बहुत अच्छी लगती थी, वे जब खुलकर हँसते मन प्रसन्न हो जाया करता था मानो। घर में सकारात्मक ऊर्जा का संचार हुआ हो। बाबा बहुत कम बोलते थे ! पर जो भी कहते वो हम दोनों के हित के लिए कहते। उन्होंने या माँ ने हमें किसी बात के लिए रोका नहीं बस माँ-बाबा का यही कहना था, जो भी करो मन से करो। आज अनिरूद्ध और मैं जहां है। ये इन दोनों के मेहनत और त्याग की वजह से है।

बाबा के सेवानिवृत्त होने के बाद बाबा, माँ और मैं रोज सुबह या शाम एक घंटा बैठकर पुरानी बंदिशे गाते थे। बड़ा आनंद मिलता था। कभी-कभी एक घंटे से ऊपर भी हो जाता समय का पता नहीं चलता। हम तीनों बंदिशों के साथ-साथ श्रीराम रक्षा स्त्रोत, श्री हनुमान चालीसा, श्रीगायत्री मंत्र को भी गाते थे। जिस दिन बाबा हम सब को छोड़कर गये उस दिन भी शाम को मैंने उनको सभी बंदिशे सुनाई और रोज की तरह कहा बाबा मि येते (बाबा में आती हूं) तो उनका मेरे लिए आखरी शब्द था हो (ठीक है)।

बाबा आज हमारे बीच नहीं है, मैं ऐसा नहीं मानती, हां तन से न सही मन से वे सदैव हमारे साथ रहेंगे।

सुपुत्री, अधिवक्ता, मो. 9479356927

यादें

पिता ही मेरे आदर्श और गुरू भी

– अनिरूद्ध जोशी

सांगीतिक परिवार में जन्में डॉ. अरविन्द जोशी मेरे पिता जिन्हें मैं बाबा कहता था। अत्यंत शांत स्वभाव के व्यक्ति थे। संगीत उन्हें विरासत में मिला था। मेरे दादा जी जो ग्वालियर घराने के मूर्धन्य गायक थे। उन्होंने छत्तीसगढ़ प्रांत में शास्त्रीय संगीत का प्रचार प्रसार का अति महत्पूर्ण कार्य किया। बाबा उनके ज्येष्ठ सुपुत्र थे, विद्या अर्जन और अभ्यास उन्हें बहुत प्रिय था। जिसका हमारे यहां पुस्तकों का कोश देख कर अंदाज लगाया जा सकता है। बाबा बहुत कम बोलते थे, पर जो भी कहते उसका प्रभाव दीर्घकाल तक रहता और अभी भी है। मुझे जब सितार की शिक्षा देते थे तब भी वे बड़े प्रेम से सिखाते थे पर राग स्वरूप तथा बेसुरा वादन उन्हें थोड़ा विचलित कर देता था, पर फिर भी वे अपना आपा नहीं खोते थे। वाद्य कितना अच्छा मिलाया जा सकता है तथा उसका तंत्र का एक उत्तम उदाहरण मेरे बाबा के सितार वादन की विशेषता थी,

बिना साज को मिलाये न तो उन्होंने कभी वादन किया और न ही कभी मुझे करने दिया। वे अत्यंत सुरीले थे रागो के प्रति उनकी सोच भी सदैव नए मार्ग दिखाने वाली थी कोई भी राग हो उसका क्रमिक तथा सिलसिलेदार बढत कैसे होती है ये बाबा ने मुझे सिखाया। इन सभी गुणों के साथ-साथ वे अनुशासन प्रिय भी थे, उनकी दिनचर्या प्रात:काल 4 बजे उठना योग करना उसके बाद सितार बजाना, फिर महाविद्यालय के लिये घर से निकलना, संध्याकाल में मुझे सितार सिखाते थे, और यही कारण था कि उनसे मैं थोड़ा भयभीत रहता था। यद्यपि उन्होंने कभी भी मुझ पर हाथ नहीं उठाया या जोर से डांटा, उनकी इसी शांत रहने के स्वभाव से मैं डरता था। ऐसा नहीं था कि बाबा हमेशा ही गंभीर रहते थे। वे लोगों से आत्मीयता से मिलते व बात करते हंसी मजाक भी करते थे, अच्छा संगीत फिर चाहे वो शास्त्रीय संगीत हो ग़ज़ल हो या फिर फिल्म संगीत वे उसका आनंद लेते थे तथा घर के अन्य सदस्यों को सुनाते व जरूरत पड़ने पर समझाते भी थे। संगीत के अलावा उन्हें बैडमिंटन और क्रिकेट प्रिय थे। आज जो विद्या, मूल्य व संस्कार उन्होंने मुझे सिखाये हैं यही मेरा मार्गदर्शन कर रहे हैं, देहस्वरूप आज बाबा हमारे बीच नहीं हैं पर वे प्रतिपल मेरे साथ हैं, उनकी बताई हुई, बातें मुझे हमेशा याद आती हैं।

सुपुत्र युवा सितार वादक

In Memoriom Dr. Arvind Joshi

- Swapnil Joshi

It costs nothing to be kind. That's the lesson I learned from my uncle, Dr. Arvind Joshi, the kindest man I have ever known. I am Swapnil, his nephew, and in my uncle's memory, I write this note. In the time I spent with my uncle, I took away a lot of things. A few life lessons, a lot of memories. Uncle Arvind stood out to me in particular due to his gentle nature. Having observed the world for what it is, his gentle, open-minded, level-headed demeanor was akin to a diamond In the rough. I don't recall ever seeing him angry, or raise his voice in annoyance. Always caring and nurturing, Kind people are rare, and few can match the kind of a person that my uncle was.

Even so, his nature wasn't the only thing I admired about him. His contribution to the musical world showed his pride at what he did. Uncle Arvind always pioneered for Indian Classical Music and, by extension, art in general. A result of that was his son, Aniruddha Joshi, becoming a professional Sitar player. In spite of others' worries of a musical career being too turbulent, he encouraged his son to pursue his dreams and make

them a reality. Perhaps a culmination of who he was resulted in his children - Aniruddha and Avantika- becoming the great people that they are today. He was, indeed, a man who treasured his children above all else.

Even with a stalwart companion like his wife, Archana Joshi, standing with him, sadly, his time in this world came to an end. I hold those memories dear, and it was his ideals that I used to forge mine: never cruel, never hard-headed. Dr. Arvind Joshi has left a lasting impression on this world, and he was truly a man without a peer.

प्रो. पं. अरविंद जोशी (प्रख्यात सितार वादक) का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

-डॉ. सुनील भट्ट

प्रो. पं. अरविन्द जोशी जी का जन्म एक मध्यमवर्गीय महाराष्ट्रीयन ब्राम्हण परिवार में हुआ, साथ ही आपकी पारिवारिक सांगीतिक पृष्ठ भूमि से आपको हर समय परिवार में शास्त्रीय संगीत का माहौल प्राप्त हुआ जिसका परिणाम ये हुआ कि आपको बाल्यकाल से ही संगीत में रूचि हो गई तथा अपने पिता के कड़े अनुशासन में अपने संगीत की शिक्षा का आपने अत्यन्त ही कड़े अनुशासन में रहकर संगीत की शिक्षा दीक्षा प्राप्त हुई है। तत्पश्चात विख्यात सितार वादक पं. बिमलेन्दु मुखर्जी के सानिध्य में आपने सितार की अनेक बारीकियों को आत्मसात किया तथा देश के अनेक संगीत समारोहों में अपना सितार वादन प्रस्तुत किया आप आकाशवाणी के भी नियमित कलाकार थे। परन्तु आपका स्वभाव इतना शांत व सरल था कि आप कही से भी यह महसूस नहीं होने देते थे कि आप संगीत के क्षेत्र में अपना एक मुकाम स्थापित कर चुके हैं आप संगीत के साथ-साथ वाणिज्य से स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त की तथा अन्नामलाई विश्वविद्यालय चैन्नई से शोध कार्य कर आपको डॉ. ऑफ फिलासफी की उपाधि से विभूषित किया गया था, आपके पिता जी का कड़ा अनुशासन आपके व्यक्तित्व में स्पष्ट झलकता था, आप छात्रों को सिखाते समय भी अत्यंत शांत एवं सरल रहते थे परन्तु इसका मतलब यह नहीं कि छात्र उसका अनुचित लाभ उठा सके इस बात का वह विशेष ध्यान रखते थे। आप शास. महारानी लक्ष्मी बाई कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भोपाल में संगीत विभाग के विभागाध्यक्ष रहे तथा आप मुझसे (लेखक) से अत्यन्त प्रभावित थे। चूंकि मेरी भी पारिवारिक संगीतिक पृष्ठ भूमि होने से मुझे भी अत्यंत बड़े अनुशासन में रहने की आदत थी तथा आज भी है बस आपको यही बात बहुत अच्छी लगती थी साथ ही कर्तव्य के प्रति अनुशासित कर्तव्यनिष्ठता और ईमानदारी के कारण में पं. अरवन्दि जोशी के बेहद करीब रहा, तथा मैं पहला छात्र हूँ जिसका शोधार्थी के रूप में बरकतउल्ला विश्वविद्यालय में रजि. हुआ तथा मुझे ही प्रथम शोधार्थी तथा डॉ. ऑफ फिलासफी की उपाधि से विभूषित होने का गौरव प्राप्त हुआ। आपके परिवार में आपकी पत्नी एवं बेटी तथा बेटा भी मुझे अपने परिवार का हिस्सा मानते हैं। तथा अपनी अनेक बात (मन की) मुझसे एकांत में शेखर करते थे, उनको पूर्ण विश्वास था कि सुनील कभी इन बातों का अनुचित कदम नहीं उठायेगा उनका यही विश्वास और मेरी अपने आपसे कि गई वचन बद्धता ही है कि मैं आपके अनंत आशीर्वाद से फलीफूत हो इस मुकाम पर पहुंचा जिसे वह अनेक बार विभाग में अपने साथी महाविद्यालय के वरिष्ठ प्राध्यापक डॉ. रमेश खोत, डॉ. जी.डी. सिंह, डॉ. रामेश्वर तिवारी, डॉ. पीटा चरण, डॉ. चौकेसी एवं डॉ. सीता तिवारी, डॉ. रवि पण्डोले, डॉ. दीपा जौहरी, डॉ. शमानियाजी, डॉ. एस. बत्रा एवं अन्य के समक्ष बोलते थे कि सुनील बहुत अच्छी जगह पहुँचेगा मेरा आशीर्वाद है। यह बहुत ईमानदार तथा कर्तव्य के प्रति निष्ठावान है।

मैं डॉ. अरविन्द जोशी को अपनी तरफ से कोटी-कोटी सादर नमन करता हूँ। तथा मुझे अनेक बाद ऐसी विशेष परिस्थितियों में सही मार्गदर्शन कर उन विषम और कठिन स्थितियों से निकालने में बहुत ही सरल एवं सहज तरीके से मार्ग प्रशस्त करने में कोई कठिनाई नहीं हुई कभी-कभी मुझे आपने साथ कक्षा में बजाने के लिये आवाज लगाते थे और कहते थे। सुनील आज तुम्हारे साथ बजाते है यह मेरे लिये बहुत ही गौरव की बात होती थी कि वह मुझे बुलाते थे। मैं उनका अत्यन्त आभारी रहूँगा कि वह मुझे अपना लघु भ्राता का दर्जा देते थे तथा मेरी कभी कोई गलती बताता भी था तो वह हर बार स्पष्ट बोल देते थे कि मुझे इसकी गलती एक क्या हजार बार भी हो तो भी मैं माफ करूंगा ये उनका मुझ पर असीम स्नेह दर्शाता था तथा वह सभी लोग मुझे बोलते भी थे कि और भाई सुनील तुमने क्या जादू किया है जोशी जी पर कि वह तुम्हारे विरूद्ध कभी कुछ सुनते ही नहीं है। मैं उन सभी को सादर नमन करता और यही बोलता कि यह उनका सद्धयता का प्रमाण है यह कोई जादू नहीं है।

मैं ऐसे संगीत मनीषी पं. अरविन्द जोशी के व्यक्तित्व और कृतित्व के विषय में क्या बोलकर बता सकता हूँ। आपके बारे में कुछ भी बोलना या लिखना मेरे लिये यही बड़ा सौभाग्य है। कि मुझे जितना भी उनका सानिध्य मिला वह मेरे जीवन के अनमोल पल रहे हैं।

प्राचार्य, शा. संगीत महाविद्यालय, मैहर जिला सतना (म.प्र.)
मो. 09926767380

यादें... डॉ. अरविंद विष्णु जोशी

यादें

डॉ. अरविंद जोशी : स्वाभिमानी व्यक्तित्व

-विवेक जोशी

रिश्ते में डॉ. अरविंद मेरे बड़े भाई थे। उनके बारे में मुझे लेख लिखने का आदेश हुआ, सामान्यतया गाना-बजाना करने वाले लेखन कार्य से दूर ही भागते हैं मैं भी उनसे अलग नहीं हूँ। बहरहाल पीछे मुड़कर देखता हूं तो जबसे होश संभाला घर पर संगीत का वातावरण ही पाया, प्रात:काल (कोई 3-4 बजे) से पिताजी (पं. विष्णु कृष्ण जोशी) की संगीत साधना, इसके बाद लगभग 8.30- 9 बजे से अरविंद जी का रियाज 2 बजे तक चलता था। फिर थोड़ा विश्राम करने के उपरांत 6 लोगों का भोजन व 4 बजे ये महाविद्यालय (श्रीराम संगीत महाविद्यालय) में अध्ययन कार्य आदि, यही दिनचर्या हुआ करती थी।

एक तरह से मितभाषी उनका स्वभाव था, संगीत महाविद्यालय में भी अध्यापन के अतिरिक्त खाली समय का उपयोग अपने रियाज में ही वे देते थे, आमतौर पर खाली समय में लोग कुछ गॉपिस आदि चर्चा में मशगूल होते हैं, उनसे वे दूर ही रहते थे। व्यक्तित्व में गांभीर्य था।

कुछ घटनाएं जो मुझे याद आ रही हैं, उनमें से एक इंदिरा कला संगीत वि.वि., बैरागढ़ में व्याख्याता के पद हेतु इंटरव्यूह में मैं भी उनके साथ गया था, यह घटना सन 1979 की है, इंटरव्यूह होने के बाद दरबार हॉल में हम लोगों के रात्रि शयन की व्यवस्था थी, वहां सभी रात्रि करीब 1.00 बजे प्रो. बसंत रानडे व श्री गजानन ताड़े जी मिलने आये, व उनके द्वारा बनाये गये राग पर चर्चा होती रही, रात्रि करीब 11.30-12.00 बजे तक विस्तृत चर्चा होती रही। दूसरा प्रसंग उच्च शिक्षा विभाग के सहायक प्राध्यापक के पद हेतु पी.एस.सी के लिये इंदौर में इंटरव्यूह की है, पैनल में श्री पदमनाथ शास्त्री जी भी थे, खमाज में ठुमरी बजाने कहा गया, प्रारंभिक आलाप सुनकर शास्त्री जी ने अपने घर से टेपरिकॉर्डर मंगवाया व भाई साहब के द्वारा बजाये गये खमाज की की पूरी रिकार्डिंग की।

एक प्रसंग का जिक्र भाई साहब ने स्वयं किया था। सुप्रसिद्ध कथक नृत्यांगना विदुषी रश्मी वाजपेयी (पत्नी श्री अशोक वाजपेयी, पूर्व सचिव, म.प्र. कला परिषद, भोपाल) के कार्यक्रम में प्रो. किरण देशपांडे, प्रो. सज्जनलाल ब्रह्मभट्ट 'रसरंग', प्रो. अब्दुल लतीफ खाँ साहब (सारंगी) के साथ सितार की संगति में वे स्वयं हुआ करते थे। कोलकाता के किसी आयोजन में, कार्यक्रम के समापन के बाद सुप्रसिद्ध सरोद वादक प्रो. अमजद अली खाँ साहब स्वयं स्टेशन पर आकर भाई साहब से मिले व उनसे पिता व गुरु का नाम पूछा व सितार संगति की प्रशंसा की।

कहा जाता है कि आदमी का व्यक्तित्व उसके गाने बजाने में महकता है। डॉ. अरविंद जी के वादन के तकनीकी पक्ष को देखे तो आलाप में चैनदारी व गांभीर्य दिखता था, मींड का परफेक्शन व स्वर संगति अद्‌भुत हुआ करते थे।

घर पर रियाज के समय तबला संगति में छोटे भाई भी श्री विवेक सहयोग करते थे। रविवार या अन्य छुट्‌टी के दिनों में श्री रामाकांत जी, मुझसे बड़े भाई (बैंक अधिकारी) भी उत्तम तबला संगति करते थे। श्री विवेक की तबला संगति का जवाब नहीं वाह। उनका बायां और दायां पर अद्‌भुत नियंत्रण था, मेरे साथ भी गायन में सदैव विवेक की ही संगति होती थी।

सन् 1984 की बात है, उच्च शिक्षा विभाग में सहायक प्राध्यापक के पद हेतु चयन सूची में मेरा नाम आ गया था किन्तु नियुक्ति आदेश निकलवाने के लिये डॉ. अरविन्द जोशी को बड़ी मशक्कत करनी पड़ी।

पिताजी के निधन (सन् 1988) के उपरांत मेरे एवं श्री विवेक के विवाह की जिम्मेदारी भी हमारे दोनों बड़े भाईयों पर आन पड़ी, पितृ तुल्य अपने कर्तव्य का बड़ी जिम्मेदारी से वहन किया।

श्री रमाकांत जी बैंक अधिकारी होने के कारण बाद में उनका अक्सर स्थानांतरण होने के कारण वे संगीत में उतना समय नहीं दे सके। श्री विवेक भी एलआईसी में अधिकारी होने के कारण कोरबा में स्थायी रूप से निवास करने लगे।

परिवार में एकता का आदर्श एवं मिसाल कायम करने की अद्‌भुत क्षमता उनमें भी थी। मुझे यह कहने में खुशी हो रही है कि यही परंपरा हम चारों भाईयों की अगली पीढ़ी में भी सुरक्षित है।

डॉ. अरविंद जी की प्रेरणा एवं उनके द्वारा स्थापित निर्देश में जा रहे थे तो रास्ते में एक बड़ा सा ब्रेकर आया तो मैंने गाड़ी धीरे से उस ब्रेकर के ऊपर से निकाली तो कहने लगे 'बड़े ही नजाकत' से गाड़ी पार की।

भैया का बेटा अनिरूद्ध पिता की तालीम को आगे बढ़ा रहा है पिता के जैसा वो अत्यंत सुरीला वादन कर रहा है। देश-विदेश में अपना नाम रोशन कर रहा है।

परिवार के सभी सदस्यों का ख्याल रखते थे।

■

यादें... डॉ. अरविंद विष्णु जोशी

जोशी परिवार की पीढ़ियों के साथ ....

– राजेश गनोदवाले

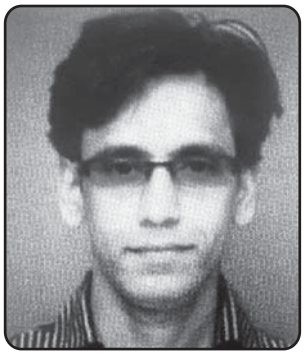

जोशी परिवार मेरे देखते में एक ऐसा परिवार है, (मेरे परिचय दायरे वाला) जिनकी तीन पीढ़ियों को, कह सकता हूँ कि मैंने देखा है। आखिर किसी को देखना कहने का क्या आशय है ? और होगा ? सामान्य स्थितियों में किसी परिवार की पीढ़ियों से इस तरह परिचय का कोई विशेष अर्थ न उभरता हो, लेकिन बात जब सांस्कृतिक मामलों से जुड़ी शख्सियत की करें तो इस 'देखना' शब्द का आशय बदल जाता है और बात अधिक गंभीर हो जाती है। देखना भी एक प्रकार का जानना ही होता है। रचनारत व्यक्तियों को देखना तो जानने की मानों पहली शर्त बन जाती है।

कई बार आप किसी को ना जानते हों, उनसे ना मिले हों तो भी एक संबंध अपने ढंग का, अपनी तरह से, उस व्यक्ति के साथ या कहिए उस व्यक्तित्व के साथ बन जाता है, बनने लगता है। मेरे लिए स्व. डॉ. अरविंद जोशी के साथ ऐसा ही परिचय था – कि मैं न तो उनका समकालीन हूँ, ना संगीत साधक और ना उनका मित्र–पड़ोसी। बावजूद एक समय मैं उन्हें जानने का अपनी तरह से प्रयास करता था। उस प्रयास की अवधी लम्बी भले न थी, लेकिन उसका एक महत्व तो यकीनन था ही। बात उस समय की है जब स्व. पण्डित विष्णु कृष्ण जोशी को समझने की तात्कालिक उधेड़बुन से गुजर रहा था। विषय था जोशी मास्साब की 'अगली पीढ़ियों में गाना क्यों नहीं पनप पाया ?'

जबकि उनके शिष्य मंडल में एकाधिक प्रतिभाएं देश में नाम कमाने वाली निकली। बहुतों ने संस्थाएं खड़ी की तो बेशक, प्रेरणा जोशी मास्साब का महाविद्यालय ही रहा होगा। लेकिन उनका अपना परिवार, अन्य सांगीतिक विधाओं में भले आगे बढ़ चुका है। मगर गाना पीछे छोड़कर। जब मेरी ऐसी जिज्ञासा का फैलाव हो रहा था उन्हीं दिनों उनके बड़े पुत्र भोपाल निवासी वरिष्ठ सितार वादक अरविन्द जी से बात कर कुछ जानने का मन था। दरअसल वे ...

'गवैये नहीं हुए ! सितार वादक हैं।' ऐसा क्यों हुआ ?

जिज्ञासा का समाधान उन्हीं से करने की चाह मन में ही रह गई। मैं अपनी सीमाओं की बाध्यता के कारण उन तक पहुंच न सका। जबकि उनके जरिए गायिकी और सितार से जुड़े (बड़े मास्साब को लेकर) और भी संदर्भ बाहर आ सकते थे ! इतिहास का एक पाठ बाहर खुल सकता था। पर कई दफा आप जो चाहते हैं वो नहीं हो पाता।

खैर ! रागदारी संगीत की नींव रायपुर में रखने वाली हस्ती जोशी मास्साब के प्रति मेरी दिलचस्पी आरंभ से थी। और परिवार का ज्येष्ठ पुत्र होने के नाते अरविंद जी बड़े मास्साब को लेकर कलाकार–वादक के रूप में कुछ नई बातें, मेरे आलेख के लिए जोड़ सकते थे। असल में बड़े मास्साब का मंच के इतर जीवन कैसा रहा होगा ? इसे एक जेष्ठ पुत्र अच्छी तरह बता सकता है। अब क्या सफाई दूँ कि उनके साथ कभी ठीक से बैठकर बात करने का अवसर नहीं आया। इसकी एक वजह थी उनका भोपाल में रहना और मेरा रायपुर वासी होना। एकाद बार हमारी मुलाकातें अनायास हुई भी तो 'नमस्कार' या 'कैसे हो ?' से रिश्ते आगे नहीं बढ़े। महाकौशल संगीत समिति के आयोजनों के सिलसिले में भी मौन मुलाकातें हुई थीं। आखरी भेंट याद आती है श्री राम संगीत महाविद्यालय के 'अमृत महोत्सव' के दौरान। असल में लिखने में दिलचस्पी बढ़ने के बाद छत्तीसगढ़ में संगीत को लेकर ... जोशी मास्साब के होने का क्या अर्थ था ?

यह बाद में समझ में आया।

अमृत महोत्सव प्रसंग के सिलसिले में 75 वर्षों की कीर्ति उजागर करने वाली स्मारिका का संपादन करने के दौरान आए आलेखों ने समझाया कि जोशी मास्साब कितनी बड़ी हस्ती थे। स्मारिका में, पारिवारिक सदस्यों की नजर में जोशी मास्साब का एक खांका भी खींचा जाना चाहिए। इसका खयाल मन में आ गया था। ताकि संगीत जगत को इस साधक का संघर्ष भी समझने का अवसर मिले। लेकिन एकाग्रता तब उलझ जाती है जब वातावरण मन माफिक ना हो। ऊपर से काम (स्मारिका) अच्छा करने और समय पर खत्म करने की जद्दोजहद। हालांकि उस अंक के लिए अरविंद जी ने भोपाल से अपना सारगर्भित आलेख भेज कर काफी हद तक परिवार का प्रतिनिधित्व कर दिया था। इस लेख में उनकी यानी बड़े मास्साब की 'घर छवि' थोड़ी–सी उभरती दिख गई। मैं, यही सब विस्तार से और अपने अंदाज से समझने अरविंद जी के साथ बैठना चाहता था। खासकर अपने बड़े पुत्र का गाना सीखने के बावजूद सितार की ओर मुड़ जाने को लेकर क्या कभी उनके मन में कोई उथल पुथल थी ? क्या परिवार में गायन की अपेक्षा सितार का विस्तार होना महज एक संयोग है ? किसी प्रकार की दुविधा या गायिकी हेतु अपेक्षित योग्यता का न दिखाई पड़ना जैसे कोई कारण भी नेपथ्य में क्या थे ?

दरअसल यही सब जो मैं समझना चाहता था वह आज भी मोटे तौर पर ऐसा लगता है कि अनुत्तरित ही है। जोशी मास्साब दर्जेदार गवैये रहे। इस तथ्य को संगीत जगत ने अच्छी तरह जाना। ग्वालियर से वे अपने साथ पंडित राजाभैया पूछवाले से सीखी गायिकी लेकर आए थे। ग्वालियर घराने की गायिकी की बात की जाए तो उसमें 'राजाभैया' के कद का अंदाज लगाना मुश्किल काम नहीं और उस काल में गुरु–शिष्य पद्धति से उतना पक्का गाना सीख कर निकलना कितना असाधारण था ? कम से कम आज तो समझ में आता ही है। जोशी मास्साब के लंबे शिष्य मंडल में जरूर अनेक नाम बतौर गवैये सफल हुए। लेकिन परिवार में, गवैया होने की संख्या शून्य है। जिनमें अथाह उम्मीद थी, उनसे भी गायिकी की विरासत को संभालना संभव नहीं हुआ।

उत्साहवर्धक बात तो यही है कि जोशी परिवार में आज तीसरी पीढ़ी

तक संगीत कायम है। अलबत्ता गायन का विस्तार जरूर थम गया है ? स्व. अरविंद जोशी बतौर सितार वादक (पेशे से प्रोफेसर : सितार) रहे। उनकी बहन डॉ. वसुंधरा कान्हे स्वयं सितार में दीक्षित हुई। दूसरे चिरंजीव – स्व. रमाकांत जोशी बैंकिंग सेवा की ओर बढ़ गए। वे वायलिन सीखा करते थे। तीसरे पुत्र डॉ. विजय जोशी हैं। वे स्थानीय महाविद्यालय में गायन के विभागाध्यक्ष हैं। गायन में उन्हीं का नाम लिया जाता है। लेकिन मंचीय प्रस्तुति के लिए उन्होंने स्वंय को क्यों आगे नहीं लाया, वही जानें। जबकि जब कभी भी उन्होंने किसी छोटी बड़ी महफिलों में भले थोड़ा ही गाया, असर छोड़ जाने वाला गाना रहा। जिन भी लोगों ने उनका गाया हुआ सुना है, वे इस बात से सहमत हो सकते हैं। उनके गले में वह स्वाभाविक दर्जा मौजूद है जो उनको हासिल गुण की तरफदारी करता है। यह भी बताता है कि पिता कितने उच्च कोटि के गवैये थे। चौथा पुत्र विवेक तबला का मामूली शौक रखता दिखा।

जोशी मास्साब की छोटी बहन श्रीमती सुलेखा पेंडसे भी बतौर गायिका (हालांकि वे मंचों में कम ही नजर आईं) याद की जाती हैं। लेकिन सितार वाद्य में भी वे विशारद थीं।

अब जोशी परिवार की तीसरी पीढ़ी से अनिरूद्ध (पुत्र – अरविंद जोशी) भी पेशेवर सितार वादक हैं। यानी तीसरी पीढ़ी में भी गाना नहीं। वैसे कतई जरूरी नहीं कि गायक का पुत्र गायक ही हो। अगर अगली पीढ़ी ने गायन की ओर न झुककर स्वयं के लिए वाद्य में रमना बेहतर समझा हो तो भी गायिकी उनके भीतर अपने ढंग से ठहरी ही होगी। डॉ. विजय जोशी इसके प्रमाण हैं। उनके पास वह रंग है, भले ही उन्होंने अपनी राह विद्यार्थियों तक समेट ली तो क्या!

प्राय: सारंगी वादक, गवैयों से बेहतर गाने के बारे में जानते हैं, उसी उदाहरण के सामने रख कहें तो उनके सबसे बड़े पुत्र अरविंद जी ने भले ही खुद के लिए सितार में सिद्धता पाई। लेकिन वे गायन में भीगे हुए तो थे ही। उनका प्रतिदिन का रियाज भी पिता की देखरेख में ही होता था। जाहिर है प्रशिक्षण का अंदाज गायिकी ही रहा था, जैसा कि अपने एक लेख में अरविंद जी इसका खुलासा भी करते हैं। यों भी वे बाकायदा गायन में विशारद थे। आवाज की उनकी प्रकृति ने उन्हें जरूर रोक दिया था कि वे इसे लेकर दूर तक शायद जा ना सके। एक मर्तबा भिलाई में उस्ताद विलायत खां का जादुई सितार सुनने का मौका आया। उस महफिल में मानों उन्होंने गाता हुआ सितार जैसे देख लिया था। ये कुछ अनुभव उनके कलाकार मन के सामने ऐसे आए कि सितार पर एकाग्र होने की राह दिख गई। इस तरह गायन से उनका साथ छूटा और वे सितार को अन्तिम तौर पर साधने की ओर मुड़ गए।

स्वाभाविक है गायन से परे सितार की ओर मुड़ना यह उनका अपना निर्णय था। पिता की इच्छा तो यकीनन गायिकी की विरासत उन्हें सौंपने की रही होगी। लेकिन हालातत जो तय करते हैं वही होता है। ये अलग बात है कि उनका मन गायिकी की विरासत लिए बड़ा हुआ था। वरना विलायत खां का सितार बेचैनी कैसे पैदा करता ? कहना चाहिए कि बाद में अपने बजाने में उनका मन 'गा' ही रहा होता था।

इस परिवार में सितार आया कैसे ? जब इसकी खोजबीन की तो उनकी बहू यानी अरविंद जी की पत्नी श्रीमती अर्चना जोशी ने महत्वपूर्ण तथ्य सामने रखा। जिससे जोशी मास्साब के संघर्ष और जज्बे को समझने का एक नया दृष्टिकोण मिलता है। उस समय महाविद्यालय में संपूर्णता के लिए प्रत्येक विधाओं में विद्यार्थियों का होना जरूरी था। इसीलिए घर के सदस्यों को भी गायन के अलावा अन्य विषयों की तालमी दी जाती थी, ताकि विद्यार्थियों की संख्या दिखाई जा सके। उनकी वह दूरदृष्टि आज समझ में आती है कि कैसे एक व्यक्ति अपेक्षित वातावरण रचने की अनथक कोशिश में लगा हुआ था।

अपने एक संस्मरण में, अरविंद जी पिता के बारे में लिखते हैं कि 'सितार का उनका रियाज नहीं था, लेकिन तकनीक का पूर्ण ज्ञान था। इसका आशय है बड़े मास्साब सितार के करीब थे। तो एक दिग्गज गायक के परिवार में भले आज गायन थमा हुआ नजर आता है। फिर भी संगीत तो है। वह एक अर्थों में गायन ही है। सितार की निरन्तर फैलती शाखाएँ भी इसे साबित कर रही है। अब ताजा उदाहरण अनिरूद्ध का लें। अपने पिता की ही तरह कम बोलने वाला। या बहुत जल्दी मेल जोल ना बढ़ाने वाला। वैसे रचनात्मकता से नाता रखने वालों की इसे खूबी के रूप में देखा जाना चाहिए। आप भले उन्हें ना जानते हों, या ना मिले हों। बावजूद रचनात्मक मामलों के संदर्भ में जब बात की जाए तो वे खुलने लगते हैं। अनिरूद्ध भी अपने पिता की तरह शांत मालूम देता है। लेकिन संगीत की चर्चा करने पर उसके भीतर अपने पिता, दादा की विरासत से उपजा ज्ञान बाहर आता दिखता है।

बड़े मास्साब ने अपनी कर्म भूमि छत्तीसगढ़ बनाई। हालात ने बड़े पुत्र को भोपाल का बना दिया। अब उनका पुत्र अनिरूद्ध, पुणे बस गया है। इन दिनों सितार के साथ वह 'सुरबहार' भी साध रहा है। स्व. पंडित बिमलेंदु मुखर्जी के पास जाने का उसे यकीनन फायदा हुआ ही होगा। सुरबहार बजाते हुए इस नौजवान सितारिये को 'मन्द्र का काम' करते देख संतोष होता है कि उसके पिता के मन में जो गाना, दादा की दी हुई तालीम का रुका हुआ था – उसे वह सुरबहार के माध्यम से साधने के प्रयत्न करने की तरफ बढ़ रहा है। आखिर सितार के नीचे कहीं न कहीं गायन का झरना दबा हुआ जो है।

लेखक वरिष्ठ कला समीक्षक हैं।

Musicians of his kind are rare

-Suprit Deshpande

Pt. Arvind Joshi, Kaka for me was a very knowledgeable, soft spoken and serious musician with rich aesthetic values.His mastery over 'Aalap' was worth envy to any contemporary Sitar player. Having seen him since my childhood as a colleague of my father, I remember his face with a perpetual benevolent smile. His encouragement to me in my humble quest in music was timely and constructive.Musicians of his kind are rare and they are truly missed.

यादें... डॉ. अरविंद विष्णु जोशी

यादें

सुर को समर्पित डॉ. अरविंद विष्णु जोशी

– अर्चना अरविंद जोशी

7 सितम्बर 2018 को अपने जीवन को विराम दिया एक सुरिले सितार वादक ने। जीवन में अनेक भूमिकाओं को निभाया जैसे संगीतकार संगीतज्ञ, वादक, अध्यापन, मार्गदर्शक, शारीरिक दुर्बलताओं के कारण इस कलाकार की धमनियाँ मौन हो गई। इलाज में भी संगीत रूपी प्रयत्नों के प्रयास थम गये। शरीर और श्वास विमुख हो गये। एवं इस साधक के जीवनक्रम पर विराम लग गया। पार्थिव इतिहास बन गया।

जिंदगी का यह क्रम निरंतर चला आ रहा है शरीर की समय यात्रा पर विराम लगा परंतु साधना एवं कृतित्व के क्रम पर नहीं साधना जीवन्त है। मेरे साथ इस साधक ने पति के रूप में कलाकार के रूप में एवं अनेक परिस्थितियों में ऐसा साथ दिया 40 वर्ष कैसे व्यतीत हुये इसका मुझे आभास नहीं हुआ कि इतना लम्बा समय साथ बीता। अभी भी मुझे ऐसा नहीं लगता कि वे इस जगत में नहीं है। उनकी सभी यादें मेरे लिये जीवित हैं। दिवंगत संगीत साधक डॉ. अरविंद विष्णु जोशी का कृतित्व उच्च श्रेणी के अंतर्गत आता है। सन् 1979 जून से मैं उनके साथ रही।

उनकी नियमित दिनचर्या व्यवस्थित थी। यदि परीक्षा कार्य से जल्दी जाना है तो जल्दी उठकर योग पूजा करने के पश्चात ही घर से महाविद्यालय के लिये निकलते थे। घर में सबसे बड़े होने के कारण पारिवारिक जिम्मेदारियों का भी निर्वहन भलीभांति करते थे। उस वक्त पत्र व्यवहार ही परिवार से जुड़ने का साधन था। अपने पिता पं. विष्णु कृष्ण जोशी (प्राचार्य श्रीराम संगीत महाविद्यालय रायपुर) एवं माता श्रीमती विजया विष्णु जोशी को दो सप्ताह में पत्र व्यवहार किया जाता था।

उनके विद्यार्थी जीवन के बारे में बात है जिसका जिक्र मेरे साथ उन्होंने किया है कि जब वे 1962 में परीक्षा में उत्तीर्ण हुये तो उनकी माता जी द्वारा मुझे और मेरे छोटे भाई रमाकांत को मात्र दो रूपये की किताब कहानी संग्रह ज्ञान सरोवर पुरस्कार के रूप में दी गई थी। वह किताब मेरे पास सुरक्षित है एवं दोनों भाइयों के नाम अंकित है।

पिताजी का स्वभाव सख्त था। अपने परिवार को अनुशासित रखना चाहते थे। पिताजी एवं बेटा जब रियाज करते थे समय सीमा नहीं थी कि एक घण्टा या दो घण्टे। राग का रूप, विस्तार आलाप जोड बढ़त सिलसिलेवार गत ताने सभी का अभ्यास किया करते थे। 1988 में जब पं. विष्णु कृष्ण जोशी जी का देहांत हुआ। उसके पश्चात जब भी रियाज करने बैठते तो पिताजी को मार्गदर्शन देते हुये महसूस करते थे। पिताजी रियाज अभी भी करवाते हैं ऐसी अनुभूति उनको होती थी। कलाकारों के विचार के बारे में पिताजी कहते थे सभी की अच्छाइयों को संग्रहित करो। इन्हीं सब विचारों का अनुसरण डॉ. अरविंद विष्णु जोशी द्वारा किया गया।

मेरे ससुर पं. विष्णु कृष्ण जोशी जी से मेरा बेटी जैसा रिश्ता था मुझे भी उनका मार्गदर्शन प्राप्त हुआ है। संगीत में एम.ए. उन्हीं के मार्गदर्शन से किया है। जिसका लाभ मुझे मेरे जीवन पर्यंत मिलता रहेगा। रागो का विस्तार एवं गहन अध्ययन मैंने डॉ. अरविंद जी के सितार वादन से सीखा।

पं. विष्णु कृष्ण जोशी जी के व्यक्तित्व की एक उल्लेखनीय बात यह है कि प्रत्येक व्यक्ति ने पारिवारिक जिम्मेदारियों के अतिरिक्त भी स्वतंत्र कलाकार बनने की इच्छा रखनी चाहिये इसलिये वे प्रत्येक व्यक्ति परिवार का हो या उनके संपर्क में आने वाले व्यक्ति हो सबको इस बात को समझाते थे कि जीवन में विलक्षण प्रतिभा के धनी बनो। डॉ. अरविंद जोशी ने अपने को कलाकार एवं अध्यापन कार्य में अपने को स्थापित किया था।

अब शोध प्रबंध के बारे में बात करूं तो अतिश्योक्ति नहीं होगी। बुद्धि से प्रखर, विषय की गहराई में जाकर अध्ययन करने की उत्सकुकता, लगन संपर्क संगीतकार शास्त्रज्ञों से दूरभाष एवं विषय की समय सारिणी बनाकर कार्य करने की व्यवस्थितता ने शोध प्रबंध 1996 को गति प्रदान की एवं 1998 में पूर्ण किया गया।

विषय : ''बस्तर के आदिवासी संगीत वाद्य एक अनुशीलन''

निर्देशक – डॉ. हीरालाल शुक्ल
अध्यक्ष – भाषा विज्ञान विभाग
बरकतउल्लाह विश्वविद्यालय भोपाल

सह- निर्देशक – प्रो. गुणवंत व्यास
अध्यक्ष – संगीत विभाग
दुर्गा महाविद्यालय, रायपुर

डॉ. अरविंद जोशी जी के हिन्दी एवं अंग्रेजी के अक्षर भी बहुत अच्छे थे। उनके स्वलिखित एवं राग की गतो का संग्रह है। जिसका उदाहरण के रूप में गत का छायाचित्र दे रही हूँ। जिसे मेरे साक्षात्कार पृष्ठ 10 पर देखा जा सकता है।

ए-78, आदर्श नगर, होशंगाबाद रोड, अहमदपुर, भोपाल (म.प्र.) 462026,
मो. 9406518122

■

डॉ. अरविंद जोशी - मेरी स्मृतियों में

-प्रो. राधेश्याम जायसवाल

यह मेरा सौभाग्य है कि पंडित विष्णु कृष्ण जोशी के ज्येष्ठ पुत्र स्वर्गीय अरविन्द जोशी का घनिष्ठ सान्निध्य अनेक वर्षों तक मुझे प्राप्त हुआ। हम दोनों में अटूट मित्रता तो थी ही, उसके अतिरिक्त हम दोनों अपने सुख-दु:ख एवं अन्तरंग बातों को साझा करते थे। उनके संपूर्ण परिवार के साथ मुझे आज तक जोड़ने का श्रेय अरविन्दजी को है। उनके जैसा निश्छल, निर्लोभी एवं दूसरों की मदद करने में सदैव तत्पर रहने वाला व्यक्ति आज दुर्लभ है। आडम्बर रहित सादा जीवन उनके व्यक्तित्व का प्रमुख अंग था। उनकी वाणी से सदैव विनम्रता झलकती थी। यह सात्विक संस्कार उन्हें उनके परिवार से मिला था। अरविन्द जोशी ने रायपुर के पंडित रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय से बी.काम और एम.कॉम की परीक्षाएँ उत्तीर्ण की थी। इसके साथ ही उन्होंने कई वर्षों तक अपने पिता पंडित विष्णु कृष्ण जोशी से शास्त्रीय गायन की शिक्षा ग्रहण की थी। अपनी बड़ी बहन श्रीमती वसुन्धरा कान्हे से प्रेरित होकर उन्होंने भिलाई स्टील प्लान्ट के जनरल मैनेजर एवं उस्ताद इनायत खां के शिष्य पंडित बिमलेन्दु मुखर्जी से कई वर्षों तक सितार वादन की शिक्षा ली। संगीत विषय में डिग्री के महत्व को ध्यान में रखकर उन्होंने सन् 1975 ई. में खैरागढ़ के इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय से सितार विषय में एम.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। मुझे ऐसे संगीतज्ञ अधिक प्रिय रहे हैं, जिन्होंने संगीत कला की साधना के साथ-साथ शैक्षणिक उपलब्धियाँ भी प्राप्त की हों। वस्तुत: उनका चिंतन अधिक वैज्ञानिकपूर्ण और तर्कसम्मत होता है तथा उनमें रूढ़िवादिता कम होती है। इस सोच के कारण मैं अरविन्दजी के व्यक्तित्व की तरफ खिंचता चला गया।

मेरी और अरविन्दजी के मित्रता की शुरुआत सन् 1978 ई. में हुई जब खैरागढ़ स्थित इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय के वाद्य संगीत विभाग में संगीतशास्त्र पढ़ाने के लिए मेरी नियुक्ति और अरविन्द जी की नियुक्ति सितारवादन की शिक्षा देने हेतु लेक्चरर के पद पर हुई। एक ही विभाग में साथ-साथ कार्य करने और हम दोनों के विचारों में साम्यता के कारण दोनों में नजदीकियां बढ़ती चली गईं। हम दोनों की कक्षाएँ पास-पास के कक्षों में चलती थीं। विश्वविद्यालय ने राजमहल के भीतरी तरफ मुझे रहने के लिए तीन कमरों का आवास आवंटित किया था, जिसमें मैं उस समय अकेला रहता था। मेरे निवास के तीन तरफ गायन, वादन और कथक नृत्य की कक्षाएं चलती थीं। ये कक्षाएं अपरान्ह में 3 बजे से प्रारंभ होती थीं। दो घण्टे सितारवादन की शिक्षा देने के बाद अरविन्दजी को चाय पीने की इच्छा होती थी। एक दिन उन्होंने मुझसे कहा कि आपके घर में सायंकाल पांच बजे चाय की व्यवस्था होनी चाहिए। उनके इस सुझाव को कुछ अन्य मित्रों ने भी समर्थन किया। साथी मित्रों के आर्थिक सहयोग से मेरे निवास स्थान में 'टी-क्लब' की स्थापना हो गई। साथी मित्रों ने केतली, कप-प्लेट, चाय की पत्ती, चीनी आदि खरीद कर मेरे घर में रख दी। मुझे चाय बनाना नहीं आता था, अत: यह दायित्व वाद्य सुधारक मसूद खाँ को दिया गया। वे मेरे घर में आकर चाय बना देते थे और मेरे साथी मित्र अरविन्द जोशी, मुकुन्द भाले, जमुना प्रसाद पटेल, रामनाथ सिंह, मसूद खाँ और मैं ठीक पाँच बजे आकर चाय पीते थे और उसके तुरन्त बाद अपने-अपने कार्यों में जुट जाते थे। मैंने चाय बनाना उसी अवधि में मसूद खाँ से सीखा। पंडित बाला साहब पूछवाले (अतिथि प्राध्यापक) इस 'टी क्लब' में हम लोगों के विशेष अतिथि के रूप में सम्मिलित होते थे, क्योंकि वे शाम पाँच बजे से मेरे निवास के पहले कक्ष में एम.ए. गायन के विद्यार्थियों को प्रशिक्षण देते थे। देश के प्रसिद्ध सितारवादक उस्ताद अब्दुल हलीम जाफर खाँ भी उस समय इस विश्वविद्यालय में अतिथि प्राध्यापक के रूप में आए हुए थे। कभी-कभी वे हम लोगों के साथ चाय पीने के लिए सम्मिलित होकर हम लोगों को अपने सान्निध्य से उत्साहित करते थे। हम लोग पंडित बाला साहब पूछवाले और उस्ताद हब्दुल हलीम जाफर के स्नेह और मनोविनोद को कभी भी भूल नहीं सकते।

अरविंदजी और हमारे मित्र साथियों के अद्‌भुत आनन्द का वह भी क्षण होता था, जब हम लोग विश्वविद्यालय के कामन मेस में प्रतिदिन दोपहर और रात्रि में भोजन करने के लिए उपस्थित होते थे। उसमें मेरे सहित अरविन्द जोशी, कामता प्रसाद त्रिपाठी, मुकुन्द भाले, जमुना प्रसाद पटेल, रामनाथ सिंह सम्मिलित होते थे। चूंकि छात्र-छात्राओं के लिए भी यही मेस था, अत: हम लोग उनके भोजन कर लेने के बाद ही वहां जाते थे। वहां अरविन्दजी की एक आदत को मैंने देखा कि भोजन करते समय वे अलग से नमक लेकर दाल और सब्जी में डालते थे, जिसे हम लोग टोका करते थे। यह भोजन कक्ष हम लोगों के मनोरंजन का उस समय केन्द्र बन जाता था, जब अरविन्द जी के साथ मैं मुकुन्द भाले से कल्याणदास महन्त (कथक नृत्य के अध्यापक)के नृत्य की नकल करने और रामनाथ सिंह से जमुनाप्रसाद पटेल (तबला अध्यापक) के चलने के ढंग की नकल उतारने का आग्रह करता था। ये दोनों व्यक्ति यद्यपि तबलावादन के कुशल कलाकार थे, किन्तु नकल उतारने में भी बहुत माहिर थे, जिसे देखकर हम लोग

आश्चर्यचकित और आनंदित होते थे। उस समय अरविन्द जी की उन्मुक्त हँसी देखने लायक होती थी।

अरविन्द जोशी अपने खैरागढ़ के प्रवास के समय वहीं के सेवानिवृत्त शिक्षक श्री कन्हौआ जी के मकान में किराये पर रहते थे। उनका अरविन्दजी और मेरे ऊपर अपार स्नेह था। मैं छुट्टियों के दिन अक्सर कन्हौआजी और अरविन्दजी से मिलने उनके निवास में चला जाता था। जब अरविन्दजी से मैं मिलता था, तो वे अपनी माताजी श्रीमती विजया जोशी द्वारा भेजे गये स्वादिष्ट लड्डू अवश्य खिलाते थे। हम दोनों छुट्टियों के दिन एक दूसरे के निवास पर अवश्य जाते थे। यहां मैं एक रोचक घटना की चर्चा करना चाहता हूँ। एक बार अरविन्दजी के मित्र वायलिन वादक कीर्ति व्यास रायपुर से खैरागढ़ आए और पहले अपने गुरू प्रोफेसर बसन्त रानाडे से मिलने शिक्षक आवास में गए। वहां से प्रस्थान करने के पहले कीर्ति व्यास ने प्रोफेसर वसन्त रानाडे से पूछा कि अरविन्द जोशी कहाँ मिलेंगे। इस पर प्रोफेसर रानाडे ने कहा कि जहां जायसवाल होंगे, वहीं अरविन्द जी भी होंगे। जब अरविन्दजी को ढूढ़ते हुए कीर्ति व्यास मिले तो संयोगवश हम दोनों एक साथ थे। इस बात को कीर्ति व्यास ने ही बतलाया।

सितारवादन के अभ्यास के प्रति अरविन्दजी बहुत सजग रहते थे। उनके सितारवादन में स्वरों की स्पष्टता गंभीरता और मधुरता होती थी। उनके सितारवादन में इमदादी घराने की झलक स्पष्ट रूप से दिखाई देती थी। सितार वादन करते समय उन्हें अंगुलियों से अधिक पसीना निकलता था, जिसके कारण तानबाजी करते समय कभी-कभी अंगुलियां फिसल जाती थीं। इस कठिनाई के बारे में जब उन्होंने मुझे बतलाया, तो मैंने उन्हें अधिक नमक खाने से मना किया। वे हौम्योपैथी चिकित्सा पर अधिक विश्वास करते थे और अपने पास उसकी दवाएं भी रखते थे। अरविन्दजी के खैरागढ़ के अल्प प्रवास में हम दोनों के मित्रता की कड़ी इतनी मजबूत हो गई थी कि उनके भोपाल जाने के पश्चात भी यह अक्षुण्ण रूप से कायम रही। अरविन्द जी ने खैरागढ़ में रहते हुए मध्य प्रदेश सेवा आयोग द्वारा विज्ञापित संगीत के लेक्चरर पद के लिए आवेदन पत्र भर दिया था और उनकी नियुक्ति सितार के लेक्चरर पद पर हो गई। तत्पश्चात उन्हें मध्य प्रदेश सेवा आयोग द्वारा भोपाल के महारानी लक्ष्मीबाई महिला पी.जी. कालेज में सितार के लेक्चरर पद पर कार्यभार ग्रहण के लिए आदेशित किया गया। उस कॉलेज में हम लोगों के मित्र सुप्रसिद्ध तबलावादक प्रोफेसर किरण देशपाण्डे संगीत विभाग के विभागाध्यक्ष थे। किरण जी और अरविन्दजी में गहरी मित्रता हो गई थी। जब किरणजी ने होशंगाबाद रोड के आदर्श नगर में अपना मकान बनवाया, तो उन्होंने अरविन्द जी को उसी कॉलोनी में प्लाट खरीदवाने में मदद की। उस प्लाट पर अरविन्दजी ने दो मंजिला सुन्दर भवन का निर्माण कराया और जब मैं भोपाल गया, तो उन्होंने अपने नवनिर्मित भवन के प्रत्येक कमरे में मुझे ले जाकर बहुत उत्साहपूर्वक दिखाया। प्रोफेसर किरण देशपाण्डे के सेवानिवृत्त होने के पश्चात अरविन्दजी संगीत विभाग के जब विभागाध्यक्ष नियुक्त हुए तो उन्होंने मुझे एम.ए. संगीत की लिखित परीक्षाओं के लिए एवं प्रायोगिक परीक्षाओं के लिए परीक्षक बनवाया। जब मैं एम.ए. वादन की प्रायोगिक परीक्षाओं को सम्पन्न कराने के लिए उनके विभाग में पहुंचा तो उन्होंने बहुत ही गरमजोशी से मेरा स्वागत किया एवं विभाग के सभी शिक्षिकाओं तथा प्राचार्य से उत्साहपूर्वक मेरा परिचय कराया। जब मैं शिक्षकों की समस्याओं के निराकरण हेतु मध्य प्रदेश शासन के कार्यालयों तथा मध्य प्रदेश विश्वविद्यालय शिक्षक महासंघ की बैठकों में सम्मिलित होने के लिए भोपाल जाता था, तो अरविन्द जी के विशेष आग्रह पर मैं प्राय: उनके घर में ही ठहरता था। अरविन्द जी की पत्नी श्रीमती अर्चना जोशी एवं उनके पुत्र अनिरूद्ध तथा पुत्री सोणा (अवंतिका) मुझे अपने परिवार के अंग की तरह मानकर बहुत ही आदर-सत्कार करते थे। उनका आतिथ्य आज भी मुझे नहीं भूलता है। मुझे जहां जाना होता था, वहां अरविन्दजी अपने स्कूटर पर बैठाकर ले जाते थे। यह हम दोनों के अक्षुण्ण मित्रता की मिसाल थी।

हम दोनों जब मिलते थे, तो अपनी सभी समस्याओं पर चर्चा करते थे। उन दिनों अरविन्दजी भोपाल के बरकतउल्लाह विश्वविद्यालय में भाषा विज्ञान के प्रोफेसर डॉ. हीरालाल शुक्ल और रायपुर के प्रोफेसर गुणवन्त व्यास के संयुक्त मार्ग निर्देशन में 'बस्तर के आदिवासी संगीत वाद्य एक अुशीलन' विषय पर पी.एच.डी. डिग्री हेतु शोधकार्य कर रहे थे। दोनों शोध निर्देशकों में कुछ मतभिन्नता के कारण अरविन्दजी बहुत परेशान थे। इस संबंध में उन्होंने जब मेरी राय मांगी तो मैंने उन्हें अपने प्रमुख शोध निर्देशक डॉ. हीरालाल शुक्ल के निर्देशों के अनुसार शोधकार्य करने की सलाह दी। क्योंकि उन्होंने बस्तर के आदिवासियों पर विशेष अनुसंधान कार्य किया था और उनकी पुस्तक 'आदिवासी संगीत' मध्यप्रदेश के हिन्दी ग्रंथ अकादमी द्वारा प्रकाशित हो चुकी थी। अरविन्दजी ने मेरे सुझाव को मान्य करते हुए अपना शोधकार्य पूर्ण किया, जिस पर उन्हें सन् 1998 ई. में पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त हुई। वे अपने छोटे भाई विजय जोशी को भी पी-एच.डी. की डिग्री प्राप्त करते हुए देखना चाहते थे। जब विजय जोशी ने 'पंडित जितेन्द्र अभिषेकी का व्यक्तित्व और उनका सांगीतिक योगदान' विषय पर शोधकार्य करने का निर्णय किया तो अरविन्द जी और उनकी धर्मपत्नी श्रीमती अर्चना जोशी ने बहुत ही आग्रहपूर्वक मुझे उनका शोध निर्देशक बनकर हर हालात में शोधकार्य पूर्ण कराने के लिए कहा। मैंने उनके आग्रह को शिरोधार्य कर विजय जोशी को कुछ कड़े निर्देश देते हुए उनका शोध निर्देशक बनना स्वीकार किया। मुझे प्रसन्नता है कि विजय जोशी ने मेरे निर्देशों का पालन करते हुए अपना शोधकार्य पूर्ण किया और उन्हें सन् 2003 ई. में इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय (खैरागढ़) से पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त हुई। इससे प्रकट होता है कि अरविन्दजी अपने छोटे भाई विजय जोशी के उज्जवल भविष्य के लिए कितने चिंतित रहते थे। मैंने एक दिन अरविन्द जोशी से कहा कि उनके पिताजी पंडित विष्णु कृष्ण जोशी के सांगीतिक योगदान पर किसी विद्यार्थी द्वारा पी-एच.डी. डिग्री के लिए शोधकार्य करना चाहिए। विजय जोशी ने अपनी छात्रा रायपुर निवासी सुषमा मिश्रा को इसके लिए तैयार किया। अरविन्द जी के आग्रह पर मैंने उसका शोध निर्देशक बनना स्वीकार किया। सुषमा मिश्रा ने मेरे और विजय जोशी के

संयुक्त मार्ग निर्देशन में 'सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ पं. विष्णु कृष्ण जोशी का संगीत में योगदान' विषय पर शोधकार्य पूर्ण किया और इसके लिए उन्हें सन् 2012 ई. में इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय (खैरागढ़) से पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त हुई।

अरविन्द जोशी ने बचपन से ही अपने पिताजी को संघर्ष करते हुए देखा था। उन्हें दु:ख था कि उनके पिताजी जीवित रहते अपने पुत्रों के वैभव को नहीं देख सके। अरविन्दजी ने इस दर्द को 'श्रीराम संगीत महाविद्यालय अमृत महोत्सव : 2012-13' की स्मारिका में प्रकाशित अपने लेख 'मेरे पिता: मेरे गुरु' में इन शब्दों में व्यक्त की है - 'मेरे पूज्य पिताजी को इस संसार से विदा हुए 18 वर्षों से भी ज्यादा समय हो चुका है। उनके साथ बिताये अमूल्य समय को मैं कभी भी विस्मृत नहीं कर पाऊंगा। आज मैं जिस मुकाम पर पहुंचा हूँ, उन्हीं की प्रेरणा और आशीर्वाद का फल है। आज यदि वे जीवित होते तो अपने परिवार की प्रगति और सुख-सम्पन्नता देख अत्यंत आनंदित होते।'

ऐसे पितृभक्त स्वर्गीय डॉ. अरविन्द जोशी को मैं अपनी इन स्मृतियों के माध्यम से भावभीनी श्रद्धाजंलि अर्पित करता हूँ।

नाद ब्रह्म उपासक

- मकरन्द हलवे

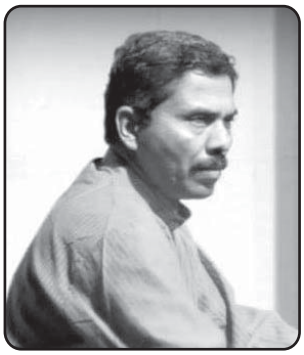

विगत 25 वर्षो से आदरणीय सर से परिचय था, परंतु अनको करीब से जानने का अवसर मिला जब उन्होंने एक दिन आग्रह किया कि चिरंजीव अनिरूद्ध के सितार अभ्यास में आप समय देंगे तो अच्छा रहेगा उसी सयम से मुझे इनका सत्संग मिला और इनकी दिव्यता का धीरे-धीरे एहसास होने लगा, सप्ताह में एक बार मेरी मुलाकात इस परिवार के साथ होने लगी अनिरूद्ध के वादन के बाद खुद भी सितार बजाने की इच्छा रखते जो मेरे लिए किसी प्रसाद से कम नहीं होता था ऐसा सुरीला वादन मन को शांत करने वाले आलाप, और उत्साह से भरने वाले वादन से कान तृप्त हो जाते राग भी एक से बढ़कर एक, राग तोड़ी बिलासखानी तोड़ी रामकली मियां मल्हार, शुद्ध कल्याण, विहाग यमन आदि उनके प्रिय राग थे। वादन के बाद सांगेतिक चर्चा और उनसे ज्ञानवर्धक बातें व संगीत की गहराई समझने का अवसर रहता, स्वरों के प्रति उनका नजरिया अतिसंवेदनशील था, उस्तादत विलायत खान साहब के सितार वादन के वे प्रशंसक थे और उन्हें ही अपना आदर्श मानते थे अपने गुरु श्री बिमलेंदु मुखर्जी का स्मरण तो उन्हें सदैव बना रहता उनके प्रति अगाध श्रद्धा व आभार उनकी बातों से प्रगट होता था।, रागों के प्रति उनका दृष्टिकोण शास्त्रोक्त रहता वह उसे नाजुकता से प्रस्तुत करने में विश्वास रखते वादन हमेशा सुरीला हो इसके लिए सावधान रहते थे व सभी कलाकारों से यही अपेक्षा रखते थे। सितार बनाने वाले व सुधारने वाले कारीगरों के प्रति वह बहुत सम्मान रखते थे, इनका व्यक्तित्व शांत सरल सहज किंतु अंतर्मुखी था दूसरों के क्रियाकलापों और गतिविधियों पर टिप्पणी करने से बचने वाले साधक थे। सेवानिवृत्ति के बाद शारीरिक अस्वस्थता ने उन्हें थोड़ा परेशान किया अचानक छोटे बंधु के निधन के सदमे को सहन न कर सके हर दिन उनकी याद में शोकग्रस्त रहे साथ ही सामान्य होने के लिए प्रयत्नशील रहें परंतु कमजोरी बढ़ती रही और शारीरिक स्वास्थ्य गिरता ही गया, धीरे-धीरे नेत्र ज्योति भी कमजोर होती गई परिवार के सदस्य हमेशा बेहतर इलाज के लिए प्रयत्नशील रहे सारे अच्छे चिकित्सकों के संपर्क में रहे परंतु यश ना मिला, उन्हें अंतिम समय में सितार न बजा पाने की जो गहरी पीड़ा थी उससे वे उबर ही नही पाए परंतु प्रिय अनिरूद्ध अच्छा बजा रहे हैं मेहनत कर रहे हैं इसका समाधान उनके चेहरे पर दिखता था और यह उन्हें राहत और आराम देता था। वे एक अच्छे संगीतकार विद्वान आचार्य कला उपासक व सबसे स्नेह रखने वाले सज्जन व्यक्तित्व के धनी थे, ईश्वर उन्हें अपने श्री चरणों में स्थान दे।

डॉ. अरविंद विष्णु जोशी को संगीत रूपी धरोहर विरासत में मिली

-प्रवीण शेवलीकर

डॉ. अरविंद जोशी जी मेरे पिता के गुरू पंडित विष्णु कृष्ण जोशी के पुत्र थे। 1977 में जब उनका स्थानांतरण भोपाल में हुआ तब वे अपने पिताजी के साथ मेरे घर पर आए थे तब मैंने प्रथम बार अपने वायलिन वादन प्रस्तुति दी थी, उसके बाद से कई बार अपनी वेस्पा स्कूटर से हमारे घर पर आया करते थे, सन् 1980 में आकाशवाणी की प्रादेशिक संगीत सभा में उनके सितार वादन को सुनने का अवसर मिला, उसके बाद से ही मैं उनके आलाप करने की शैली से काफ़ी प्रभावित हुआ। वे आलाप करते समय राग की गहराई में जाकर एक एक स्वरों के क्रमबद्ध विस्तार से राग का विशिष्ट स्वरूप सामने लाते थे, यही खूबी उनकी विशिष्ट पहचान थी। वैसे तो वे उस्ताद इमदादखानी घराने से वादन करते थे लेकिन उनके वादन में उनका स्व. चिंतन और मौलिकता साफ झलकती थी। वे एक बहुत ही धीर गंभीर स्वभाव के कलाकार थे, संगीत में परंपरा के साथ नवाचार को भी उतना ही महत्व देते थे। सबसे महत्वपूर्ण बात जो उनसे सीखने को मिली कि सार्वजनिक जगह पर संगीत चर्चा में संयमित और मर्यादित रहकर कैसे अपनी बात रखी जाए। मेरे लिये बड़े सौभाग्य की बात है कि मुझे उनका स्नेह और आशीर्वाद हमेशा से प्राप्त हुआ है। मेरी भोपाल में हुई शायद हर प्रस्तुति

वे सुनने के लिए आते थे, कार्यक्रम के पश्चात प्रशंसा के साथ महत्वपूर्ण सुझाव भी देते थे। कार्यक्रम में उनकी उपस्थिति हमेशा मेरे लिये प्रेरणास्पद रही है। उनके द्वारा आकाशवाणी भोपाल में की कई लगभाग सभी रिकॉर्डिंग करने का मुझे अवसर प्राप्त हुआ। एक ही राग अलग-अलग ढंग से प्रस्तुत करते थे। मुझे बहुत अभिमान है कि जो बहुमूल्य विरासत उन्हें अपने पिता से मिली उन्होंने उसे द्विगुणित कर अपने प्रतिभाशाली पुत्र चिरंजीव अनिरुद्ध को सोंपी है मुझे आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि चिरंजीव अनिरुद्ध उनकी सारी आकांक्षाओं को पूर्ण करके यशस्वी होगा। सादर नमन

पं. अरविंद जोशी - 'हमारे बाबा काका'

- दीपक गुणवंत व्यास

पंडित अरविंद जोशी जी से मेरा संबंध इसी तरह का था। वे मेरे पिताजी पंडित गुणवंत व्यास जी के भाई भले ही नहीं थे ना ही हमारे उनसे कोई रक्त संबंध रहे किंतु उससे भी बढ़कर हमारे पारिवारिक संबंध रहे।

बाबा काका मेरे पिता के गुरु और संगीत की महाविद्यालयीन शिक्षा का छत्तीसगढ़ में बीजारोपण करने वाले पंडित विष्णु कृष्ण जोशी जी के पुत्र थे। गुरु को पिता तुल्य मानना और उनके पूरे परिवार को अपना मानना ये शिष्य का धर्म होना चाहिए ये आप सभी ने पढ़ा होगा, मगर हमने इसे देखा है। पिताजी गुरुजी को अपने पिता तुल्य ही मानते थे, गुरुमाता को माता समान और गुरु के पूरे परिवार को भी उसी तरह अपना मानते थे। इसी नाते से हम भी पंडित विष्णु कृष्ण जोशी जी के सुपुत्र, पंडित अरविंद जोशी जी को काका, उनकी पत्नी को शशि काकू (चाची) ही कहते हैं। अब बात आती है कि यह रिश्ता इतना प्रागढ़ कैसे हो गया ?

मेरे पिताजी पंडित गुणवन्त माधवलाल व्यास के गुरु जी ने भी उन्हें अपने पुत्र की तरह स्नेह दिया और तो और अपने बड़े पुत्र सा मान दिया, उनके पूरे परिवार ने भी इस रिश्ते को पूरी तरह स्वीकार किया, तभी तो आज इतने वर्षों बाद भी गुरु और शिष्य दोनों के परलोक गमन के बाद भी यह रिश्ता पीढ़ी दर पीढ़ी कायम है। पिताजी को बाबा काका ने अपने बड़े भाई का स्थान दिया। जोशी मास्साब के आने के बाद भी इन भाइयों में एकदम घनिष्ठता रही, पिताजी बड़े भाई की तरह बाबा काका को हर मार्गदर्शन देते रहे और बाबा काका भी पिताजी को बड़े भाई सा आदर देते। हर बात बड़े भाई से पूछकर ही करते थे।

एकदम वैसे ही जैसे राम-लक्ष्मण हों। भोपाल में संगीत के हर आयोजन हर सेमिनारों में काका पिताजी को आमंत्रण देते और पिताजी भी सहर्ष जाते। बाबा काका का पी-एच.डी. का काम चल रहा था शायद उनका विषय था 'लोक वाद्य' इसके लिए उनके गाइड कोई और थे पर दोनों भाईयों ने मिलकर उसे पूरा किया, दोनों घंटों एक साथ बैठते विषय पर चर्चा होती रहती। पिताजी के 2011 में जाने के बाद इस संबंध की प्रगाढ़ता का हमें एहसास हुआ, काका-काकू ने घर के बड़ों की तरह पल-पल हमें ढाढस दी, हर विपत्ति में हमारा मार्गदर्शन किया। क्या कोई रिश्ता इतना मजबूत हो सकता है ? नहीं ना। ये पूर्व जन्म के कोई रिश्ते हैं तभी आज भी इतने प्रगाढ़ हैं। खून के रिश्तों से मजबूत होते हैं ये आत्मिक रिश्ते। मुझे बड़ा दु:ख है कि पिताजी और बाबा काका दोनों ही अब हमें छोड़कर परलोक में हैं, पर इस बात की खुशी है कि पिताजी ने हमें इतना भरा पूरा परिवार दिया और रिश्तेदार दिए जिनके प्रेम से हमें पिता-माता की कमी का कभी एहसास ही नहीं होता।

मैं ईश्वर से हर पल प्रार्थना करता हूँ कि उन दोनों का आशीष हम पर सदा बना रहे, हम उनकी गौरवशाली विरासत को अपने स्नेह से सींचते रहे।

9/364, बूढ़ापारा रायपुर (छत्तीसगढ़)472001, मो. 9425517032

डॉ. अरविंद जोशी की स्मृति

- श्री मनोहर भिडे

मेरा और उनका परिचय 35 वर्षों से था। स्व धनंजय (राजाभाऊ) और श्रीमती वसुंधरा (माई) पेण्डसे (मेरी बहन) की पुत्री शशीकला का उनसे विवाह होने से मैं उन्हें जानता था। जोशी जी का परिवार पीढ़ियों से संगीत विद्या के पठन पाठन सेवा में रायपुर में बसा है। अरविन्द जी वाणिज्य तथा कला दोनों के विद्यार्थी थे। परंतु संगीत मय वातावरण ने उनमें सितार वादन की रुचि निर्माण की। आगे वे भोपाल में शासकीय महाविद्यालय में संगीत के प्राध्यापक बने। वैज्ञानिक दृष्टि से उन्होंने संगीत की अनेक बारीकियों का अभ्यास किया।

यादें... डॉ. अरविंद विष्णु जोशी

यादें

बहुआयामी व्यक्तित्व डॉ. अरविंद विष्णु जोशी

– गिरिधर कुमार दुबे

देश काल परिस्थितियाँ और वातावरण के अनुसार व्यक्ति ढल जाता है। मनुष्य के अन्दर की इच्छाऐं पूरी नहीं होती और जब कभी उसके अनुरूप बनने का एहसास होता है तो वह उस ओर चलने का प्रयास भी करता है।

कलाऐं अनन्त हैं और उनके स्वरूप भी भिन्न भिन्न हैं, अभिरूचि अनुसार व्यक्ति उनका चयन करता है। 1970 में कृषि महाविद्यालय रीवा में बाबा अलाउद्दीन खां मैहर, का संगीत कार्यक्रम था जो मेरे कम उम्र होने के बावजूद भी इतना अच्छा लगा कि उससे आज भी सम्मोहित हूँ। स्नातकोत्तर अध्ययन पूर्ण होने के पश्चात सितार सीखने की अभिलाषा से 1979 में मैं खैरागढ़ गया। इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय खैरागढ़ का शिक्षण निश्चित रूप से बहुत अच्छा था और वातावरण भी।

खैरागढ़ में सितार विभाग में श्री अरविन्द विष्णु जोशी जी भी थे तब तक मेरा परिचय नहीं हुआ था क्लास रूम से श्री जोशी जी अपने निवास जो वि.वि. कैंपस से बाहर था चले जाते थे। उसी अवधि में जोशी जी का आकाशवाणी रायपुर से सितार का कार्यक्रम आ रहा था जो बहुत अच्छा लगा। एक दिन मैं उनकी क्लास में गया और छात्रों की कक्षा के बाद बात करने की अनुमति मांगी, परिचय देकर हिचकिचाते हुए सितार सीखने की बात कही क्या आप मुझे गाइड करेंगे।

उत्तर था हाँ, क्यूँ नहीं, मगर मैं ट्यूशन तो देता नहीं हाँ कुछ अगर सीखना है तो प्रात: मेरे घर आ सकते हो। मैंने सुबह लगभग 4.30 बजे उनके घर जाना शुरू कर दिया।

जोशी जी ने कहा –तुम मुझे 'भैया' कह सकते हो। सितार की आवश्यक ट्यूनिंग कैसे की जाती है बताया, सुर समझना काफी कठिन था। कहते थे सितार या कोई भी वाद्य की अपनी खासियत होती है उसे सही सुर में करना आवश्यक होता है सुर के लिए तानपूरा मिलाना आवश्यक होता है सभी वाद्य भी।

सितार के लिए आवश्यक पल्टे और स्वर छन्दों की रचना बतायी, मीड गमक एवं अन्य तकनीक की जानकारी भी। रियाज आवश्यक है परन्तु कई घण्टे की अपेक्षा समझ कर रियाज करना अत्यन्त आवश्यक है। रियाज में धैर्य और स्वरों से प्रेम करना सिखाया, भोपाल जाने तक यह क्रम अनवरत चलता रहा। प्रत्येक दिन कुछ खिला पिलाकर कर ही लौटने देते थे।

भैया ही कहूँगा, भैया का स्वभाव सभी को आकर्षित करने वाला था। मैंने कभी भी क्रोध करते हुए नहीं देखा, बेसुरा गाना बजाना छोड़कर। धैर्य एवं उत्साह के साथ सिखाते थे, कहना था कि कोई भी वाद्य सीखना हो तो गायन भी आना चाहिए, स्वर साधना एवं स्वरों का ज्ञान परम आवश्यक है। जब तक स्वरों से प्रेम (इश्क) नहीं करेंगे लक्ष्य में पहुंच नहीं पायेंगे क्योंकि स्वरों की अलग–अलग आकृति प्रकृति एवं स्वरूप होता है उसे समझना जरूरी है, स्वर विशिष्ट प्रभाव उत्पन्न करते हैं, स्वर संगतियों से भक्ति रौद्र, करूणा, सौंदर्य जैसे भाव एवं रसों की उत्पत्ति होती है।

भैया के सितार वादन में गायकी अंग की प्रधानता हुआ करती थी, इमदादी घराने का वादन पूर्णत: परिलक्षित होता था। भैया ने सर्वप्रथम गायन अपने पिता एवं गुरू पं. विष्णु कृष्ण जोशी (ग्वालियर घराना) से रायपुर में सीखा और आपने उसी परम्परा को आगे बढ़ाया इसी बीच भैया के गले में कुछ तकलीफ होने लगी जिसके कारण भिलाई में दादा श्री बिमलेन्दु मुखर्जी से सितार सीखना शुरू किया और काफी धैर्य से इसे निभाया भी।

भैया के सितार वादन में अति विलम्बित लय, आलाप जोड़ झाला मीड एवं गमको का प्रयोग सुन्दर ढंग से होता था। सपाट तानों का बेहतरीन रूप देखने को मिलता था। एक ही राग में अलग–अलग रचनाऐं एवं अलग–अलग तालों में गतों का प्रदर्शन स्पष्ट रूप से अपने गुरुओं की परम्पराओं का पालन करते हुए दिखती थीं। वादन में गायकी के ग्वालियर घराने की परम्परा दिखाई पड़ती थी। टप्पा गायन शैली में अधिक प्रचलित है परन्तु सितार में राग काफी में टप्पा अक्सर बजाया करते थे।

आपका 1980 में मध्य प्रदेश पी.एस.सी. में सहायक प्राध्यापक के रूप में चयन हुआ और एम.एल.बी. कॉलेज भोपाल में पदस्थापना हुई और तब से लेकर सेवा निवृत्ति तक वहीं पदस्थ रहे। प्रोफेसर, विभागाध्यक्ष परीक्षा नियंत्रक एवं विषय विशेषज्ञ के रूप में ग्वालियर वि.वि. एवं रविशंकर वि.वि. रायपुर में भी अपनी सेवाएं दी हैं।

मेरा 2001 से अपनी स्वयं की अस्वस्थता के कारण अन्तराल हो गया। जब कुछ ठीक हुआ तो 2006–07 से भोपाल में भैया से शासकीय आवास में मेरी मुलाकात कई बार हुई। मेरी अवस्था (शारीरिक) को देखते हुए भैया ने कहा संगीत के बारे में लिखना शुरू करो और अपने को अच्छे कार्यों में व्यस्त रखो। भैया बंगलौर में एडमिट थे, अपने छोटे भाईजी के निधन से आहत थे वहीं से मुझे फोन किया कहा गिरिधर तुम्हारी बीमारी से लड़ने की क्षमता को देखकर मैं सलाम करता हूँ, तुम्हीं मेरे लिए प्रेरणा हो।

एक बात का उल्लेख करना अति महत्वपूर्ण है मैं सुभद्रा चौधारी जो पहले इ.क.सं.वि.वि. खैरागढ़ बाद में बी.एच.यू. में प्रोफेसर थीं भैया को आशीर्वाद स्वरूप 5000/– (पांच हजार) का चैक भेजा यह भैया के व्यवहार एवं संघर्षों को दर्शाता है।

कम उम्र में ऐसे सुरीले व्यक्ति का अवसान संगीत जगत के लिए अत्यन्त दु:ख भरा है। सच्ची श्रद्धांजलि यही होगी कि हम उनके दिखाये रास्ते पर चलें।

बारम्बार नमन।

–15/755, गुलाब नगर, समान नाका, रीवा, मो. 9424623166

यादें... डॉ. अरविंद विष्णु जोशी

यादें

बाबा भैया मेरे बालसखा

-पं. कीर्ति माधव व्यास

बचपन सचमुच लौट के नही आता किन्तु बचपन की स्मृतियां, जो कभी मिटती नही, उम के दराज पड़ाव पर और स्पष्ट होकर (HD Form) में आंखों के सामने आने लगती हैं, लगता है, खींच ले जा रही हैं फिर उन्हीं पलों को जीने के लिये।

मेरे गुरु स्व. पं. विष्णु कृष्ण जोशी जी जो हम लोगों के बीच बड़े मास्साब और परिवार में अण्णा कहलाते थे। मेरे तो अण्णा बड़े मास्साब ही थे उनके ज्येष्ठ पुत्र अरविंद स्कूल में कभी न साथ पढ़े न साथ खेले कूदे फिर भी, मेरे अनुजसम रहे, संगीत शिक्षा, हमारी प्रेमपाश बनी थी हम श्रीराम संगीत विद्यालय, बूढ़ापारा रायपुर (उस समय महाविद्धालय नही बना था) के विद्यार्थी थे शाम को कक्षाओं मे सीखने जाते थे किन्तु जौहरी ने परखकर, हम कुछ भावी रत्नों को तराशने, अपने निवास पर आने की आज्ञा दी, और प्रात: 4 बजे से 8 बजे तक, कठोर अनुशासन का पालन, तपस्या के समान समझते हुए हम उनके निवास में रियाज़ के लिये जाने लगे।

अरविंद मुझसे आयु में छोटे थे उनके अन्य भाई बहनों में बसुंधरा याने बेबी ही हम वयस्क थी अन्य तो सभी भैया लोग बहुत छोटे थे मित्रता शायद इसी लिये मात्र अरविंद जी से हो पाई।

कालांतर में साथ मे वायलिन सीखने के कारण रमाकांत से थोड़ी मित्रता बढ़ी थी जो अरविंद से छोटे मुझसे तो 8 वर्ष छोटे थे, विजय जोशी तो और 2 वर्ष छोटे थे अरविंद जी से मित्रता होने का एक और कारण भी था वह

था हम दोनों का एक जैसा स्वभाव, दोनों ही शांत प्रकृति, लजीले क्रोध आने पर भी प्रकट न होने देने वाले माता पिता के आज्ञाकारी बहुत कुछ एक सा था बड़े होते-होते में पढ़ाई के लिये सागर चला गया, अरविंद से कभी-कभी मिल पाता था, उस समय तो मोबाइल भी नहीं थे बाद में नौकरी के कारण में भिलाई मैं बस गया तब स्व. पं. बिमलेन्दु मुखर्जी के घर सितार की तालीम हेतु स्वयं और पुत्र अनिरूद्ध को भी लेकर आते थे वहां मिलना होने लगा।

सपरिवार मेरे घर पर भोजन करना संगीत चर्चा श्रीराम संगीत महाविद्यालय के कार्यक्रमों मे शिरकत, वाद्यवृन्द रचनाएं (अण्णा की, स्व. पं. दिगंबर के लेकर की और स्व. पं. गुणवन्त व्यास (मेरे अग्रज) के साथ मे बजाना , याद आता है श्री शरद काले मास्साब के घर पर साथ में बैठकर पुराने पंड़ितों और उस्तादों के ग्रामोफोन रिकार्ड सुनना जो चाबी भरकर, पिन बदल, बदल कर सुने जाते थे।

अरविंद जी के वादन में राग के स्वरूप को कायम रखकर, माधुर्य का इतना प्रमाण होता था कि रस प्रवाह सबको मोहित कर लेता था घर पर एक बार अचानक बंदर ने घुसकर बाबा भैया की बाह पर काट लिया था, बहुत दिनों तक उसका प्रभाव रहा, किन्तु कठोर परिश्रम कर वे उस दु:स्वप्न जैसी स्थिति से बाहर आ ही गये एक बार मुझे, केन्द्र शासन की स्कॉलरशिप के परीक्षार्थियों की परीक्षक समिति में स्थान मिला, तब भोपाल में उनके निवास पर आतिथ्य लाभ प्राप्त हुआ था बेटी शोना और यशस्वी पुत्र अनिरूद्ध सहित शशि वहिणी के साथ बिताये वे क्षण, बाबा भैया की स्मृतियों के विशेष पल के रूप में अब भी सुरक्षित है।

जिस दिन वह दुखद समाचार मिला, मन तड़प गया था, एक मित्र, बाल सखा, छोटे भाई जैसे उत्तम कलाकार मृदुभाषी मिलन सार बाबा भैया का न रहना बुरी तरह कचौट गया था । खैर, आज इसी बहाने अपने बालसखा बाबा भैया को पुन: श्रद्धांजलि समर्पित करता हूँ। ■

यादें... डॉ. अरविंद विष्णु जोशी

यादें

डॉ. अरविंद विष्णु जोशी को संगीत रूपी धरोहर विरासत में मिली

-डॉ. सुषमा मिश्रा

नमस्कार मैं सुषमा मिश्रा, और मुझे डॉ सुषमा मिश्रा बनाने का श्रेय जितना मेरे परिवार और गुरुजनों को जाता है उतना ही श्रेय जाता है, जोशी परिवार के ज्येष्ठ अंश को, जो कि भोपाल में निवासरत है। जी हाँ मैं बात कर रही हूँ सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ मनीषी स्व. पं. विष्णु कृष्ण जोशी के ज्येष्ठ पुत्र स्व. डॉ. अरविंद विष्णु जोशी की। इनसे मैंने संगीत की कोई विधिवत शिक्षा नहीं ली लेकिन फिर भी ये मेरे गुरुवर हैं। इसलिये नही कि डॉ अरविंद विष्णु जोशी मेरे संगीत गुरु डॉ. विजय विष्णु जोशी जी के बड़े भाई हैं बल्कि इसलिये क्योंकि इन्होने मुझे जीवन का वह महत्वपूर्ण ज्ञान दिया, जिससे मुझमें इनके प्रति औपचारिकताओं से ऊपर उठ कर आपके सम्पूर्ण परिवार के लिए अपनत्व का स्नेह का, भाव जाग गया। मुझे याद है जब आपके जीवन के अंतिम पड़ाव पर मैं आपसे मिलने गई थी किस प्रकार तकलीफ़ में होने के बावजूद आपने मेरे नाम का अंतिम अक्षर लिया था 'मा' 13 मई 1948 को जन्मे डॉ. अरविंद विष्णु जोशी को संगीत रूपी धरोहर विरासत में मिली थी। आपके पिता स्व. विष्णु जोशी जी ने छत्तीसगढ़ में संगीत का अलख जलाया था और ये प्रण लिया था कि संगीत को घर घर में एक सम्मानित रूप में पहुंचाएंगे , और उन्होंने पहुँचाया भी। चूकिं घर में संगीत का माहौल पहले से ही था इसलिये बालक अरविंद का रूझान संगीत की ओर होना कोई आश्चर्यजनक बात ना थी । उन्होंने बाल्यकाल से ही गायन विद्या की शिक्षा अपने पिता से ली गायन में मध्यमा की परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात आपका रुझान सहसा ही सितार की ओर हुआ पिता ने अपने पुत्र की इस रूचि को समझा और प्रारंभिक रूप से स्वयं सितार की शिक्षा देने लगे, उसके बाद आपने पं. बिमलेंदु मुखर्जी से सितार की विधिवत शिक्षा प्राप्त की । मुझे लगता है ये सारी जानकारियाँ या इससे कुछ और ज्यादा आप सभी को इस पत्रिका के अन्य लेखों में जरूर मिलेगी। मैं आप सभी से साझा करना चाहती हूँ डॉ. अरविंद विष्णु जोशी का मुझसे जुड़ा वह संस्मरण जिसने उन्हें मेरे Sir से पिता का स्थान दे दिया मेरी Ph.D के दौरान मेरा भोपाल, इंदौर, धार, ग्वालियर बनारस का दौरा लगता ही रहता था, उस समय स्व. अरविंद विष्णु जोशी जी की अर्धांगिनी श्रीमती अर्चना अरविंद जोशी का साथ मुझे बराबर मिला, और सच कहूँ सौभाग्यवश आज भी मिल रहा है, लेकिन उस समय, अपना सब काम एक तरफ़ करके अर्चना जी ही हर जगह मेरे साथ गई और मेरी थीसिस के लिये जरूरी जानकारियाँ एकत्रित करवाईं । उस समय तक मैं सिर्फ अर्चना जी से जुड़ी थी, मुझे इस बात का ज्ञान ही नहीं था कि अर्चना जी जिन जिम्मेदारियों को भोपाल में निश्चित हो छोड़कर मेरे साथ इधर उधर निकल रहीं हैं, उन्हें उनकी अनुपस्थिति में कौन भली-भांति सम्हाल रहा था, वो ऐसा इसलिये क्योंकि उस समय मेरी शादी नहीं हुई थी और मुझे इस बात का कोई अंदाजा ही नहीं था कि गृहस्थ जीवन में हम किन किन जिम्मेदारियों से बंध जाते हैं। खैर ये तो हुई एक बार की बात इसी बीच मेरी शादी हो गई, किस्मत से ससुराल पक्ष भी अच्छा मिला, जिन्होंने मुझे और मेरी पढ़ाई को समझा, मुझे आज़ादी दी, अपने सपने पूरे करने की। इसी बीच मैं माँ भी बनी और मेरे जीवन में एक नया पड़ाव आ गया । मेरा बेटा जब मात्र 4 महीने का था तब मुझे अपनी Ph.D के काम से ग्वालियर जाना था । मैंने पुन: अर्चना जी से संपर्क किया और वो खुशी खुशी तैयार भी हो गई लेकिन इस बार एक नया साथ और मिला चूंकि इस बार मेरे साथ मेरा 4 महीने का बेटा भी था इसलिये भी मैं भी तुम लोगों के साथ चलता हूँ फिर क्या हम चल दिये ग्वालियर की ओर जब हम वहाँ पहुँचे तो हमें पता चला कि होटल में हमारे लिये सिर्फ एक ही कमरा बुक हुआ है। अरविंद जी ने कहा कोई बात नहीं हम इसी में रह लेंगे मुझे आज भी उनके वो शब्द याद हैं सुषमा तुम संकोच बिल्कुल भी मत करो तमुमें और मेरी शोना (अरविंद जी की पुत्री) में कोई अंतर नहीं है, तुम मेरी बेटी हो तुम्हारा बच्चा हमारा नाती । ऐसे थ अरविंद जी मै उनसे बाद में जुड़ी लेकिन उन्होंने मुझे हमेशा से अपनी बेटी माना। सौभाग्य से आज भी उस घर में मेरा वही स्थान है।

जब हम अच्छा खाने, अच्छा पहनने और अच्छा दिखने में खर्च करते हैं
तो अच्छा पढ़ने-लिखने और सोचने-समझने की खुराक में खर्च क्यों न करें !

कलासमय

प्रबंध संपादक

सम्पर्क- जे-191, मंगल भवन, महावीर नगर, ई-6, अरेरा कॉलोनी, भोपाल- 462016 फोन : 0755-2562294, मो.-94256 78058

ई-मेल : kalasamaymagazine@gmail.com / bhanwarlalshrivas@gmail.com

पुस्तक समीक्षा

कविताएँ जो जीना सीखा दें ...

डॉ. प्रवीणकुमार न. चौगुले

समकालीन हिंदी कविता के प्रमुख हस्ताक्षर के रूप में राग तेलंग जी का नाम आदर से लिया जाता है। वे अपनी अनौखी शैली, गहन संवेदनशीलता, तीव्र भावाभिव्यंजना, दिल को छू लेने वाली सहजता, विषय-विविधता के कारण चर्चित हैं। वे शब्दों और भावों के अनूठे जादूगर हैं, जो पाठकों की अंत:चेतना को घेर लेते हैं और विचार करने के लिए बाध्य कर देते हैं। जीवन के अनगिनत पहलुओं से जुड़ी सूक्ष्म-सी-सूक्ष्म संवेदनाओं को लेकर अपनी बेजोड़ कविताओं के माध्यम से उन्होंने जीवन एवं प्रकृति की गहन अनुभूतियों को समाज-सम्मुख रखने का प्रयास किया है। कवि का यह कहना कि 'कला अंतर्मन से उपजती है तथा नकली जीवन जीकर असली कलाकार नहीं हुआ जा सकता' और यह जीवन और कला के प्रति की सच्चाई और ईमानदारी उनकी कविताओं में साफ-साफ झलकती है। सृजन की पीड़ा के संदर्भ में कवि का मंतव्य है 'लिखते हुए लिखे गए विषय - कथ्य की पीड़ा आपको भी स्पंदित करती है, रूलाती है, तकलीफ देती है, अगर आँसू भी आ जाते हैं, कहा जाए तो अतिश्योक्ति नहीं।' तभी तो सृजन की पीड़ा से गुजरती हुई ये 'आह' की कविताएँ सच्चाई की नींव पर जीवन जीना सिखा देती हैं।

पिछले कई वर्षों से साहित्य-कला, विज्ञान एवं शिक्षा के क्षेत्र में समान रूप से सक्रिय राग तेलंग जी के अब तक आठ कविता-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं, जो इस प्रकार है - 'शब्द गुम जो जाने के खतरे', 'मिट्टी में नमी की तरह', 'बाजार से बेदखल', 'कहीं किसी जगह', 'कई चेहरों की एक आवाज', 'कविता ही आदमी को बचाएगी', 'स्कूल को बदल डालो' और 'आई का कहा'। साथ ही एक गजल-संग्रह, 'समय की बात' यह निबंध-संग्रह, दो 'ई-बुक्स', बच्चों के लिए कुछ लेखन, ढेर सारे रेखाचित्र एवं देश की लगभग सभी प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में उनकी रचनाएं प्रकाशित हुई हैं। इसके साथ ही उनकी कुछ कविताओं के अंग्रेजी, मराठी और पंजाबी में अनुवाद भी प्रकाशित हुए हैं। वे प्रतिलिपि सम्मान, वागीश्वरी पुरस्कार, दिव्य अलंकरण रजा पुरस्कार (म.प्र. शासन) तथा विशिष्ट संचार सेवा पदक (भारत सरकार) से सम्मानित है। प्रस्तुत शोधालेख हेतु उनके 'आई का कहा' इस कविता-संग्रह की कविताओं को आधार-स्वरूप चुनकर विचार-विमर्श किया गया है।

राग तेलंग जी का 'आई का कहा' यह कविता-संग्रह बोधि प्रकाशन, जयपुर द्वारा फरवरी, 2020 को प्रकाशित है, जिसमें कुल 105 कविताएं संकलित हैं। उन्होंने इस कविता-संग्रह में वर्तमान समय की कठोर यथार्थ स्थिति, इंसान की मानसिकता एवं प्रवृत्तियां, प्रकृति के प्रति की आसक्ति एवं उत्तरदायित्व, नैतिक मूल्यों की सीख एवं आशावाद को लेकर अपनी कविताओं का सृजन किया है। कवि एक से बढ़कर एक कविताओं की बेहतरीन श्रृंखला रच देते हैं, जिनकी गहराईयों तक पहुंचते-पहुंचते पाठक दिलो-दिमाग की विभिन्न अवस्थाओं से गुजरता है। बेचैनी, पीड़ा, घृणा, तृप्ती, आशा इन मनोवेगों की कड़ी का चक्र गुंथता रहता है और उसका निचोड़ एक ऊर्जा में तपदिल हो जाता है, जो जीवन जीने की राह को प्रेरक सिद्ध करता है। इन कविताओं में अनोखी कल्पनाओं एवं एहसासों की अनुभूति बार-बार होती रहती है, जहां कवि हमें एक अजीब-सी दुनिया की ऊंचाइयों तक पहुंचाता है। यह कवि के सृजन की पीड़ा की वह 'आह' है, जिसे हम शब्दों में बयान नहीं कर सकते, सिर्फ महसूस कर सकते हैं। एक से बढ़कर एक अह्लादक सूक्ष्म अनुभूतियां प्रकृति और जीवन के कोनों-कोनों से ढूँढ़-ढूँढकर कवि निकालते हैं और हमारे सामने परोसते हैं, जिससे की हम भी रूबरू हो उन सूक्ष्म सुखद-दुखद अनुभूतियों से, जिनसे हम गुजरते तो हैं लेकिन महसूस नहीं करते। कवि अपनी कविताओं के माध्यम से हमें वहां तक बेहद आसानी से ले जाते हैं। शायद इसीलिए संतोष चौबे जी उनके बारे में विचार प्रस्तुत करते हैं - 'राग तेलंग समकालीन हिंदी कविता के उन विरले कवियों में से हैं जो अछूते विषयों को छूने का जोखिम उठाते हुए बेहद सरलता से चीजों और उनके जटिल समुच्चयों को हल करने का हुनर पाठक में प्रवेश कराते हैं। कई जगहों पर कवि की प्रतिभासृष्टि की उड़ान इतनी ऊंची होती है कि जहां केवल एक सहृदय पाठक ही पहुंच पाता है और फिर वहां तक पहुंचने के लिए या उसे समझने हेतु हमारे सक्षम नजरिए एवं गहरी सोच की मांग कविता करती है।

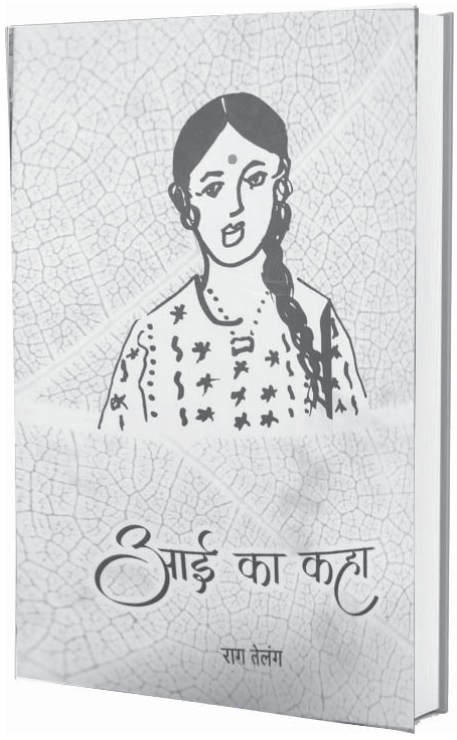

समाज को कवि एवं कविता के प्रति सम्मान रखने की भावना, समाज के लिए उनकी अहमियत तथा आज कल के कुछ कवियों की पोल खोलने को लेकर कुछ कविताओं का सृजन कवि ने किया हुआ है। कवि कहते हैं कि समाज के कवि को हमेशा दोयम दर्जा दिया है, उसके कवि-कर्म की सार्थकता पर सवाल उठाए हैं। लेकिन जब एक कविता ने सबको एक साथ

जगाकर खड़ा कर दिया तब सबने मिलकर उसे सम्मान दिया और उसका जयजयकार किया –

कवि तब मुस्कराया
जब सबको
एक साथ जगाकर
खड़ा कर दिया
एक कविता ने
और अंत में
सबने सम्मान से कहा
जय हे, जय हे, जय हे
जय जय जय जय है।

इसी प्रकार कवि एवं कविता की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए कवि 'भावार्थ' कविता में कहते हैं कि कवि तो बहुत पहले कविता लिखकर चला जाता है, लेकिन उसमें इतनी अर्थवत्ता होती है कि उसके अर्थ बहुत देर बाद में समझ आते हैं। साथ ही कविता के सृजन की बेहद गहन प्रक्रिया आपको जिस थकान के पल तक लेकर जाती है उसी 'ओह' इस पके हुए शब्द से असली कविता की शुरुआत होती है, इस बात को बेहद अनोखे ढंग से 'कविता का आलाप' कविता बयाण करती है। तो 'प्रेम वाया इन-डायरेक्ट' में कवि कहते हैं कि बाकी सभी प्रेमियों से अधिक तुम्हें प्यार करने वाले एक कवि को तुम प्रधानता दो तो वह तुम्हारे प्रेम की अप्रत्यक्षत: यादगार निश्चित बना देगा, जैसा कहीं वह तुम्हें मोनालिसा बना देगा या फिर कालिदास ही।

जीवन में समाहित पदार्थों में जान डालने, ऊर्जा भरने के काम में कवि मग्न है, जो सबसे अहम काम है। ऊर्जा भरने के लिए बल लगता है और इसे सिर्फ कविकर्म ही उचित अंजाम दे सकता है। 'और' कविता के माध्यम से कवि ने कविकर्म की महत्ता पर प्रकाश डाला है, जिसकी अहमियत साक्षात सृजनकर्ता के समान ही है –

मैं
पदार्थ में
ऊर्जा भरने के काम में लगा हूँ
और
इस काम में
बल लगता है।

कवि जहां एक तरफ कवि एवं कवित्व के सम्मान की बात करते हैं, वही दूसरी तरफ 'अंतराल' इस कविता के माध्यम से आज कल के कुछ ऐसे कवियों पर तीखा व्यंग्य भी कसते हैं, जो अंतराल में फुर्सत मिलने पर कविताएं लिखते हैं। अंतराल में लिखने वाले कवि की कविता में अपने-आप ही विज्ञापन घुस जाता है और जब तक वह यह समझ सके कविता में अंतराल आ जाता है। कवि यहां ऐसे कवियों से कहते हैं कि आती-जाती साँसों के बीच अंतराल नहीं होता। यह तो एक लगातार प्रक्रिया है। असली कवि की जान उसकी कविता में बसती है, उसके लिए कोई अंतराल नहीं होता। लेकिन अंतराल का कवि इस बात को कहाँ समझ पाता है। बेहद मार्मिकता से आज कल के ऐसे कवियों की पोल खोलते हुए वे लिखते हैं –

आती-जाती
सांसों के बीच
अंतराल नहीं होता कवि।

कवि ने आज की यथार्थ स्थिति को कुछ कविताओं के माध्यम से चित्रित किया है जो अपने आप में बेजोड़ बन पड़ी हैं। आज की कठोर वास्तविकता को बयाण करती 'स्कूल और बच्चे' कविता पूरे शिद्दत के साथ आज कल के बच्चों की घिनौनि मानसिकता पर प्रकाश डालती है। हम बच्चों को बुढ़ापे की लाठी समझते हैं और इसी उम्मीद में उनके उज्जवल भविष्य के लिए हम उन्हें स्कूल भेजते हैं, लेकिन बच्चे हैं कि स्कूल में रहकर इतने तैयार हो जाते हैं कि स्कूल से निकल कर वे घर लौटने की बजाय सीधे बाजार का रूख ले लेते हैं और हम ताउम्र उनकी राह देखते हुए अकेले रह जाते हैं। 'वो और वे' इस एक छोटी-सी कविता के माध्यम से कवि ने उपभोक्ता एवं निर्माणकर्ता के बीच की खाई को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। एक वो लोग होते हैं जो सिर्फ पूल पर चलते हैं, जिन्हें गहराईयों से डर लगता है और एक वे हैं जो पूल बनाते हैं खाई में उतरकर।

आज के दौर की हवा कुछ अलग सी प्रतीत होती है, जैसे गुम ही हो गई हो। आज लोग एक-दूसरे से बातें नहीं कर रहे। सिर झुकाए अपने-आप में खोए हुए हैं। हवा जो संवाद का माध्यम हुआ करती थी वह आज कहीं नहीं है। इसलिए आज की सच्चाई को बयाण करती कविता 'हवा' में कवि प्रश्न पूछते हैं कि ये कहाँ खो गए हैं हम? ये कैसी हवा है, जिसमें हमारी हवा बह गई। 'त्रिकाल' इस कविता के माध्यम से आने वाले समय के बारे में फिक्र जताई गई है। इंसान लगातार खुदगर्जि की हदों को पार करता चला जा रहा है, यहां तक कि जीवन-मूल्य उसके लिए कोई मायने नहीं रह गए हैं। एक समय था जब हम सबके जीवन के लिए प्रार्थना करते थे। आज के समय में हम सिर्फ खुद के लिए करते हैं। एक समय ऐसा होगा जब प्रार्थना ही नहीं रहेगी, बचेंगे तो केवल हम और मृत्यु का भय। इसलिए चिंता व्यक्त करते हुए कवि लिखते हैं –

एक समय
हम प्रार्थना करते थे
सबके जीवन के पथ में
एक यह समय
हम प्रार्थना करते हैं
सिर्फ अपने लिए
एक समय होगा
जीवन में से प्रार्थना चली जाएगी
बचेंगे तो
केवल हम और मृत्यु का भय।

जीवन के वास्तविक सत्य को उघाड़ते हुए कवि 'जोकर' कविता में कहते हैं कि एक जोकर ही है जो अपने खेल से जीवन में हमें जोकर बन जाने से बचाता है। आज के समाज की मानसिकता का उद्घाटन करते हुए कवि ने अपनी और अपनेवालों की जगह रोके रखते हुए अपनी ही बारात निकालते लोगों पर तीखा व्यंग्य कसा है। लायक और प्रतिक्षारत आदमी की विवंचना को दर्शाते हुए कवि ने 'ट्रेन की सीट' में आज के समय की कठोर वास्तविकता का चित्रण किया है। साथ ही किसी राजनीतिक आधार के बगैर आज नौकरी मिलनी कितनी मुश्किल है, इस सच्चाई की ओर 'राजनीतिक आवाज' कविता के माध्यम से ध्यान आकृष्ट किया है।

कवि आने वाले संकट की ओर हमारा ध्यान 'पेड़, हाथ और जुबान'

इस कविता के माध्यम से आकृष्ट करते हैं। आज सभी जगह मशीनें काम कर रही हैं। कारीगरों को इन मशीनों की वजह से भूखों मरने की नौबत आन पड़ी है। पहली पेड़ काटती थी मशीनें, आज तो उसने कारीगरों के हाथ ही काट दिए हैं। आगे आने वाले भविष्य में शायद जुबान भी काट दें। मशीनों ने हमारे जीवन को तबाह कर रखा है। इन मशीनों ने आदमी को ही कुचल डाला है। आदमी इन मशीनों के पुर्जों में तब्दील हो गए हैं। हर मशीन की एक चाबी है और मशीन बेचने वाले एक आदमी के पास चाबियों का गुच्छा है याने कुछ धनिक मशीन बेचनेवालों ने इंसान को भी मशीन बनाकर सब पर अपना कब्जा किया हुआ है और इस कठोर सच्चाई को 'मशीन की चाबी' यह कविता बखूबी बयाण करती है।

संग्रह की कुछ कविताओं में नारी की दयनीय हालत एवं उसकी विवशता की अभिव्यक्ति हुई है। घर की नारी घर में ऊर्जा भरने वाली नाभिकीय ऊर्जा होती है, लेकिन उन्हें नजर अंदाज करने की हमारी आदत बन चुकी है। इसीलिए कवि कहते हैं कि हम युद्धों पर तो यकीन करते हैं लेकिन घर में वास करने वाली असीम शांति पर विश्वास नहीं करते हैं। साथ ही हजारों सालों से नारियों की जो दयनीय स्थिति है उसको दर्शाते हुए वे इतनी ज्यादा बातें क्यों करती हैं इसकी तलाश कवि 'बातूनी' कविता में करते हैं। सही कारण जानने के लिए जब कवि हजारों साल पहले बनी गुफा तक जाते हैं तो वे पाते हैं कि वहां रोशनी और हवा न के बराबर है, हर पल जानवरों का डर है और जहां रहने के बारे में सोचा ही नहीं जा सकता, ऐसी स्थिति में उसने हजारों साल चुपचाप तन्हा गुजारे हैं। जहां गले से आवाज निकलना जान जाने का सबब बन जाता है। तो इस सबसे वाकिफ होते हुए दावे के साथ कहा जा सकता है कि वे इतना बोलती हैं, तो वह उन हजारें सालों में फैली लाखों मील लंबी तन्हाई को लोगों को बातें करके बांट लेना चाहती है, लेकिन कवि ने जताया है कि इसके लिए दुनिया की समूची आबादी भी कम पड़ जाएगी।

प्रस्तुत काव्य-संग्रह की कुछ कविताओं में बेहद दिलचस्प तरीके से इंसान की मानसिकता एवं प्रवृत्तियों को संवेदनात्मक धरातल पर प्रस्तुत किया गया है। आज इंसान इतनी हद तक बेफिक्र और खुदगर्ज हो गया है कि वह किसी की भी सुनने को तैयार नहीं। अब जब हॉर्न बजाना ही बंद हो गया तो फिर 'हॉर्न प्लीज' का दौर, जो एक-दूसरे का ख्याल करने का प्रतीक था, वह दौर अब खत्म हो चुका है, इस प्रकार के व्यंग्यात्मक विचार 'हॉर्न' यह कविता प्रस्तुत करती है। इंसान की जिंदगी एक जैसी ही है सिर्फ नाम नए हैं, स्थान अलग-अलग हैं लेकिन दर्द वही पुराना है, इस वैश्विक सत्य पर 'मेरे जैसा भी कोई है' कविता प्रकाश डालती है। नौकरी पेशा इंसान की विवशता, उम्मीदों पर टिकी हुई उसकी जिंदगी और फिर भविष्य के विचार से सताते डर को 'पहली तारीख' कविता बखूबी प्रस्तुत करती है। ऐसी अन्यान्य कई कविताएं हैं जो इंसान की प्रवृत्तियों को बेहद संजीदगी के साथ प्रस्तुत करती हैं।

कवि की और एक खास बात है कि वे प्रकृति एवं प्रकृति के अन्य जीवों के प्रति बेइंतहा आसक्त हैं तथा यथार्थ शोचनीय स्थिति में वे उनके प्रति हमारे उत्तरदायित्व को निभाने की मांग करते हैं और इस बात को उनकी कई कविताओं में महसूस किया जा सकता है। कवि प्रकृति की हानी के बारे में सचेत करते हुए आंखें खोलकर जगने के लिए बद्ध करना चाहते हैं। यह हरी-भरी झाड़ियाँ उन पर विचरण करते पंछी, ये सब प्रकृति के अविभाज्य हिस्से हैं। हम जान-बूझकर उनकी तरफ अनदेखा कर रहे हैं। पेड़ों एवं जंगलों के बेहिसाब काटने से हमारी वनसंपत्ति तथा वहां रहने वाले अन्य जीव भी खत्म होते जा रहे हैं। हरे रंग की जगह दूसरा रंग अपना विस्तार जमा रहा है। तो कवि हमें जागृत करते हुए कहते हैं कि आँख खोलना यानी जागना नहीं है, जागना यानी आँख का खुलना है। प्रकृति के अंग पेड़, पशु, दृश्य, ध्वनि, प्रकाश ये सब हमारे जीवन के एक अहम हिस्से हैं। हमें इनका अनादर नहीं करना चाहिए। इसलिए कवि कहते हैं -

आँख खोलना
यानी जागना नहीं
जागना है
आँख का खुलना।

जीवन एवं सृष्टि की कई अनगिनत मौन आवाजें होती हैं, जिनके एहसासों से हम गुजरते हैं, जो मौन होकर भी बेहद तीक्ष्ण होते हैं। प्रकृति के अनगिनत हिस्से जैसे हवा, दूब, ओस की बूंद, प्रकाश किरण, ख्यालों के रंग, पत्ते, नदी, हमारी आँखें, याद, तितली ये कार्यरत तो रहते हैं, लेकिन बगैर आवाज के, खामोशी के साथ, जिनका एहसास मात्र किया जा सकता है। बेहद सुंदरता एवं संवेदनशीलता के साथ कवि ने इस बात को 'बेआवाज की आवाजें' कविता में अभिव्यक्त किया है। प्रकृति की जो अनगिनत घटनाएं होती हैं जो हमें उठने के लिए, संघर्ष करने के लिए, उम्मीद जगाने के लिए आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करती हैं उसमें से संगीत निकलता है। एक बीज का पीपल के कोटर में उठना, छलांग से पहले की बिल्ली की उठान, एक बच्चे का पहला कदम जब भी कवि देखते हैं तो वे भी उठना चाहते हैं। इस उठने का एक संगीत गूँजता है अंदर और साज के माफिक कवि 'साज की आवाज' कविता में बजना चाहते हैं, उठना चाहते हैं।

कवि कोयल के प्रति अपनी कविताओं में बहुत ज्यादा आसक्त प्रतीत होते हैं। आखिर क्यों न हो कोयल प्रकृति की अनोखी देन है। कोयल की मीठी कूक हमें हमेशा ही मोहित कर देती है। यह कोयल वैसे तो एक ही गीत गाती है, लेकिन सदियों से सारे कवि उस गीत के बोल तलाश रहे हैं, सारे संगीतकार उसका संगीत ढूँढ़ने में लगे हैं, गणितज्ञ आवृत्ति की गणना तक आकर रूक गए हैं। सारे लोग थक गए एक ही गीत को लेकर। यह प्रकृति की कैसी अनोखी देन है। कवि कहते हैं कि कोयल को देखकर मन प्रसन्न क्यों होता है मैं नहीं जानता पर इतना है कि हमारा सारा जीवन कोयल की प्रतीक्षा में अब भी है। बहुत ही बेहतरीन कल्पना का प्रयोग और बहुत ही साधारण शब्दों में प्रकृति के अनन्य साधारण महत्व की अभिव्यंजना एक ही .. इस कविता में की गई है।

आज महानगरीय संस्कृति प्रकृति तथा उसके मनमोहक दृश्यों से कटती जा रही है। महानगरीय जीवन की होड़ ने प्रकृति को ही अपने जीवन से हटा दिया है। आज महानगरों की बस्तियों में प्रकृति के सुनहरे दृश्य ओझल हो गए हैं। आंगन, बिजली का तार, उस तार पर बैठी कोई चिड़िया उसके पार्श्व का वह दृश्य यह सब कहीं ओझल हो गए हैं। इसकी सिर्फ कल्पना की जा सकती है। प्रकृति के ओझल होने से कवि अपने-आप को ही अपने सामने से ओझल महसूस करता है। साथ ही आज के महानगरों की मर्तबान संस्कृति की विभीषिका को 'मर्तबान की अंतिम से पहली मछली' कविता बयाण करती है। मर्तबान की मछलियों के असमय अवसान का शोक पानी में घुला है। कुछ आवाजों की गाथा पानी के बुलबुलों से ज्यादा नहीं होती और पानी से बाहर तो

बुलबुलें भी कुछ नहीं होती। सूर्य भी पानी से अस्त हो जाता है तो इन छोटी मछलियों की आवाज का क्या? वह तो ऐसे ही धुल जाएंगी। इस बेहद संवदेनशील बात को इस कविता के माध्यम से उठाया गया है।

'बीज के पंख होते है' इस कविता में मानव एवं प्रकृति का अद्‌भुत समन्वय दिखाते हुए उनके परस्पर अनोखे रिश्ते को कवि ने वाणी दी है। हमारे जैसे ही प्रकृति के कुछ अन्य जीव है, हमारी जैसी ही उनकी भी जिंदगी है, वे भी प्रकृति के एक अभिन्न अंग हैं और जो हरदम हमारे इर्द-गिर्द कही-न-कही मंडराते रहते हैं। लेकिन हम अपनी जिंदगी में इतने मशगुल हो चुके हैं कि उनकी तरफ हमारा ध्यान ही नहीं और उन्हीं की तरफ 'ध्यान नहीं जाता' कविता के माध्यम से कवि हमारा ध्यान खींचना चाहते हैं। साथ ही प्रकृति के पंचतत्व यानी पानी, हवा, रोशनी, मिट्‌टी और आकाश से ही हमारा जीवन है। अत: इनकी हमें कद्र करनी चाहिए, इस बात को कवि 'पंचतत्व' कविता में स्पष्ट करते हैं। इंसान को इसी बात से कवि 'अंकुर' कविता के माध्यम से भी आगाह करते हैं।

कवि ने अपनी कई कविताओं में पानी की अहमियत को समाज-सम्मुख रखने का प्रयास किया है। 'तीन घूँट पानी' से ही पानी की महत्ता पर कवि ने प्रकाश डाला है। प्यास का बुझना, मन की तृप्ति पानी से ही संभव है, इसलिए इंसान को जीवन में पानी की अहमियत को नहीं भूलना चाहिए, ऐसा संदेश यह संक्षिप्त कविता दे जाती है -

दूसरे घूँट में प्यास बुझती है
तीसरे घूँट में तृप्त होता है मन
फिर अंतस से
पहले घूँट की आवाज आती है
पानी नहीं तो कुछ नहीं।

जीवन में पानी की अहमियत एवं उसके प्रति की कवि की आसक्ति को 'सफर के पहले' कविता दर्शाती है। सफर के पहले पानी पीने, नहा-धोने के बाद पानी से दुआ करनी होगी कि वह हमारे भीतर उतरे। यह पानी के साथ पानी होकर आगे की ओर जाने का सफर है। पानी हम सबके बीच माध्यम है। एक बेहतरीन बात को कवि 'माध्यम' इस कविता के माध्यम से उठाते हैं कि पानी हमारे जीवन में पुल भी है और जहाज भी, दोनों ही पार ले जाने के माध्यम है।

हमारे जीवन में कुछ ऊर्जाएं तैयार होती हैं हम तक पहुंचने के लिए, हमें सिर्फ उनकी तरफ होने का एक छोटा-सा प्रयास मात्र करना होता है, लेकिन हम है कि अपने ही खिलाफ लड़ते रहते हैं। इस बात की पुष्टि बखूबी ढंग से कवि ने 'संकेत' इस कविता में की है। इसी प्रकार हम रोशनी की तरफ सिर्फ कुछ घूमकर या फिर अपना सिर कुछ ऊपर उठाकर रोशनी को पा सकते हैं। इस बेहद सीधे-सादे लब्जों में रोशनी पाने की तकनीक को 'तकनीक' कविता हमारे सामने पेश करती है, जिससे की हमारी आँखें खुल सके। ये हवा, रोशनी जीवन के ऊर्जा स्त्रोत हैं, जो मन में जीने का उत्साह जगाते हैं। इन्हें सिर्फ हमारे मन की खिड़की को खोलकर अंदर आने देना चाहिए और फिर आप देखेंगे कि अंधेरे में रोशनी होगी, दृश्य बदल जाएगा, आपका मन बदलेगा और आप उत्साह से उठकर आपके जीवन के दरवाजे को खोलेंगे। उस उत्साह से आप अपनी परिधि से बाहर जाकर सोचेंगे। बाहर आकर सितारों भरे आसमान को नजर में उतारेंगे यानी अपनी सीमाएँ विशाल होंगी। उस रोशनी में आप नहाएंगे और फिर इस सारी ऊर्जा एवं सोच को लेकर जीने की ओर मुड़ेंगे।

इस संग्रह की कई कविताओं से हमें जीवन जीने के लिए सूक्ष्म-सी-सूक्ष्म नसीहतें मिलती हैं। साथ ही कुछ कविताएं आशावाद को लेकर सामने आती हैं। बहुत सी कविताएँ हमें संवेदनाओं के धरातल पर कुछ-न-कुछ परोसती रहती है। जैसे 'छोटी सी बात' कविता नसीहत देती है कि शांति से ही किसी भी समस्या को हल किया जा सकता है। किसी समस्या को चिल्लाने से सुलझाया नहीं जा सकता, चिल्लाना तो युद्ध की तरफ ले जाता है। साथ ही जीने की सीख देने वाली 'रूको मत' यह एक और कविता है। जिंदगी में कहीं रूकना नहीं है। जो कहा गया है उसे गुनो जो कहा जाना है उसे बुनो और आगे बढ़ो। तुम्हें तुम्हारी मंजिल तक पहुंचना है बिना रूके इससे पहले कि तुम्हारी आवाज पलटकर तुम तक पहुंचे। ठीक इसी प्रकार चलते-चलते रूक गए आदमी के पीछे रूकने से चलता हुआ रास्ता भी रूक जाता है। बाद में आए हुए को दूरी बनाकर रूकना आवश्यक है, क्योंकि पहले रूके हुए को तो रूकना ही है, लेकिन उसके पीछे की दूरी न बनाए जाने के कारण फिर पूरा का पूरा रास्ता ही रूक जाता है। इस मार्मिक उदाहरण के द्वारा कवि इंसान को सचेत करना चाहते हैं। जीवन की इस अद्‌भुत सच्चाई को बड़ी ही मार्मिकता से कवि 'रूका हुआ रास्ता' कविता में अभिव्यक्त करते हैं -

चलते-चलते
रुक गए आदमी के पीछे
एक आदमी आकर रुक गया है
इस बाद में
रुक गए आदमी की वजह से
चलता हुआ रास्ता भी रुक गया है
पहले रुके हुए को तो रुकना ही था
उसका दोष नहीं है
जो पीछे आता है
उसे दूरी बनाए रखना नहीं आए तो
पूरा का पूरा रास्ता रुक जाता है।

आज इंसान को जिसकी सख्त जरूरत है उस हकीकत को छेड़ने की कोशिश कवि ने 'फेरीवाले' कविता में की है। रविवार के दिन जब हम हमारा सारा काम निबटाकर आराम कर रहे होते हैं, तभी उन फुर्सत के क्षणों में हमें अपने बारे में, अपने जीवन एवं संसार के बारे में सोचने का मौका मिलता है। उस दिन कई फेरीवालों की आवाजों से हम गुजरते हैं, ये 'समय' होता है जो फेरीवालों के भेस में हमारा दरवाजा खटखटाता है, जो हमें कई जीवन की मौलिक बातों पर विचार करने के लिए प्रेरित करता है, लेकिन उसकी ओर हम अनसुना करते हैं। फेरीवाले जैसे 'झाड़ू ले लो' पुकारने वाला हमें सारी धूल झाड़कर नए होने को कहता है, 'वेल्डिंग करा लो' पुकारने वाला हमें जुड़ाव वाले टूट रहे संबंधों को मजबूत टांके लगाने को कहता है, 'जूते पॉलिश करवालो' पुकारने वाला यात्राओं के लिए कदमों को तैयार करने को कहता है और ऐसे कई बेआवाज फेरीवाले भी जो कुछ न कुछ कहते हैं। लेकिन उनकी आवाज हमें उस दिन गैरजरूरी लगती है और फेरीवालों के रूप में 'समय' आकर अपने ठीक समय पर अपना दरवाजा खटखटाता है और हमें लगता है हमारे मनोरंजन के दिन के समय में व्यवधान है इन फेरीवालों की ऐसी बुलंद आवाजें।

एक औजार जिससे की हम खुद को खोलकर देख सके कि हमारे अंदर सब कैसे चलता है और हम बेहतर हो सकते हैं। हम खुद को जानने पर औरों को भी जान सकेंगे और बाकी सब भी फिर बेहतर हो जाएंगे। कवि 'एक औजार चाहिए जो कि' कविता के माध्यम से कहना चाहते हैं कि खुद को बेहतर बनाने के बाद हम सब को भी उसी तरह जानेंगे और बाकी सब भी बेहतर हो जाएंगे। इसके लिए खुद को खुद तक पहुंचाना नितांत आवश्यक है। इसके लिए एक औजार की आवश्यकता है, जो खुद को खोल सके –

मैं खुद को जानूँगा
यूँ सबको जान जाऊँगा
सब और बेहतर हो जाएँगे फिर
मुझे इस सबके लिए
कुछ या एक औजार चाहिए
जो मुझे मुझ तक पहुंचा सके।

आज की भागदौड़ भरी जिंदगी में लोग हँसना भूल गए हैं। इसलिए 'हँसो-हँसो' कविता में कवि कहते हैं कि हर उस बात को महसूस करो और मन ही मन हँसो। आज की इस खोखली जिंदगी में सबके भीतर खालीपन भरा हुआ है इसलिए सब फिजूल बड़बड़ा रहे हैं। कोई किसी और की बात कर रहा है और जिससे कर रहा है वह भी योग्य नहीं है और तो और आश्चर्य की बात यह है कि इस बात की खबर सबको है, फिर भी सब दिखावट भरी जिंदगी को निभा रहे हैं। इसी प्रकार 'मिलना', 'वाक्य', 'उसने कहा था', 'सीढ़ी', 'फासला' आदि कविताओं से हमें कवि कुछ-न-कुछ सीख देकर जाते हैं।

आधुनिक तंत्र ज्ञान के कारण संवेदनशून्यता के मंडराते खतरे को प्रतीकात्मक ढंग से कवि ने भाषा की कूक कविता के माध्यम से उजागर किया है आज के वैश्वीकरण के दौर का एक मुर्गा अपनी तकनीकि दुनिया को समूची दुनिया पर थोपना चाहता है वैश्वीकरण के इस दौर में पुरातन भाषाएं खत्म होने की कगार पर हैं। आधुनिक तंत्र ज्ञान के इस युग में लोग आपसी संवाद तक को भी भूलते चले जा रहे हैं वे सिर्फ तकनीक की भाषा समझते हैं लेकिन ऐसे दौर में भी कवि की आशा एक कोयल के रूप में प्रगट होती है जिसने कूक लगाना नहीं छोड़ा, जो कि प्रकृति की पहचान है समय बीतने पर वैश्वीकरण के इस युग का मुर्गा जिसका प्रतीक है वे आधुनिक तकनीक का बिगुल बजाने वाले अपने ही लोगों के शिकार हो जाते हैं और यहा तकनीकी दुनिया भी ऊर्जा के अभाव में खत्म होती जाती है। लेकिन कोयल अपने कूकने को न छोड़ते हुए बार-बार आवाज की स्मृतियां रचती चली जाती है, जो धीरे-धीरे लोगों को जानी-पहचानी हो जाती है। कवि कहते हैं कि यह कोयल की कूक भाषा के उदयकाल की बात है जो अपने साथ पुरातन भाषाओं को भी बहा ले आई थी। आज के आधुनिक तकनीकी दुनिया की वास्तविकता को सम्मुख रखते हुए पुरानी भाषाओं के खत्म होते इस दौर में कवि आशावाद जगाते हुए कोयल के कूक की प्रतीकात्मकता से फिर से पुरानी भाषा के साथ एक नई भाषा की शुरूआत की कामना करते हैं वैश्वीकरण के प्रतीक के रूप में उभरे मुर्गे का अंत और प्रकृति के ही एक रूप कोयल की कूक को नई भाषा के नए युग के उदय के रूप में दिखाने की समप्रकता के कारण 'भाषा की कूक' यह कविता बेहद ही मार्मिक बनी हुई है।

इंसान बातचीत के बाद हमेशा कहता हुआ दिखाई देता है कि बाकी सब ठीक है। यह जानते हुए कि कभी भी कुछ ठीक नहीं होता। लेकिन आशावादी कवि कहते हैं कि इसे एक सूत्र की तरह पढ़ा जाए कि हमारे भीतर बचा रहता है काफी कुछ ठीक होने के लिए, जिसे ठीक करने की कवायद चल रही होती है जब हम कह देते हैं कि बाकी सब ठीक है। इसकी ही अगली कड़ी 'मान लो' यह एक ऐसी अनोखी ताकत है जिससे की जीवन में आशावाद प्रस्फुटित होता है। 'मान लो' एक ऐसा चमत्कारित फॉर्म्युला है जिस पर विश्वास करने से मनवांछित सब कुछ हासिल किया जा सकता है, जैसे की वह कोई अलादिन का चिराग हो। 'मान लो' से आप फिर से जवान हो सकते हैं, मुरझाए फूल फिर खिल सकते हैं, मुट्ठी में चांद आ सकता है। तो कवि हमें सीख देते हैं कि जीवन में गणित के जैसे ज्यादा गुणा-भाग भी ठीक नहीं है, 'मान लो' जैसा जादुई फार्मूला अपनाइए और जिंदगी को सफल बनाइए। साथ ही आपको अपनी मंजिल की ओर बढ़ना है तो उठना होगा, खड़े होना होगा, चलना होगा, निकलना होगा, पहुंचना होगा और इस सबके लिए पहले तुम्हें जागना होगा। कवि 'जागो रे!' इस कविता के माध्यम से जागने का संदेश बेहद सरलता के साथ देते नजर आते हैं। छायायुक्त आशंकाएं समूचे आकाश की शुभ्रता को घेर लेती है और फिर यही अंतस में भी फैल जाती है। कवि की आकांक्षा है कि वे समूचे आकाश को बगैर किसी छाया के शुभ्र देखना चाहते हैं। इसलिए कवि 'आकांक्षा' कविता में छाया को तजकर शुभ्रता को अपनाने को कहते है।

थोड़ा-थोड़ा बदलते-बदलते संसार बदलता है। दुनिया को बदलना है तो शुरूआत अपने से करनी होती है। सच तो यह है कि हम बदलने के लिए ही आए हैं, बदलाव ही विकास है फिर वह दुनिया का हो या हमारा। कवि कहते हैं कि अगर ऐसा हुआ तो एक दिन लगेगा सब कुछ कितना सुंदर है और यह विकास कितना सुंदर होगा –

दुनिया बदलना
इतना मुश्किल भी नहीं है दोस्त!
सिर्फ शुरुआत भर
अपने से करना होता है
सच तो यही है
हम बदलने के लिए आए हैं
बदलाव ही विकास है
फिर वो चाहे
दुनिया का हो या हमारा।

कुल मिलाकर इस काव्य-संग्रह की कविताएँ हमें जीवन जीना सिखाती है। कितनी ही संवेदनाएं हमारे अंतरंग को छू लेती हैं और हमें जीवन जीने के लिए एक सकारात्मक नजरिया दे जाती हैं। जीवन के गहरे एवं सुखद राज को कवि ने बेहद सादगी एवं मार्मिक ढंग से बयान किया है। जिसे हम जानते हैं, कुछ हद तक समझते भी हैं, लेकिन अपनाने से कतराते हैं। कितने सादगी भरे अंदाज से कवि सुखद जीवन जीने की राह को हमारे सम्मुख रखते हैं –

यानी
आना,
डाल पर बैठना,
चहचहाना और
उड़ जाना।

निष्कर्षत: जीवन और प्रकृति के प्रति की तीव्र संवेदनात्मक

अभिव्यक्ति, वास्तविक स्थिति के परिप्रेक्ष्य में उसका अवलोकन, उसके प्रति का गहन चिंतन तथा इस दृष्टि से उचित दिशा-दिग्दर्शन ही इस कविता-संग्रह का सार है। कितने ही अछूते विषयों एवं विचारों को अपनी कविताओं के माध्यम से कवि ने पाठकों के जेहन में उतार दिया है, जिससे की वे उनसे तादात्म्य महसूस कर सके। इन कविताओं में अनोखी कल्पनाओं एवं एहसासों की अनुभूति बार-बार होती रहती है, जहां कवि हमें एक अजीब-सी दुनिया की ऊंचाइयों तक पहुंचाता है। यह कवि के सृजन की पीड़ा की वह 'आह' है, जिसे हम शब्दों में बयान नहीं कर सकते, सिर्फ महसूस कर सकते हैं। जीवन एवं कला के प्रति की कवि की सच्चाई और ईमानदारी को उनकी कविताएं उजागर करती है। कवि एक से बढ़कर एक कविताओं की बेहतरीन श्रृंखला रच देते हैं, जिनकी गहराईयों तक पहुंचते-पहुंचते पाठक दिलो-दिमाग की विभिन्न अवस्थाओं से गुजरता है। बेचैनी, पीड़ा, घृणा, तृप्ती, आशा इन मनोवेगों की कड़ी का चक्र गुंथता रहता है और उसका निचोड़ एक ऊर्जा में तपदिल हो जाता है, जो जीवन जीने की राह को समृद्ध करता है। अपनी इन कविताओं में कवि आधुनिक जीवन की कठोर वास्तविकता के साथ वर्तमान विसंगतियों एवं समस्याओं का बेहद संजीदगी से चित्रण करते हैं तथा उनसे आगाह करते हुए हमें सचेत भी करते हैं। इन कविताओं में कवि एवं कवित्व की गरिमा, इंसान की मानसिकता एवं प्रवृत्तियों का सूक्ष्म चित्रण, जीवन के प्रति की चिंता, मशीनी दुनिया का संकट, नारी की दयनीय दशा आदि का विवेचन किया गया है। प्रकृति एवं उसमें समाहित अन्य जीवों के प्रति की कवि की आसक्ति के कारण उनके अनुपम सौंदर्य-बोध के साथ उनके प्रति की गहरी चिंता एवं चिंतन तथा जागृति का पक्ष उनकी कविताओं में मुख्य रूप से दृष्टिगोचर होता है। जीवन में आसानी से उपलब्ध पानी एवं प्रकृति के ऊर्जा-स्त्रोतों की महत्ता को भी ये कविताएं जताती है। साथ ही इस कविता-संग्रह की सबसे खास बात यह है कि अपनी ईमानदार अनुभूतियों से जीवन के कई पहलुओं ओ उघाड़कर साक्षात रखती हुईं ये कविताएं अनगिनत सूक्ष्म-सी-सूक्ष्म नैतिक मूल्यों की सीख देते हुए आशावादी स्तर के साथ हमारे सही जीने की राह को प्रशस्त बनाती है। अत: विषय-वैविध्य, अद्‌भुत दृश्य-योजना, अनूठी सौंदर्यानुभूति, दुरूहता बोध को तजकर सादगीपूर्ण भाषा-शैली का प्रयोग, बिम्बों एवं प्रतीकों का सटीक प्रयोग, काव्य-सृजन के प्रति प्रतिबद्धता एवं उसके पीड़ा की अनुभूति, स्मृतियों का प्रयोग आदि विशेषताओं से परिपूर्ण इस संग्रह की कविताएं निश्चय ही अपने-आप में अहम मायने रखती हैं।

-सहायक प्राध्यापक हिन्दी विभाग श्रीमती कस्तूरी बाई वालचंद महाविद्यालय (कलाविज्ञान) सांगली, महाराष्ट्र, मो. 9881814116

श्रद्धांजलि

उषा गांगुली
सुप्रसिद्ध रंगकर्मी, निदेशक, अभिनेत्री
जन्म : 20 अगस्त, 1945 निधन : 23 अप्रैल, 2020

पद्मश्री इरफान खान
विख्यात फिल्म अभिनेता
जन्म : 7 जनवरी, 1967 निधन : 29 अप्रैल, 2020

ऋषि कपूर
वरिष्ठ फिल्म अभिनेता
जन्म : 4 सितम्बर, 1952 निधन : 30 अप्रैल, 2020

पं. नन्नूलाल खंडेलवाल
तुलसी मानस भारती पत्रिका के प्रधान संपादक
जन्म : 18 जून, 1925 निधन : 25 मई, 2020

श्री चुरामन यादव जी
वरिष्ठ बंदुली बरेदी नृत्य लोक कलाकार
जन्म : सितम्बर, 1940 निधन : 08 जुलाई, 2020

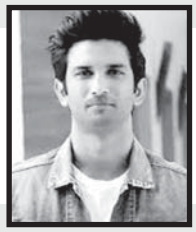

श्री सुशांत सिंह राजपूत
युवा अभिनेता
जन्म : 21 जनवरी, 1986 निधन : 14 जून, 2020

जगदीप (सैय्यद इश्त्याक अहमद जाफरी)
मशहूर हास्य अभिनेता
जन्म : 29 मार्च, 1939 निधन : 08 जुलाई, 2020

'कला समय' परिवार की ओर से विनम्र श्रद्धांजलि...

पुस्तक समीक्षा

जीवन की बगिया में कविताओं की 'महक आती रहे'

विनोद नागर

जिस रसूखदार शख्स की दुनिया कभी दवाइयों की कड़वी महक के इर्द-गिर्द घूमती रही हो, वह एक दिन अपनी लजीज कविताओं से जीवन की बगिया को महकाकर यूँ प्रफुल्लित करेगा, यह शायद ही किसी ने सोचा हो, इंदौर के साउथ तुकोगंज में राय साहब दुर्गाशंकर त्रिवेदी के रौबदार संभ्रांत परिवार में जन्में आशीष त्रिवेदी कोई एक दशक पूर्व राज्य शासन के खाद्य एवं औषधि प्रशासन में लायसेंसिंग अथॉरिटी के पद से सेवानिवृत्त हुए हैं। जाहिर है तीन दशक से अधिक के सेवा काल में उनका सबका कवियों के बजाय मेडिकल स्टोर्स और दवा कंपनियों के संचालकों से ही ज्यादा पड़ा है।

सेवा निवृत्ति के उपरान्त सलीकेदार जिन्दगी बिताते हुए आशीष त्रिवेदी की साहित्यिक-सांस्कृतिक अभिरुचि तेजी से परवान चढ़ी। हालांकि उनके परिजनों और निकट के लोगों को उनके साहित्यानुरागी मन तथा रचनात्मक प्रवृत्तियों का अहसास तभी से होने लगा तथा जब उन्होंने रोटरी क्लब से जुड़कर सामाजिक गतिविधियों में बढ़-चढ़कर हिस्सा लेना शुरू कर दिया था। रतलाम में नागर ब्राह्मण समाज के अध्यक्ष रहते हुए उन्होंने अपनी जिस अद्‌भुत संगठन क्षमता का परिचय दिया था उसने उन्हें कालांतर में प्रादेशिक और राष्ट्रीय स्तर पर स्थापित करने में अहम भूमिका निभाई।

'रिश्तों के बीज' नामक पहले काव्य संग्रह ने उन्हें कवि आशीष त्रिवेदी 'सरल' के रूप में एक नई पहचान दिलाई। एक साथ आये अगले दो काव्य संग्रहों - 'भोर का उजास' तथा 'महक आती रहे' ने उन्हें एक संवेदनशील बहुयामी रचनाकार के तौर पर स्थापित कर दिया है। नाम के अनुरूप सरल शब्दों के चयन और भाषा के प्रवाह में परिष्कार उनकी कविताओं को पढ़ते हुए आसानी से महसूस किया जा सकता है।

काव्य संग्रह के प्रथम खंड में 'महक आती रहे', 'वर्षा मंगल' और 'वसंत पंचमी' जैसी कविताएं प्रकृति के निकट ले जाकर उससे सहज संवाद करती प्रतीत होती है। इन कविताओं में विभिन्न ऋतुओं में प्रकृति के बदलते सौंदर्य का मनमोहक चित्रण कवि ने किया है। 'पुष्पों से प्रेरणा लेकर संस्कारित करना होगा अपना चमन' तथा 'हृदय कोष से नई पीढ़ी को देना होंगे शुभ संस्कार' जैसी पंक्तियां सकारात्मक ऊर्जा का संचार करने वाली हैं।

'नाजुक रिश्ते' नामक दूसरे खंड में मातृ ऋण के प्रति कृतज्ञता, ईश्वर की सच्ची आराधना, तुम्हारा साथ ही मधुमास तथा गौरैया तुम आओ न जैसी कविताएं भावुकता में पगी हुई है। तीसरे खंड में मात्र एक 'विशेष' कविता है। भवन निर्माण श्रमिकों को समर्पित मुझसे बतियाते महल नामक इस लम्बी कविता में कवि ने जीवन संघर्ष और गुलामी के छुपे दर्द की अनुभूति कराने का प्रयास किया है। चौथे खंड में 'जिंदगी क आइना' दिखाती कविताओं में कवि ने अभावों में वृद्धावस्था की दुश्वारियों का हृदयस्पर्शी चित्रण किया है, तो अगली कविता में वे नशे की सामाजिक बुराई पर कटाक्ष करते नजर आते हैं।

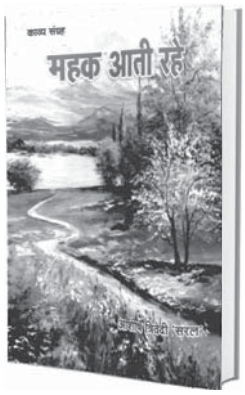

'क्या सचमुच वो मेरे अपने थे' नामक कविता में कवि ने निजी पारिवारिक संबंधों के निर्वाह में गुम होते जा रहे अपनेपन की पीड़ा इन शब्दों में उजागर की है - अच्छा होता हम कुछ कह लेते, भला बुरा जो होता सब सह लेते; फिर मन में ये आक्रोश न रहता, कुछ कह न पाने का अफसोस न रहता। उनकी 'तोल मोल कर बोल' कविता भी घूम फिरकर यही इशारा करती है। जबकि 'हिन्दी तेरा रुतबा बुलंद हो', 'बचपन के थे खेल निराले' और 'वीर सैनिकों तुम्हें नमन' कविताएँ अलग अलग दृष्टिकोण से ध्यान खींचती हैं।

'रियो में यो कई हो रियो' में कवि ने मालवी बोली की मिठास से हास परिहास रचने का अच्छा जतन किया है। 'मोदी बप्पा मोरिया' में काले धन, नोटबंदी और प्लास्टिक मनी के संदर्भ प्रासंगिक बन पड़े हैं। 'इंदौर हो नंबर वन' कविता में अपने शहर को स्वच्छता में लगातार शीर्षस्थ बनाए रखने का उत्प्रेरक जज्बा है। 'विवश कानून' कविता में निर्भया के दोषियों की लगातार टलती सजा पर भी कवि ने तीखे प्रहार किये हैं। लेकिन 'मेरा देश बदल रहा है' का संदेश देती 'बदलता भारत' जैसी हल्की दरबारी कविता काव्य संग्रह का वजन कम करती हैं। बेहतर होता यदि रचनाओं के अंत में उन्हें रचे जाने की तारीख का उल्लेख भी लगे हाथों कर दिया जाता।

आशीष त्रिवेदी 'सरल' की कविताओं में समकालीन सामाजिक परिवेश और झकझोरने वाले घटनाक्रम से तादात्म्य की झलक भी मिलती है। क्षणिकाओं में डेरा सच्चा सौदा, हनीप्रीत सरीखे संदर्भ चुटीले व्यंग्य का संकेत करते हैं। बन संवर के आईने की गवाही रखते थे वो, अब न वो आइना रहा न वैसी चाहत रही (आइना), मेरे पैरों ने साथ देना क्या छोड़ा, उनका भी घर आना छूट गया, उन्हें शायद महसूस हुआ कि मैंने चलना छोड़ दिया (चलना), बुरे वक्त में मैं यादों के सहारे जी लेता, अपने सारे गिले शिकवे सी लेता, परवाह भी दिल की नहीं करता मैं, यदि तुमने हौले से 'ना' का इशारा कर दिया होता (इशारा), मैं भीड़ में भटक गया था रास्ता भूलकर, उन्होंने साथ छोड़ दिया अपनापन तोड़कर (किस्मत की बात) जैसी क्षणिकाओं में रोमांटिक गहराई भी है और कड़वी सच्चाई भी। एक सौ सोलह पृष्ठों के काव्य संग्रह (जिसकी प्रस्तावना प्रख्यात साहित्यकार सूर्यकांत नागर ने लिखी है) में चालीस से भी कम कविताओं को स्थान दिया गया है। जबकि शुरुआती बीस पच्चीस पृष्ठों में महत शुभकामना संदेश प्रकाशित किये गये हैं। इससे पाठक को पुस्तक पढ़ते समय कविता संग्रह के बजाय स्मारिका पढ़ने का भ्रम होने लगता है। पुस्तक की साहित्यिक गरिमा बनाए रखने के लिए इस तरह के उपक्रमों पर लोभ संवरण किया जाना चाहिए।

पुस्तक : महक आती रहे (काव्य संग्रह), लेखक : आशीष त्रिवेदी 'सरल'
प्रकाशक : अपर्णा त्रिवेदी 15, गिरधर नगर, इंदौर, पृष्ठ संख्या : 116, मूल्य : रूपये 180/-

(लेखक वरिष्ठ पत्रकार समीक्षक और स्तंभकार हैं।)
ए-503, प्रकृति ईडन, ई-8, बावड़िया कलाँ आशियाना आंगन इंडस अम्पायर
शाहपुरा थाने के पास, भोपाल-462039, मो. 94254337902

पुस्तक समीक्षा

नाहरगढ़ किला इतिहास की जीवन्त धरोहर है

ललित शर्मा

बारां जिले के नाहरगढ़ निवासी शिक्षक एवं संस्कृति साधक हंजराज नागर एक ऐसे लेखक है जिनमें लोक का परिवेश एवं स्थानीय इतिहास का गर्व भरा पड़ा है। बरसों से वे अपने क्षेत्र के अनछुए इतिहास के विविध पक्षों को खोजने और उनसे लोगों को परिचित कराने हेतु प्रयासरत है।

उनकी प्रकाशित इतिहास कृति 'हाड़ौती का लाल किला नाहरगढ़' बारां जिले के इतिहास का एक ऐसा अनछुआ पक्ष है जिसमें मध्ययुगीन हाड़ौती के कई अन्धकार युगीन पृष्ठ उद्घाटित हुए है। कृति के पन्ने-पन्ने पर इतिहासविद् हंसराज नागर का परिश्रम व सामुख्य अध्ययन परखा जा सकता है। हाड़ौती प्रदेश के किलो, स्मारकों, शिलालेखों पर अनुसंधान करने वाले विद्वानों तथा शौधार्थियों के लिए प्रस्तुत कृति एतद्विषयक सामग्री से किसी भी प्रकार कमतर नहीं है। नाहरगढ़ बारां जिले का विशेषकर हाड़ौती का एक ऐसा किला है जिसकी संरचना, स्थापत्य दिल्ली के लाल किले की भांति है। उस समय विवेच्य क्षेत्र में दिल्ली के मुगलों का प्रभाव था तथा उनकी अमलदारी में यहां कोटा के शासक थे। इस प्रकार विचित्र और रोमांचक घटनाओं की जानकारी से यह कृति संजोयी गयी है।

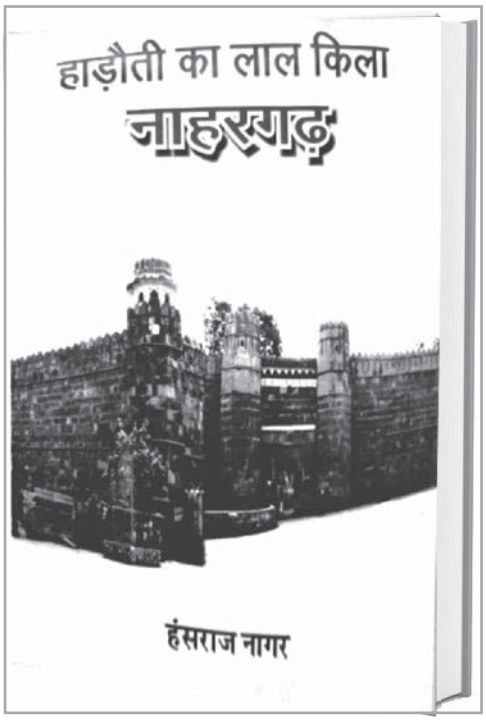

कृति के प्रथम एवं द्वितीय अध्याय में नाहरगढ़ का भौगोलिक एवं वहां से प्राप्त शिलालेख सम्पदा का गंभीर विवेचन है। लेखक ने इसमें पाषाणों पर अंकित भाषा को पढ़ने, पढ़ाने तथा भूगोल का अध्ययन करने में कितना कष्ट साध्य अध्ययन किया होगा, यह विशिष्टता उक्त अध्यायों में पढ़ने को मिलती है। नाहरगढ़ का जातक नाम डोब था जो खीची शासकों का रहा। नाहरगढ़ मूलत: नाहरसिंह के नाम पर है। यहां खीची, गौड़, राठौड़ शासक भी रहे परन्तु मुगलियां राजनीति इन पर अपनी वाचाल वृति के कारण प्रभावी रही। लेखक ने यहां आधे दर्जन से अधिक शिलालेख खोजकर उनका पठन किया साथ ही जो दबे लेख थे उनका वाचन करवाकर उन्हें भी प्रकाशित कर बड़ा महती कार्य किया है। इन लेखों से विवेच्य क्षेत्र के इतिहास पर नया प्रकाश पड़ा है जो उक्त अध्याय का प्रतिपाद्य है। कृति का तृतीय अध्याय विवेच्य क्षेत्र से सम्बद्ध रहे खीची वंश के प्रमुख संस्थान गूगोर तथा महूधरा के गढ़ों के विवेचन पर केन्द्रित है। चतुर्थ अध्याय विवेच्य क्षेत्र पर स्थापित रहे खींची, गौड़, मराठों, मुगलों, राठौड़ो तथा हाड़ाओं पर केन्द्रित है। 1608 से 1948 तक इस क्षेत्र का वर्णन है परन्तु लेखक यदि चाहते तो इस अध्याय को और भी विस्तृत कर सकते थे। पंचम अध्याय में समकालीन भारतीय राजनीति में नाहरगढ़ की व्यवस्था पर चर्चा है वही षष्ठम अध्याय क्षेत्रीय प्राचीनता के अवशेषों पर केन्द्रित है। नाहरगढ़ किले के निर्माण की आवश्यकता तत्कालीन राजवंशों की सामरिक सुरक्षा, आतंरिक व्यवस्था तथा उसमें विभिनन वर्गों की वास व्यवस्था पर थी। स्थापत्य, कचहरी, भवन, कुएं तथा स्मारक आज भी इसके जीवन्त उदाहरण है जो इतिहास और पर्यटन की दृष्टि से सुन्दरता लिये है। किले के आंतरिक एवं क्षेत्रीय भागों में विभिन्न तालाबो, बाग-बगीचों का वर्णन कृति में है। यदि पर्यटन की दृष्टि से इनका समुचित उद्धार हो जाये तो इस स्थल को हाड़ौती की पर्यटन सम्पदा के साथ वन्य सम्पदा के प्राकृतिक स्थलों से भी जोड़कर बारां जिले के पर्यटन में वृद्धि की जा सकती है।

नाहरगढ़ किला इतिहास की जीवन्त धरोहर है यहां झरोखे, कुण्ड, धर्म स्थल, कचहरी आदि स्थल पर्यटकों को आकर्षित करते हैं। यह मराठो, हाड़ाओं के युद्धों तथा राजनैतिक वर्चस्व का गवाह है। यहां हाड़ाओं की कुलदेवी के साथ सुन्दर वैष्णव देवालय, ईदगाह, मस्जिद साम्प्रदायिक समन्वय के प्रतीक है। यह कोटा राज्य की राजनीति का केन्द्र रहा है।

अनेक श्वेत श्याम आकर्षित चित्रों से सुसज्जित यह कृति हाड़ौती के इतिहास में एक नवीन सोपान है। क्षेत्रीय इतिहास ऐसी ही कृतियों से निर्मित होता है। यह अन्धकार को प्रकाशित करने का कार्य है। लेखक इतिहासज्ञ हंसराज नागर की यह कृति बारां विशेषकर हाड़ौती के लिये बड़ी उपलब्धि है। नागर से आग्रह है कि वे इसी प्रकार अपनी खोज से अपने जिले की माटी की सेवा करते रहे है ताकि भावी पीढ़ियां उन पर गर्व कर सके और अतीत का इतिहास जीवन्त कर सके।

पुस्तक : हाड़ौती का लाल किला लेखक : हंसराज नागर, मूल्य : 250 रूपये, प्रकाशक : राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर (राज.) पृष्ठ : 80

-लेखक इतिहासकार हैं
'अनहद' जैसी स्टूडियो, 15-मंगलपुरा,
झालावाड़ा-326001 (राज.)
मो. 9829896368

■

पुस्तक समीक्षा

बघेरा कृति एक क्षेत्रीय इतिहास का महत्वपूर्ण दस्तावेज है

डॉ. उर्मिला शर्मा

राजस्थान के हृदय प्रदेश अजमेर जिले के केकड़ी कस्बा निवासी इतिहास लेखक श्रीमती पुष्पा शर्मा एक ऐसी महिला इतिहास अनुसंधानित्सु है जिनमें लोक की संस्कृति और पुराकला की खोज का भाव भरा पड़ा है। कई वर्षों से वे क्षेत्रीय इतिहास के अनछुए पक्ष को खोजने और उनसे आम लोगों को जोड़ने तथा संस्कृति भाव जगाने हेतु सतत प्रयत्नशील है। इस हेतु उनके अनेकानेक आलेख भारत के विशिष्ट स्तरीय इतिहास तथा संस्कृति के जर्नल्स में भी प्रकाशित होते है। राजस्थान की ऐतिहासिक धरती पर कई ऐसे नगर और इतिहास के स्मारक है जिनका क्षेत्रीय इतिहास आज भी दबा पड़ा है। ऐसा इतिहास वर्तमान लेखन में प्रादेशिक इतिहास का मूल आधार माना जाता है। यही आधार मूल पुरातत्व की नींव है। इसी क्रम में पुष्पा शर्मा की सध: प्रकाशित कृति 'बघेरा इतिहास, संस्कृति और पर्यटन' एक सोपान है जो इस प्रदेश के कई अतीत के पक्षों को अनावृत करता है। कृति के पन्ने-पन्ने पर लेखिका द्वारा श्रमशील सामुख्य अध्ययन, मौलिक खोज, चिन्तन देखा, परखा जा सकता है। अजमेर जिले के स्मारकों पर कार्य करने वालों के हेतु प्रस्तुत कृति अत्यन्त महत्वपूर्ण है जो सर्वथा अभी तक अचिन्हित, अप्रकाशित तथा खोजी इतिहासकारों की सूक्ष्म दृष्टि से दूर रही।

बघेरा मूलत: एक ग्राम है जो केकड़ी उपखण्ड का एक भाग है तथा यह अजमेर जिला मुख्यालय से लगभग 100 किमी एवं केकड़ी से 20 किमी की दूरी पर है। प्रस्तुत कृति की एक विशिष्टता यह भी है कि इसके फ्लैप कवर पर मीरायन शोध पत्रिका के प्रधान सम्पादक प्रो. सत्यनारायण समदानी (चित्तौड़गढ़) तथा जाने माने इतिहासकार प्रो. सोहनकृष्ण पुरोहित (जोधपुर) की बघेरा विषयक गंभीर टिप्पणी है। प्रस्तुत कृति 9 अध्यायों तथा आकर्षक चित्र विथिका में विभक्त है। बघेरा एक ऐसा इतिहास महत्व का स्थल है जहां एक साथ पुरातत्व, कला, शिल्प, मूर्ति, मंदिर स्थापत्य एवं प्रकृति पर्यटन की सारी चीजे मौजूद है। परन्तु इतने कलात्मक वैभव के पश्चात भी यहां कोई गंभीर कार्य नहीं हो पाया। यह पुराण प्रसिद्ध कथानकों, लोककथाओं के साथ पुरातत्व को सम्मिलित करने वाला बेमिसाल स्थल है। प्रस्तुत कृति इसी क्षेत्रीय इतिहास के विविध पक्षों के वैज्ञानिक अनुशील पर केन्द्रित है। यह एक ऐसा स्थल है जो राजस्थान के प्रादेशिक प्राचीन, मध्ययुगीन कई पक्षों के अन्धकार व धुंधला चुके प्रमाणों को बड़ी प्रमाणिकता के साथ समन्वय कर उजागर करता है।

कृति के प्रथम अध्याय में लेखिका ने बघेरा क्षेत्र का भौगोलिक, ऐतिहासिक परिचय देते हुए रेखांकित किया कि इस स्थान का पौराणिक नाम व्याघ्रपादपुर है तथा यहां का भौगोलिक भाग पोस्ट प्लोयोसीन टाईम की उपज है। यह उत्तर पाषाण काल से लेकर बौद्धयुग के प्रभाव वाला क्षेत्र है। महाभारत तथा स्कन्धपुराण में इसका वर्णन है। यह कूपों, तड़ागो, सरिता से समृद्ध क्षेत्र है। द्वितीय अध्याय बघेरा की पुराणोक्त प्राचीनता पर है। यह राजा मान्धाता के सेनानायक शंखसेन द्वारा स्थापित है। यहां देविका (डाई) सरिता है। पुष्पकर तीर्थ से इस क्षेत्र का संबंध प्रसिद्ध रहा है। अध्याय तीन में लेखिका पुष्पा शर्मा ने विवेच्य क्षेत्र के प्राचीन शूर वराह मंदिर की विस्तार से चर्चा की है। यहां वैष्णव अवतार वराह की पशुमूर्ति की प्राचीनता, वराह सागर के सौंदर्य, मंदिर की अनुपमेय कला के साथ शूर वराह मूर्ति की कलात्मक अभिव्यजंना इस अध्याय की विशेषता है। वराह की पूजा, उपासना के विविध सिद्ध मंत्र इस अध्याय में समादृत है जो सामान्य रूप से अब पढ़ने में नहीं आते।

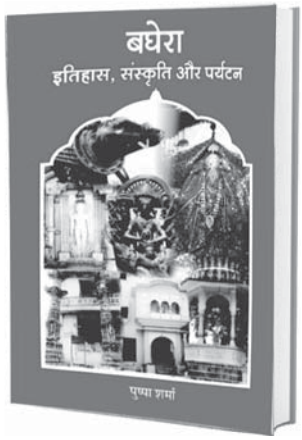

वैष्णवों की अकूत पुरा कला सम्पदा के साथ बघेरा 11 वीं से 13 वीं सदी की जैन शिल्पकला की अनुपम मूर्तियों के लिये भी उपयोगी है। इन सबका प्रथम बार शिल्प सम्मत वर्णन इस पुस्तक में दर्शित है। यहां से अनेक मूर्तियां उत्खनन में मिली है। बघेरा के शूर वराह की मूर्ति इतनी अधिक कलात्मक है कि उसकी तुलना भारत की अन्यान्य वराह मूर्तियों से समीक्षात्मक रूप में की जा सकती है।

बघेरा सांस्कृतिक मंदिरों, कलाशिल्प के लिये उपयोगी है। यहां ब्राह्मणी माता, भर्तृहरि गुफा, वैष्णव कल्याण व जगदीश मंदिर के साथ कालिका माता मंदिर, छैल बिहारी, बलदाऊ, गणेश, हनुमान के मध्ययुगीन ऐतिहासिक मंदिर है जो प्रस्तुत कृति में वर्णित है। बघेरा में राजस्थान की ऐतिहासिक प्रेम कथा ढोला मारू के तोरण द्वार, मध्ययुगीन किले, शिलालेख, कलात्मक छतरियां एवं दुलर्भ सिक्के भी मिले है जिनका अपना वैशिष्ट्य है। बघेरा से कई कलात्मक एवं भारतीय पुरातत्व की अमूल्य विधि संगीत जो मूर्तियों अवास हुई ये सब अजमेर के संग्रहालय में है। उन सभी का कलात्मक व शास्त्रोक्त अनुशीलन पुष्पा शर्मा ने बड़े जीवन्त भाव से किया है। दशावतार, कुबेर, गरुड़ारुढ़ विष्णु की मूर्तियां भारतीय मूर्ति विशेषज्ञों में चर्चित रही है। बघेरा एक राजपूती ठिकाना भी रहा है अत: यहां के सामन्तों की वंशावली भी लेखिका ने दी है।

बघेरा कृति एक क्षेत्रीय इतिहास का महत्वपूर्ण दस्तावेज है जो अजमेर के साथ आस-पास के भू-भाग को बड़ा प्रभावित करता है। ऐसे क्षेत्रीय इतिहास लेखन से प्रदेश के इतिहास को सुदृढ़ता मिलती है। ऐसी कृतियां मील का पत्थर और विशाल भवन की नींव है। लेखिका ने इसमें अपना मन पूरी तरह से रमा दिया है। प्रभूत मात्रा से लेखन कर वह अब अजमेर जिले के इतिहास की ऐसी पुराकला सम्पदा पर कार्यरत है जो अभी तक अनछुआ व अप्रकाशित तथा बड़े पुरातत्वविदों की नजरों से दूर रहा। विश्वास है लेखिका की कृति राजस्थान के ऐतिहासिक सारस्वत भण्डार की पूर्ति अवश्य करेगी।

पुस्तक : बघेरा इतिहास, संस्कृति और पर्यटन, लेखक : पुष्पा शर्मा,
मूल्य : 240 रू., प्रकाशक : सनातन प्रकाशन, जयपुर, पृष्ठ : 122
लेखक : इतिहासविद् हैं, अजमेर

संस्था समाचार

गोस्वामी तुलसीदास के जीवन पर दो दिवसीय अंतरराष्ट्रीय वेबिनार आयोजित

के. ए. पीजी. कॉलेज, कासगंज एवं अंतरराष्ट्रीय तुलसी संस्थान और साधु वाणी सेवा केंद्र, जकार्ता, इंडोनेशिया तथा कला समय संस्कृति शिक्षा और समाज सेवा समिति, भोपाल, (म.प्र.) के संयुक्त तत्वाधान में मानसकार गोस्वामी तुलसीदास जी के जीवन वृत्त पर आधारित दो दिवसीय अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी 28-एवं 29 जून 2020 को संपन्न हुई।

इस संगोष्ठी में 1362 प्रतिभागियों ने पंजीकरण कराया तथा भारत सहित इंडोनेशिया, मॉरीशस और श्रीलंका के विभिन्न विद्वानों ने तथा शोधकर्ताओं ने भाग लिया। वेबिनार को गूगल मीट के साथ ही फेसबुक ओर यूट्यूब के प्लेटफॉर्म पर संचालित किया गया । संगोष्ठी को जकार्ता श्रीलंका और मारीशस के विद्वानों ने संबोधित भी किया। वेबीनार को भारत सरकार की प्रतिनिधि के रूप में श्रीलंका में रहीं डॉ. शिरीन कुरैशी ने भी संबोधित किया। इस वेबीनार में विषय के जानकार डॉ. कृष्ण मोहन मिश्र, लखनऊ डॉक्टर कृष्ण माधव मिश्र, गाजियाबाद डॉ. सुषमा सिंह, आगरा डॉ. रामकृष्ण शर्मा कानपुर, डॉ. अनिल कुमार शर्मा, उदयपुर, डॉ. किरण खन्ना, पंजाब, आदि ने व्याख्यान प्रस्तुत किया । इसके साथ ही 2 दिनों में 78 शोध आलेख देश के विभिन्न प्रांतों के प्रतिभागियों ने पढ़ें। नागपुर, महाराष्ट्र पंजाब मध्य प्रदेश, राजस्थान, गुजरात, उत्तराखंड, उत्तर प्रदेश, दिल्ली सहित देश के विभिन्न भागों से प्रतिभागियों ने इस वेबीनार में भाग लिया। इस वेबीनार को के.ए. पीजी. कॉलेज, कासगंज के प्राचार्य, डॉ.बी.के. तोमर ने आरंभ में स्वागत और अंत में आभार व्यक्त करते हुए संबोधित किया। 100 से अधिक प्रतिभागियों ने अपने-अपने मौलिक शोध पत्र आयोजक समिति को उपलब्ध कराएं हैं। कार्यक्रम के संयोजक उमेश पाठक, भंवरलाल श्रीवास आयोजक डॉ.राधाकृष्ण दीक्षित सह आयोजक डॉ. प्रवीण सिंह जादौन और डॉ. राधाकृष्ण शर्मा, डॉ. सुभाष दीक्षित आदि ने भी संबोधित किया। वेबीनार का संचालन डॉ. राधाकृष्ण दीक्षित और उमेश पाठक ने संयुक्त रूप से किया। संग्रहीत शोध आलेखों का एक ग्रंथ बनाकर आयोजक समिति शीघ्र ही प्रकाशित करेगी जिससे आने वाली नई पीढ़ी और तुलसी पर शोध करने वाले

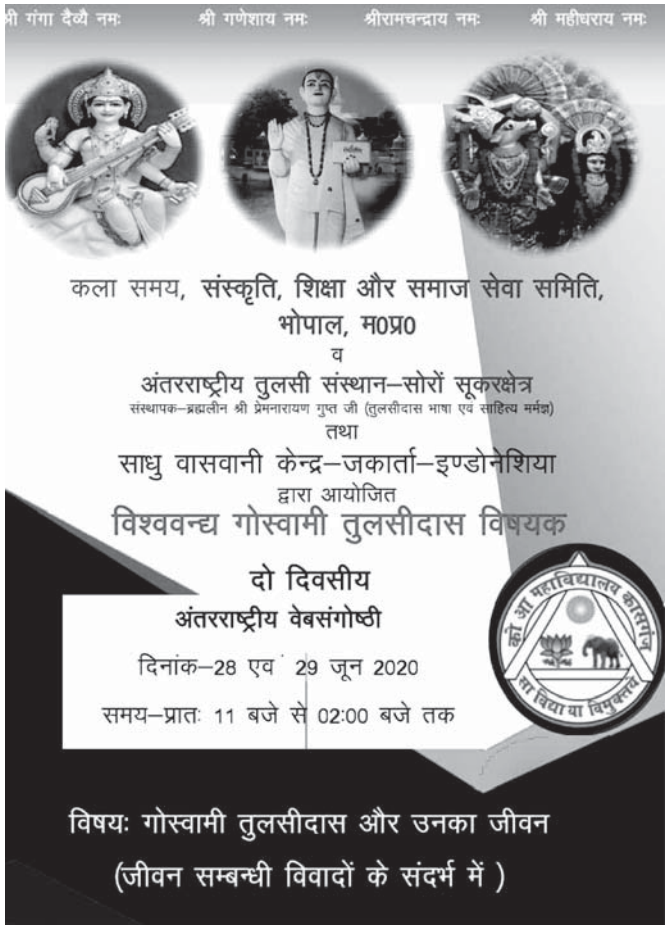

शोधार्थियों को सुगमता होगी। इस अवसर पर सभी प्रतिभागियों को ई-प्रमाण पत्र भी जारी किये गये।

मीडिया रिपोर्टर, सचिन उपाध्याय कासगंज, (उत्तर प्रदेश)

नया स्तंभ

समय की धरोहर

हमें यह बताते हुए हर्ष है कि कला समय पत्रिका के आवरण पृष्ठ दो रंगीन पर अब हर बार एक ऐसे कलाकर, साहित्यकार, रंगकर्मी, चित्रकार के फोटोग्राफ हम इसी अंक से शुरू करने जा रहे हैं। यह फोटोग्राफ समय की धरोहर स्तंभ के रूप में शहर के प्रसिद्ध फोटोग्राफर जगदीश कौशल के द्वारा समय-समय पर क्लिक किये गये फोटोग्राफ उनके संस्मरणों के साथ जो उन्होंने उन शख्सियतों के साथ साझा किये हैं। हम अपने सुधी पाठकों को उपलब्ध करा रहे हैं हमारी नई पीढ़ी और शोधार्थी के लिये यह महत्वपूर्ण स्तंभ का हिस्सा बनने हेतु हम जगदीश कौशल जी का आभार व्यक्त करते हैं हम यहां पर कौशल जी का जीवन परिचय और उनके द्वारा उस्ताद अलाउद्दीन खां की एक महत्वपूर्ण किस्सा भी आपके समक्ष प्रस्तुत कर रहे हैं।

– संपादक

पद्मविभूषण बाबा उस्ताद अलाउद्दीन खां साहब का किस्सा

जगदीश कौशल (पूर्व अपर संचालक जनसंपर्क भोपाल)

जन्मतिथि – 19 सितम्बर 1933

जन्म स्थान – इंदौर (मध्यप्रदेश)

शिक्षा-दीक्षा – वर्ष 1951 में हाई स्कूल परीक्षा पब्लिक हाईस्कूल नौगांव, जिला छतरपुर।

वर्ष 1955 में बी.ए. की उपाधि दरबार कॉलेज रीवा मध्यप्रदेश।

वर्ष 1958 में एम.ए. अर्थशास्त्र की उपाधि ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय रीवा, मध्यप्रदेश।

वर्ष 1974 में जिला प्रकाशन अधिकारी के पद पर रहते हुए पत्रकारिता का विशेष प्रशिक्षण भारतीय जनसंचार संस्थान नई दिल्ली से शासकीय व्यय पर, इसी संस्थान से वर्ष 1983 में दृश्य श्रव्य संचार और वर्ष 1989 में विकास के लिए छायाचित्रण एवं वीडियो का विशेष प्रशिक्षण प्राप्त किया।

संप्रति – जनसंपर्क विभाग के फोटो-फिल्म प्रभाग के प्रभारी के पद पर रहते हुए प्रचार के क्षेत्र में अपनी महत्वपूर्ण सेवाएं देने के बाद वर्ष 1991 में सेवानिवृत्त हुए।

संपर्क – निवास : ई 3/320, अरेरा कॉलोनी, भोपाल-462016

मोबाइल – 9425393429, 0755-2420621

यह दुर्लभ फोटो विख्यात सरोद वादक पद्मभूषण उस्ताद अलाउद्दीन खान साहब की 100 वीं वर्षगांठ के शुभ अवसर पर मध्य प्रदेश के मैहर नगर में आयोजित विशेष सम्मान समारोह के अवसर का है उस्ताद अलाउद्दीन खान साहब ने अपने जीवन के अधिकतम साल मैहर में रहकर बिताए थे जैसा कि सर्वविदित है मैहर के महाराज उन्हें उनके मूल निवास से मैहर ले आए थे मैहर नगर में उनकी पहचान बाबा के नाम से अधिक रही है उन्हें अपनी सारी साधना मैहर में रहकर की है मैहर में उने नाम पर उस्ताद अलाउद्दीन खान संगीत विद्यालय भी विंध्य प्रदेश के शासनकाल में स्थापित किया गया था उन्होंने इसी विद्यालय में अनेक विश्वविख्यात संगीतकारों को संगीत की विभिन्न विधाओं का प्रशिक्षण दिया है उनके प्रमुख शिष्याओं में विश्व विख्यात सितार वादक पंडित रविशंकर जी का नाम उल्लेखनीय है बाबा ने मैहर के निवासियों और संगीत में रूचि रखने वाले अपने शिष्यों का एक मैहर बैंड गठित किया था जिसमें विभिन्न वाद्य यंत्रों का उपयोग कर मधुर संगीत प्रस्तुत की जाती थी समारोह के अवसर पर उनका यही बैंड प्रस्तुति दे रहा था की अचानक एक वादक द्वारा गलत धुन बजायी जाने पर बाबा क्रोधित हो उठे और अपनी छड़ी लेकर मंच पर जाकर उस वादक के पीठ पर मारने लगे यह दृश्य देखकर उनके परम प्रिय शिष्य पंडित रविशंकर दौड़ कर पीछे से उन्हें पकड़ कर वापस लाने का प्रयास कर रहे थे कि मेरे अंतर्मन का जिज्ञासु फोटोग्राफर जाग उठा और मैंने इस अद्भुत क्षण को अपने कैमरे में हमेशा हमेशा के लिए कैद कर लिया यह मेरा परम सौभाग्य है कि बाबा का मुझे वर्ष 1958 से सानिध्य प्राप्त हुआ जो ताउम्र बना रहा मेरे द्वारा 1958 में लिया गया बाबा का साक्षात्कार वर्ष 1958 में बनारस से प्रकाशित दैनिक आज समाचार पत्र में तथा बाद में हाथरस से प्रकाशित संगीत की सुविख्यात पत्रिका संगीत में भी प्रकाशित हुआ था यह घटना उस समय हुई जब पंडित रविशंकर और सुविख्यात भजन एवं ठुमरी गायिका लक्ष्मी शंकर तथा बाबा अलाउद्दीन खान साहब के साथ बैठे हुए हम सब लोग संगीत की प्रस्तुति का आनंद ले रहे थे कि अचानक यह घटना हुई बाबा का मंच पर जाना और मेरा तुरंत भागकर मंच के करीब जाकर कैमरा उनकी तरफ फोकस करने में लग जाना सब एक साथ हुआ इस प्रकार के रोचक क्षण बहुत दुर्लभ ही होते हैं यह मेरा परम सौभाग्य है कि मुझे इस यादगार पल को कैमरे में रिकॉर्ड करने का शुभ अवसर प्राप्त हुआ।

■

''कविता देश'' के अंतर्गत नवल शुक्ल और नीलेश रघुवंशी का कविता पाठ

अच्छी कविता सीधे दिल में प्रवेश करती है अच्छी कविता स्मृतियों में ले जाती है- श्री संतोष चौबे

रबीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय के तत्वावधान में टैगोर विश्वकला एवं संस्कृति केन्द्र एवं वनमाली सृजन पीठ, भोपाल के अनूठे साहित्यिक अनुष्ठान ''**कविता-देश**'' के शुभारंभ अवसर पर ''**काव्य-पाठ**'' का जूम पर लाईव आयोजन किया गया। कविता देश की श्रृंखला के शुभारंभ अवसर पर हिन्दी साहित्य जगत के वरिष्ठ एवं महत्वपूर्ण कवि **श्री नवल शुक्ल** एवं **सुश्री नीलेश रघुवंशी** द्वारा अपनी बेहतरीन कविताओं का शानदार कविता पाठ किया गया। कविता देश कार्यक्रम का सफल संचालन समकालीन हिन्दी साहित्य जगत के वरिष्ठ कवि **श्री बलराम गुमास्ता** द्वारा किया। कविता देश की श्रृंखला का शुभारंभ **श्री संतोष चौबे**, वरिष्ठ कवि कथाकार, विश्व रंग के निदेशक एवं कुलाधिपति, रबीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय, भोपाल की अध्यक्षता में किया गया। कविता देश कार्यक्रम का अविस्मरणीय आयोजन देश के सुप्रसिद्ध वरिष्ठ कथाकार **श्री मुकेश वर्मा** के मार्गदर्शन में किया गया। सर्वप्रथम इस अवसर पर **सुश्री निलेश रघुवंशी** ने अपने कविता संग्रह ''खिड़की खुलने के बाद'' से ——साइकिल का रास्ता, संबोधन, साँकल, खेल का आनंद, आड़ी फसल, तीस मिनट बाद और बेखटके कविताओं का बेहतरीन पाठ किया। आपने इस अवसर कुछ नई कविताएँ—आधी जगह, डलिया, मेरी सहेलियाँ, नक़ाब और पिछौरा, इस लोकतंत्र में और समय और मुश्किल कविताओं का भी यादगार पाठ किया। सुश्री निलेश रघुवंशी ने 'साईकिल का रास्ता' कविता के माध्यम से लड़की के सपनों की उड़ान को रेखांकित किया।

इस अवसर पर वरिष्ठ कवि **श्री नवल शुक्ल** ने अपनी रचनाओं- बोलती है आवाजें, एक अच्छा भला दिखता आदमी, आजकल प्यार के बारे में सोच रहा हूँ, हम में वह क्या बचा हुआ है, रंगों के तरल भार से गिरा है जामून,अभी भी वक्त है एवं कोरोना काल की विभिषिका पर बहुत ही मार्मिक, करुणामय, संवेदनशील कविताओं का पाठ किया।

वरिष्ठ कवि कथाकार, विश्व रंग के निदेशक एवं रबीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय के कुलाधिपति श्री संतोष चौबे ने अपने अध्यक्षीय उद्बोधन में सर्वप्रथम वनमाली सृजन पीठ एवं टैगोर विश्वकला एवं संस्कृति केन्द्र की पहल पर कविता देश के शुभारंभ अवसर पर बहुत ही सुंदर कविता पाठ के लिए वरिष्ठ कवि श्री नवल शुक्ल एवं सुश्री नीलेश रघुवंशी को हार्दिक बधाई दी। सार्थक आयोजन के लिए वनमाली सृजन पीठ के अध्यक्ष एवं वरिष्ठ कथाकार श्री मुकेश वर्मा और बेहतरीन संचालन के लिए वरिष्ठ कवि बलराम गुमाश्ता को हार्दिक बधाई दी।

श्री संतोष चौबे ने इस अवसर पर कहा कि अच्छी कविता वह होती है जो आपकी स्मृतियों में गहरे तक पैठ जाती है। आपके दिल में सीधे प्रवेश करती है। नवल शुक्ल एवं नीलेश रघुवंशी हमारे समय के ऐसे कवि है जिनकी कविताएं सीधे हमारे दिल में प्रवेश करती है, हमारी स्मृतियों में सदा के लिए बस जाती है।

श्री संतोष चौबे ने आगे कहा कि आज हम बहुत कठिन समय से गुजर रहे है। कोरोना काल की विभिषिका में कविता और सार्थक रचनाकर्म हमें एक नई ऊर्जा प्रदान करते है। कविता देश के इस कार्यक्रम में भी देशभर के लोगों का सम्मिलित होना एक शुभ संकेत है। साहित्यकारों के साथ साथ नौजवान साहित्यप्रेमियों का जुड़ाव इस दिशा में एक नई जमीन तैयार कर रहा है।

श्री संतोष चौबे ने आगे कहा कि निलेश रघुवंशी की कविताएं हमें स्मृतियों में ले जाती है। वे हमें कई महत्वपूर्ण रचनाकारों की याद दिलाती है। उनकी साईकिल वाली कविता वरिष्ठ कथाकार शंशाक की घंटी कहानी की याद दिलाती है। क्रिकेट पर लिखी कविता वरिष्ठ कवि विष्णु खरे की याद ताजा करती है। प्रेग्नेंसी पर लिखी कविता मानवीय करुणा से ओतप्रोत रचना है। जहां आज एकओर वैश्विक होने का दबाव है वहां नीलेश कि कविताएं स्थानिकता का परिचय कराती है। वे प्रस्तुतीकरण में आधुनिकता का परिचय देती है। यह उनकी खूबी है कि उनकी कविता चम दार एवं पॉलिश्ड नहीं है। वह सीधे दिल में प्रवेश करती है। उनकी रचनाओं में करुणा का स्त्रोता बहता है।

श्री संतोष चौबे ने वरिष्ठ कवि नवल शुक्ल के रचनाकर्म पर अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि नवल शुक्ल कविता की रचना प्रक्रिया में हड़बड़ी में नहीं रहते है। उनकी रचनाओं में मानवीय संवेदनशीलता एक अलग रूप में प्रकट होती है। वे राजनीति पर भी पैनी निगाह रखते है।

नवन शुक्ल की कविताओं में प्रेम, प्रकृति और रंगों की अनुपम सौगात समाई है। जामुन पर लिखी कविता में यह सभी रंग समाहित है। कोरोना की विभिषिका के दौरान बहुत ही संवेदनशीलता के साथ उनकी कविता लाखों करोड़ों गरीब लोगों के दर्द को शिद्दत के साथ बयां करती है। ऐसे कठिन समय में घरों की ओर लौटने पर केंद्रित उनकी कविता में यह मार्मिक दृश्य एक पेंटिंग की तरह झलकता है।

कार्यक्रम के अंत में वरिष्ठ कवि श्री बलराम गुमाश्ता ने सभी के प्रति आत्मीय आभार व्यक्त किया।

कविता देश कार्यक्रम का संयोजन प्रशांत सोनी एवं संजय सिंह द्वारा किया गया।

रिपोर्ट : संजय सिंह, 9425675811

अंकुरित संस्कार उम्र से बड़े है इनके...

बाल-मन उम्र की मंजिल तय करते-करते बच्चों को आज की तीव्र गति से भागने वाली दुनिया की हर गतिविधि के साथ ताल से ताल मिलाकर चलने की प्रेरणा देता स्तंभ 'नवांकुर' - कला समय।

बाल कलाकार : माहिरा व्यास की एकांत नृत्य साधना

माहिरा व्यास जूनियर के.जी. की छात्रा हैं। इनका जन्म 29 दिसम्बर 2015 को मुंबई में हुआ। इनको नृत्य के साथ गायन, ड्राइंग औ बहुत मीठी-मीठी बाते करने का शोक है। आपने तीन साल की अल्प आयु से ही टी.वी में देखकर नृत्य करने की कोशिश करती थी और अभी भी वह टीवी पर ही देखकर नृत्य सीखती है। कोई नृत्य क्लास नहीं गई। वे डबल वाइस में भी बात करती है।

इनके नाना मनोज व्यास कहते हैं कि लॉक डाउन में नातिन माहिरा ने समय बिताने का मुंबई के फ्लेट में बिना दर्शकों के अपने खिलौने के साथ स्वत: अपना नृत्य अभिनय करती हैं। उसको बहुत-बहुत बधाई। अपनी मंगलकामना है कि वह अपनी कला को आगे और निखारे। शुभाशीष।

संपादक

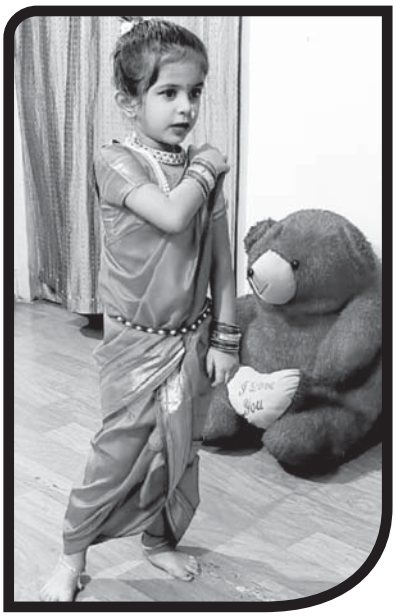

निवेदन: आप भी अपने बच्चों की प्रतिभाओं, कलाओं को उजागर करने हेतु इस पृष्ठ का हिस्सा बन सकते है - संपादक

कला और संस्कृति ही ऐसे स्तंभ हैं जो हमें जीने का सहारा देंगे और यह आज के समय की मांग है...

कला और संस्कृति में ही विश्व शांति स्थापित करने की क्षमता है।

युवा चित्रकार : सृष्टि पानवलकर की पेटिंग

21 जुलाई 1998 को भोपाल में जन्मी सृष्टि पानवलकर एक साफ्टवेयर इंजीनियर हैं। इन्होने अपनी इंजीनियरिंग की शिक्षा एल. एन. सी. टी.तकनीकी शिक्षा संस्थान भोपाल से इलेक्ट्रॉनिक्स एंड कम्यूनिकेशन विषय में पूर्ण की है। कला मेरे जीवन का महत्वपूर्ण हिस्सा है ऐसा उनका मूल कथन है। आज मैं अपने आप को जिस स्थिति में देखती हूँ वह सब कुछ मेरी कला के कारण ही है। मेरी कला ने मुझे जीवन को देखने का नज़रिया और व्यापक दृष्टिकोण दिया है। मूलत: मेरे चित्रों के विषय अमूर्त कला में होते हैं। इस कला से प्रेम के पीछे का मुख्य कारण है कि इसमें कोई सीमाएं, बंधन नही होते है। प्रत्येक व्यक्ति अपने दृष्टिकोण से, अपने अर्थ निकाल सकता है। इस कला की यही खूबसूरती है कि जहाँ तक आप की समझ ले जाती है आप इसके साथ जा सकते हैं... मैं निरंतर सीखने की प्रक्रिया में हूँ और यह आशा करती हूँ कि यह कला हमेशा जीवंत रहे.. मेरा मानना है कि आज की इस दौड़ भाग भरी ज़िंदगी में कला और संस्कृति ही ऐसे स्तंभ हैं जो हमें जीने का सहारा देंगे और यह आज के समय की मांग है... कला और संस्कृति में ही विश्व शांति स्थापित करने की क्षमता है। **– संपादक**

अनुरोध : उत्तराधिकार के तहत गुरू-शिष्य परम्परा में साधनारत विभिन्न शैलियों के सृजनधर्मी युवा कलाकारों को समर्पित स्तंभ से जुड़ें...
–संपादक

आपके पत्र

पत्रिका के बहाने

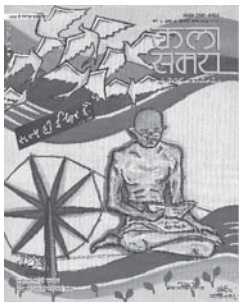
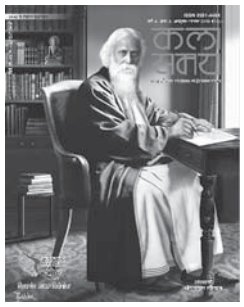
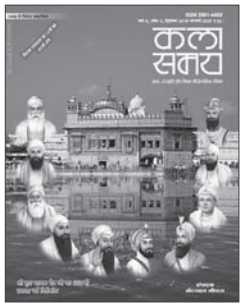

प्रियेवर,

श्री भंवरलाल श्रीवास जी,

सप्रेम जय जगत।

आपका ''कला समय'' विशेषांक प्राप्त हुआ। इस अंक में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी पर केन्द्रीत सामग्री बड़ी अपीलिंग प्रस्तुत की गयी है।

गांधी भवन न्यास की ओर से बहुत-बहुत धन्यवाद। कृपया आप गांधी भवन न्यास भोपाल को पाँच अंक भेज देवें न्यास द्वारा सहयोग राशि तुरंत भेज दिया जायेगा।

दयाराम नामदेव, सचिव
गांधी भवन न्यास भोपाल

महाशय, आपके संपादन में प्रकाशित पत्रिका 'कला समय' का फरवरी-मार्च 2020 अंक मिला। इस विकट महामारी के समय में भी आप पत्रिका का प्रकाशन करने में सक्षम हो पा रहे हैं। बधाई।

-Birkha Khadka Duvarseli, दार्जिलिंग

प्रणाम श्रीवास जी,

महात्मा गांधी 150 वीं जयंती वर्ष विशेषांक प्राप्त हो गया है। इतने कठिन समय में कला समय का अंक उपलब्ध कराना आपकी साहित्यिक प्रतिबद्धता को दर्शाता है। आप बहुत बहुत बधाई के पात्र हैं। सम्पूर्ण विशेषांक गांधी जी के विचारों, संस्मरणों से भरापूरा है। अत्यंत भावप्रवणता के साथ सुसज्जित है। प्रकाश पर्व पर किए गए आपके सम्मान के लिए आपको अनेकश: शुभकामनाएं एवं हार्दिक अभिनन्दन।

तारूणी कारिया
अमदाबाद (गुजरात)

आज कला समय का अंक मिला, कर्मवीर गांधी जी पर इस अंक मे इतनी महत्वपूर्ण सामग्री है कि कोई भी इसको आधार बना कर थीसिस आराम से कर सकता है, आपके घनीभूत परिश्रम को नमन करता हूँ।

ललित शर्मा
झालावाड़ (राजस्थान)

कला समय
पं.क्र. 01/01/01/26174/13
संस्कृति, शिक्षा और समाज सेवा समिति, भोपाल, म.प्र.

संस्था का गौरवमयी 8वाँ वर्ष

कला और कलाकारों को समर्पित संस्था

॥ कला समय ॥

समकालीन सांस्कृतिक परिदृश्य में अपनी रचनात्मक कोशिशों का सिलसिला कायम रखते हुए कला समय ने आप सब के साथ विश्वास और प्रियता का लम्बा अंतराल पार किया है। इस तरह एक संस्था और कला पत्रिका अपने-अपने प्रयास-पथ के शुभ चरणों को याद करते हुए उत्सव का परिवेश रच रही है।

कला समय संस्था के नियमित दो प्रतिष्ठा पूर्ण आयोजन 'संस्कृति पर्व' एवं 'आरोही' के साथ ही प्रतिवर्ष कला एवं साहित्य को समर्पित शख्सियतों को 'रंग शिखर सम्मान' तथा 'शब्द शिखर सम्मान' से नवाजा जाता है।

संस्कृति मंत्रालय भारत सरकार • मध्यप्रदेश शासन संस्कृति विभाग से अनुदान प्राप्त

कार्यलय संपर्क : जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कालोनी, भोपाल-462016 मो.: 9425678058, 9229109324, ई-मेल kalasamay1@gmail.com

गुलदस्ता

डॉ. अरविंद विष्णु जोशी स्नेह-स्मरण

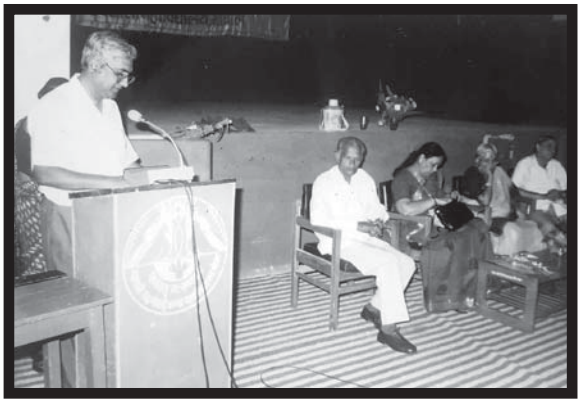

कला समय

1998 से निरंतर प्रकाशित

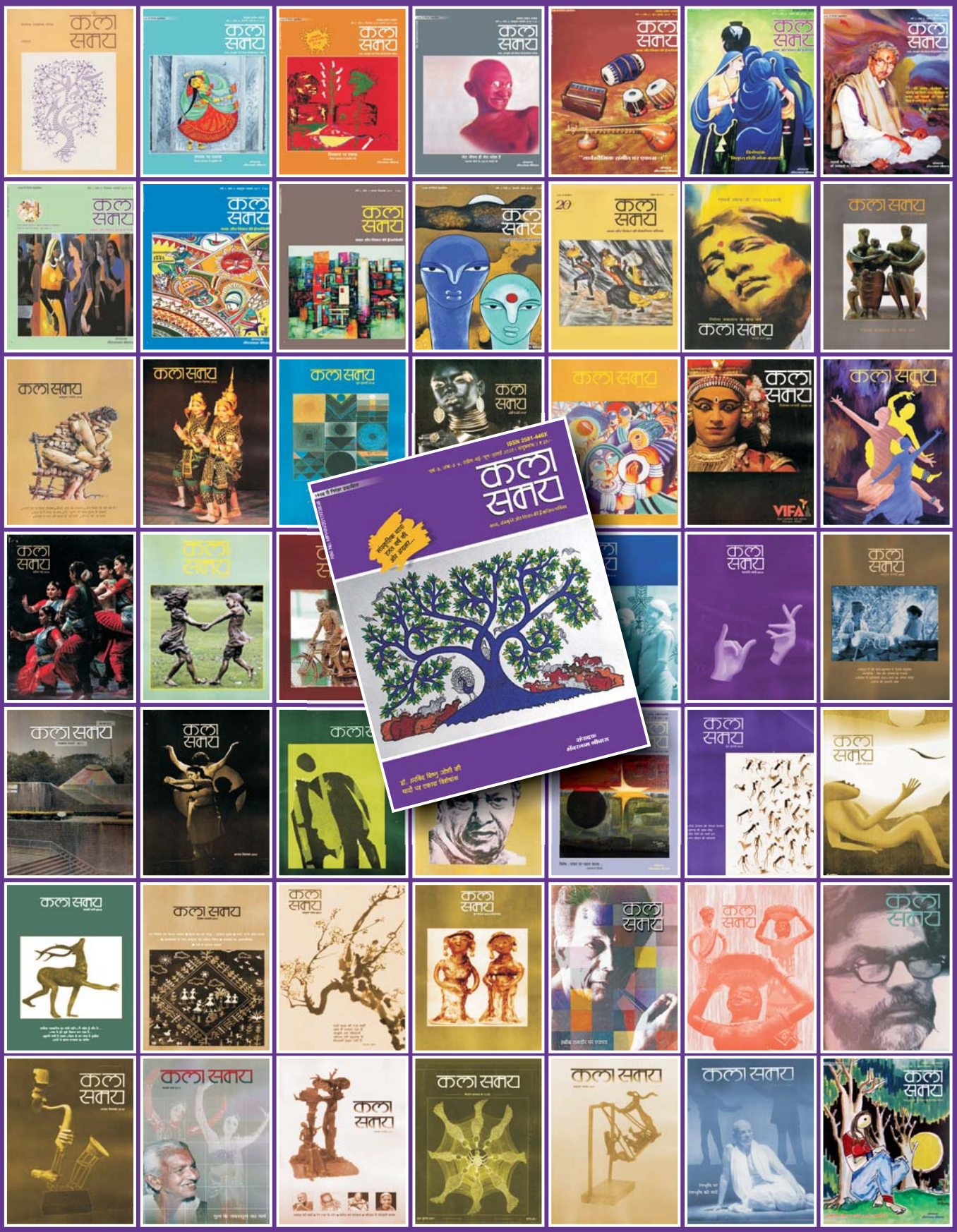

सांस्कृतिक यात्रा के 23 वर्ष...

जन्म दिवस 13 मई के अवसर पर पुण्य-स्मरण...

डॉ. अरविंद विष्णु जोशी

जन्म : 13 मई, 1948 निधन : 7 सितम्बर, 2018

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वत्वाधिकारी भँवरलाल श्रीवास द्वारा दृष्टि ऑफसेट, 36-37, प्रेस कॉम्पलेक्स, जोन नं-1, एम.पी. नगर, भोपाल से मुद्रित एवं जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.) से प्रकाशित। संपादक-भँवरलाल श्रीवास